अनुक्रम

पहला प्रवचन

जीवन की खोज

मेरे प्रिय आत्मन्!

मैं सोचता था, क्या आपसे कहूं? कौन सी आपकी खोज है? क्या जीवन में आप चाहते हैं? ख्याल आया, उसी संबंध में थोड़ी आपसे बात करूं तो उपयोगी होगा।

मेरे देखे, जो हम पाना चाहते हैं से छोड़ कर और हम सब पाने के उपाय करते हैं। इसलिए जीवन में दुख और पीड़ा फलित होते हैं। जो वस्तुतः हमारी आकांक्षा है, जो हमारे बहुत गहरे प्राणों की प्यास है, उसको ही भूल कर और हम सारी चीजें खोजते और इसीलिए जीवन एक वंचना सिद्ध हो जाता है। श्रम तो बहुत करते हैं, और परिणाम कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। दौड़ते बहुत हैं, लेकिन कहीं पहुंचते झरने उपलब्ध नहीं होते। जीवन का कोई स्रोत नहीं मिलता है। ऐसा निष्फल श्रम से भरा हुआ हमारा जीवन है। इस पर ही थोड़ा विचार करें। इस पर ही थोड़ा विचार मैं आपसे करना चाहता हूं।

क्या है हमारी खोज? यदि हम अपने पर विचार करेंगे, देखेंगे, आंखें खोलेंगे तो क्या दिखाई पड़ेगा? क्या हम खोज रहे हैं? शायद साफ ही हमें अनुभव हो, हम लोग सुख को खोज रहे हैं। और लगेगा कि मनुष्य का प्राण सुख तो चाहता है... . मनुष्य का ही क्यों, और सारे पशुओं की आकांक्षाएं सुख को पाने के लिए हैं, ऐसा हम विचार करेंगे।

हर कोई सुख चाहता है, लेकिन मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं प्रथम ही, और फिर उस पर विस्तार से समझाने का प्रयास करूंगा। सुख की खोज झूठी खोज है। वस्तुतः हम सुख नहीं चाहते हैं, हम कुछ और चाहते हैं। हम क्या चाहते हैं, वह मैं आपसे कहूंगा। और सुख हम क्यों नहीं चाहते, वह भी मैं आपसे कहूंगा। लेकिन आमतौर से ऐसा प्रतीत होता है कि हम सभी लोग सुख खोज रहे हैं। यह सुख की खोज चाहे किसी रूप में प्रकट हो रही हो... धन के रूप में, यश के रूप में, पद के रूप में और चाहे सुख की खोज जमीन पर चल रही हो और चाहे स्वर्ग की कल्पनाओं में, लेकिन हमारा मन जाने-अनजाने इस सुख के लिए पागल है।

क्या कभी यह विचार किया कि आज तक जमीन पर बहुत लोगों ने सुख खोजा है, लेकिन किसी ने सुख पाया है? क्या कभी यह विचार किया कि करोड़-करोड़, अरब-अरब लोग जिस बात को खोज चूके हैं और असफल हो गए, क्या मैं उसमें अपवाद सिद्ध हो जाऊंगा? और क्या कारण है कि सुख इतने लोग खोजते हैं, लेकिन सुख उपलब्ध नहीं होता है? जैसे ही किसी सुख को हम पा लेते हैं, वैसे ही वह व्यर्थ हो जाता है और हमारी आकांक्षा आगे बढ़ जाती है।

ऐसा क्यों होता है? किस कारण से यह होता है? क्या सुख का स्वभाव ऐसा है कि हम उसे पाए तो वह व्यर्थ हो जाए? या कि असलियत यह है कि सुख की खोज में हम किसी और खोज को छिपाए रहते हैं अपनी आंखों से? सुख की दौड़ में हम किसी और बात को अपनी आंखों से ओझल किए रहते हैं। कोई और है हमारी खोज। और हम सुख की दौड़ में उस खोज को भुलाए रखने का उपाय करते हैं। जैसे ही सुख मिल जाता है, सुख की दौड़ बंद हो जाती है, वैसे ही भीतर का सुख फिर दिखाई पड़ने लगता है। फिर हमें किसी नये सुख की खोज शुरू करनी पड़ती है ताकि सुख को फिर भुलाया जा सके। जब तक सुख मिलेगा नहीं, दौड़ रहेगी। मन उलझा रहेगा तो लगेगा कि सुख मिलने वाला है। जैसे सुख मिलेगा, दौड़ बंद होगी, मन खाली होगा, भीतर के दुख के दर्शन फिर शुरू हो जाएंगे। सुख जब तक पाने की चेष्टा चलती है, आकांक्षा चलती है, इच्छा चलती है, तब तक तो दुख भूला रहता है, और जैसे ही सुख मिला, दौड़ बंद हुई, मन खाली हुआ, मन थोड़ा काम से विश्राम में गया और भीतर का दुख फिर दिखाई पड़ने लगता है। फिर हमें नये सुख की खोज शुरू कर देनी पड़ती है। सुख की खोज ज्यादा से ज्यादा दुख को भुलाने का काम करती है, सुख की खोज ज्यादा से ज्यादा एक नशे का काम करती है, लेकिन कहीं पहुंचाती नहींय न कहीं पहुंचा सकती है। सुख की कितनी ही बड़ी खोज हो, भीतर का दुख नष्ट नहीं हो सकता। यह असंभव है। यह इतना असंगत है, इन दोनों का कोई मेल नहीं है।

मैंने सुना है, एक मुसलमान बादशाह था, एक रात अपने पहल में सोया हुआ था। अंधेरी रात है, आधी रात है, ठंड के दिन हैं, सर्दी जोर से है। उसने देखा, उसके छप्पर पर कोई ऊपर चल रहा है। पुराने जमाने के मकान थे। छप्पर हिलने लगा। उसने पूछा, कौन है इस अंधेरी रात में? आधी रात में छप्पर के ऊपर कौन है? और राजा के भवन के ऊपर! ऊपर से आवाज आई, मैं हूं एक नागरिक। राजा ने पूछाः नागरिक हो? और भवन के ऊपर छप्पर पर क्या कर रहे हो? क्या तुम चोर हो? उसने कहा कि नहीं, चोर नहीं हूं, बल्कि मेरा ऊंट खो गया है, उसको खोज

रहा हूं। राजा ने कहाः पागल, ऊंट खो जाए तो उसे भवन के छप्परों पर खोजा जाता है? ऊंट कहीं छप्परों पर खोता है? या छप्परों पर खोजने से मिल जाएगा? ऊपर से आवाज आई कि मैं तो आपका ही अनुकरण कर रहा हूं। अगर आप सिंहासन पर बैठकर सोचते हैं कि सुख मिल जाएगा, अगर आप सोचते हैं कि धन मिलने से सुख मिल जाएगा, अगर आप सोचते हैं, राज्य उपलब्ध हो जाने से प्राणों की प्यास तृप्त जाएगी, और अगर आप सही हैं तो फिर मैं कौन सी बड़ी भूल कर रहा हूं? छप्पर पर ऊंट भी खोया हुआ मिल सकता है।

राजा हैरान हुआ। वह आदमी पागल नहीं मालूम होता। भागकर बाहर आया। उसने लोगों को कहा, पकड़ो, ऊपर कोई है। वह आदमी तो नहीं मिला, बहुत खोजा। छप्पर पर तो नहीं मिला, लेकिन दूसरे दिन एक और घटना घटी। दूसरे दिन राजा भी महल में खोजने से नहीं मिला। वह भी रात ही चला गया।

छप्पर पर ऊंट खोजने से नहीं मिलेगा। छप्पर पर ऊंट खोता भी नहीं है। लेकिन हम सारे लोग वहीं खोज रहे हैं। हम खोज रहे हैं सुख। क्यों खोज रहे हैं सुख? सुख खोज रहे हैं, ताकि दुख मिट जाए। एक आदमी बीमार हो, स्वास्थ्य को खोजे... क्या होगा? क्या स्वास्थ्य खोजा जाता है? वह दौड़ता रहे दुनिया में और स्वास्थ्य की खोज करता रहे तो क्या होगा? स्वास्थ्य नहीं खोजा जाता। बीमारी मिटाई जाती है, बीमारी नष्ट की जाती है।

जो जानते हैं वे सुख को नहीं खोजते, बल्कि दुख को मिटाने का कोई उपाय करते हैं। दुख मिटाया जा सकता है, सुख नहीं पाया जा सकता। और जो सुख को पाने में जाएगा वह ज्यादा से ज्यादा दुख को भुलाने में समर्थ हो सकता है। थोड़ी देर के लिए विस्मरण हो सकता है, थोड़ी देर के लिए भूल सकता है, लेकिन दुख मिटेगा नहीं। दुख को मिटाना है तो दुख के कारण को जानकर, कारण को नष्ट करने से दुख नष्ट हो जाएगा और जो दुख को नष्ट कर देता है, वह जरूर सुख को उपलब्ध हो जाता है। और जो सुख को खोजता है, वह दुख को कभी नहीं मिटा पाता।

मैं आपसे कहूं, हम सारे लोग सुख खोज रहे हैं, यह वास्तविक बात नहीं है, वास्तविक खोज नहीं है। हमारी वास्तविक खोज है कि हम दुख को मिटाना चाहते हैं। लेकिन उस वास्तविक खोज को एक भ्रांत मार्ग से हम पकड़ते हैं और हमें लगता है कि हम सुख को पाना चाहते हैं। क्या मैं आपको याद दिलाऊं, दुनिया में दो ही तरह के लोग होते हैं... एक वे लोग जो सुख को खोजते हैं, एक वे लोग जो दुख को मिटाने को खोजते हैं। और यह जमीन-आसमान का फर्क है दोनों में। ये शब्द एक से मालूम हो सकते हैं। ऊपर से दुखने पर ऐसा लगेगा, जो सुख को खोजता है वह भी वही खोज रहा है, जो दुख को मिटाने को खोजता है, वह भी वही खोज रहा है। नहीं, बिल्कुल नहीं। जमीन और आसमान में भी इतना फर्क नहीं है जितना इन दो बातों में फर्क है।

जो सुख को खोजता है, वह दुख में पड़ जाता है। और जो दुख को मिटाने को खोजता है, वह सुख को उपलब्ध होता चला जाता है। क्या कारण है? क्यों हम इस तथ्य को नहीं देखते कि हमारे भीतर दुख है? आप क्यों सुख को खोज रहे हैं? निश्चित ही, जब आप सुख को खोज रहे हैं, यह इस बात का प्रमाण है और सबूत है कि आप सुखी हैं। अगर कोई आदमी सुखी नहीं है तो सुख को क्या खोजेगा? अगर कोई आदमी निर्धन नहीं है तो धन क्यों खोजोगे? इसलिए जो आदमी जितना ज्यादा धन खोजता हो, जानना चाहिए उतना ही गहरा वह निर्धन होगा। नहीं तो क्यों खोजेगा? जो आदमी बीमार नहीं है, वह स्वास्थ्य को क्यों खोजेगा? और जो ज्यादा से ज्यादा स्वास्थ्य को खोजता हो, जानना चाहिए वह उतना ही गहरा बीमार है।

एक फकीर था। एक बहुत बड़े बादशाह से उसका प्रेम था। उस फकीर से गांव के लोगों ने कहा, बादशाह तुम्हें इतना आदर देते हैं, इतना सम्मान देते हैं। उनसे कहो कि गांव में एक छोटा सा स्कूल खोल दें। उसने कहा, मैं जाऊं, मैं जाऊं। मैंने आज तक कभी किसी से कुछ मांगा नहीं, लेकिन तुम कहते हो तो तुम्हारे लिए मांगूं। वह फकीर गया। वह राजा के भवन में पहुंचा। सुबह का वक्त था और राजा अपनी सुबह की नमाज पढ़ रहा था। फकीर पीछे खड़ा हो गया। नमाज पूरी की, प्रार्थना पूरी की। बादशाह उठा। उसने हाथ ऊपर फैलाया। कहा, हे परमात्मा, मेरे राज्य की सीमाओं को और बड़ा कर। मेरे धन को और बढ़ा, मेरे यश को और दूर तक आकाश तक पहुंचा। जगत की कोई सीमा न रह जाए जो मेरे कब्जे में न होय जिसका मैं मालिक न हो जाऊं। हे परमात्मा, ऐसी कृपा कर। उसने प्रार्थना पूरी की, वह लौटा। उसने देखा कि फकीर सीढ़ियों से नीचे उतर रहा है। उसने चिल्ला कर आवाज दी क्यों वापस लौट चले? फकीर ने कहाः मैं सोच कर आया था कि किसी बादशाह से मिलने आया हूं। यहां देखा कि यहां भी भिखारी मौजूद है। और मैं तो दंग रह गया, जितनी बड़ी जिसकी मांग हो उतना ही बड़ा वह भिखारी होगा। तो आज मैंने जाना कि जिसके पास बहुत कुछ है, बहुत कुछ होने से कोई मालिक नहीं होता। मालिक की पहचान तो इससे होती है कि कितनी उसकी मांग है। अगर कोई मांग नहीं तो वह मालिक है, बादशाह है, और अगर उसकी बहुत बड़ी मांग है तो उतना बड़ी भिखारी है।

इसलिए दुनिया बहुत अजीब है। यहां जो बहुत मांग रहे हैं और बहुत धन है, बहुत खोज है, बहुत पद है। जानना कि भीतर बहुत निर्धन और दरिद्र होंगे। उसी को भुलाने के लिए उपाय कर रहे हैं, अन्यथा कोई कारण नहीं है। इसलिए दुनिया में बड़े से बड़ा धन है, आदमी अपने भीतर बहुत गहरा निर्धन होता है। और बड़े से बड़े पदों पर बैठा हुआ व्यक्ति अपने भीतर बहुत दयनीय और दरिद्रता होता है। और बहुत बड़ी महत्वाकांक्षा के लोग दुनिया को जीत लेने की आकांक्षा रखते हैं, भीतर बहुत कमजोर होते हैं अपने को जीतने में बहुत असफल और असमर्थ होते हैं।

यह जो मैंने कहा, यह हमारी खोज है... चाहे धन की, चाहे यश की, चाहे सुख की, मूलतः तो सुख की खोज है। यह हम सुख इसलिए खोजते हैं कि वह जो हमें दुख प्रतीत होता है, वह मिट जाए। लेकिन क्या यह उचित होगा... क्या यह उचित होगा कि दुख भीतर है, उसे मिटाने के लिए हम सुख खोजें? या यह उचित होगा कि दुख अगर भीतर तो उसके कारण को खोजें, पहचाने कि कौन सा कारण है मेरे भीतर, जिसके कारण मैं दुखी और पीड़ित हूं, और उस कारण को मिटाए और उस कारण से मुक्त हो जाए। क्या यह वैज्ञानिक होगा, या पहली बात वैज्ञानिक होगी? क्या कोई बीमारी हो तो उसके कारण खोज कर उस बीमारी को नष्ट करना होगा या कि किसी काल्पनिक स्वास्थ्य को खोजने के लिए हिमालय और पहाड़ों पर जाना होगा? लेकिन हमें ऐसा दिखाई पड़ता है।

और यह मनुष्य की बुद्धि के सबसे बड़े भ्रमों में से, सबसे बड़े झूठे तर्कों में से एक तर्क है कि जब उसे दुख अनुभव होता है तो बहुत सुख को खोजने लगता है। यह खोज वास्तविक न होकर, दुख को मिटाने वाली न होकर दुख को भुलाने वाली हो जाती है। और स्मरण रखें, दुख से भी खतरनाक बात दुख को भुला देना है। क्योंकि जो चीज भूल जाती है ऊपर से, वह भीतर सरकती रहती है और फैलती चली जाती है। इसलिए ऊपर हम सुख को खोजते जाते हैं और भीतर दुख घना होता जाता है। और भीतर चित्त की पर्त पर गहरे अचेतन, और गहरे मन के कोनों में, मन के भवन के बहुत दूर के कमरों में, प्रकोष्ठों में, तलघरों में हमारा दुख फैलता चला जाता है। ऊपर हम सुख को खोजते रहते हैं, भीतर दुख घना होता जाता है। जितना ज्यादा बाहर सुख की खोज होगी उतने ज्यादा दुख के कारण मजबूत हो जाएंगे और भीतर दुख घना हो जाएगा और व्यापक हो जाएगा, सुख के खोजी अंत में पाते हैं कि दुख में घिर गए हैं।

इसलिए मैंने प्रारंभ में ही यह बात आपको कहनी चाही। इस संबंध में थोड़ी आपसे बात कहूं, यह सुख की खोज एकमात्र भ्रांति है, एकमात्र अज्ञान है। सुख की खोज से दुख नहीं मिटेगा। दुख के निदान, दुख के कारण को जानने, पहचानने और अमटाने से दुख मिटेगा तो पहली तो बात यह कि सुख की खोज भ्रांत है और दुख को स्पर्श भी नहीं करती है, दुख के ऊपर-ऊपर फैल जाती है और भीतर दुख मजबूत बना रहता है, उसे कहीं भी नहीं छूती है।

यह वैसी ही है जैसी कोई एक वृक्ष हो और हम उसकी जड़ों को तो काटें नहीं और उसके पत्तों को काटते रहें। क्या आप जानते हैं कि पत्तों के काटने से और ज्यादा पत्ते वृक्ष में आ जाएंगे? क्या कोई वृक्ष पत्तों के काटने से नष्ट होता है? नहीं, और भी सघन हो जाता है। और भी घना हो जाता है। और भी उसके विकास के मार्ग खुल जाते हैं। वृक्ष नष्ट होता है जड़ों को नष्ट करने से। सुख की खोज दुख के पत्तों को छांटने जैसी है, दुख की जड़ को नष्ट करने जैसी नहीं है। जो व्यक्ति सुख की खोज कर रहा है, उसे मैं अधार्मिक कहता हूं और जो व्यक्ति दुख के कारणों को नष्ट करने की खोज कर रहा है, उसे मैं धार्मिक कहता हूं। उनको धार्मिक नहीं कहता जो मंदिर जा रहे हों, प्रार्थना कर हरे होंय क्योंकि हो सकता है, उनका मंदिर जाना और प्रार्थना करना सभी सुख की खोज हो। दुख को मिटाने का वैज्ञानिक उपाय नहीं है, इस बात को ठीक से समझ लेना। यह हो सकता है कि मंदिर में उनकी प्रार्थना सुख को ही पाने की खोज का हिस्सा हो और वह भगवान को भी सुख की खोज में अध्यात्म बनाना चाहते हों और वहां भी जाकर प्रार्थना कर रहे हों सुख को पाने की। और अगर भगवान उन्हें सुख देता हुआ मालूम पड़े तो वे मानेंगे कि भगवान है और कुछ नारियल चढ़ाएंगे, फूल चढ़ाएंगे। और अगर सुख देता हुआ न मालूम पड़े तो वे इनकार करेंगे कि भगवान का कोई प्रमाण नहीं मिलता। हम तो दुखी हैं। उनकी सुख की खोज ही उन्हें दुकान से हटा कर मंदिर तक ले जा सकती है। लेकिन सुख के खोजी को मैं धार्मिक नहीं कहता हूं।

एक दुनिया है, जहां हम धन कमा रहे हैं, भवन बना रहे हैं, यश प्रतिष्ठा को इकट्ठा कर रहे हैं, संग्रह कर रहे हैं, परिग्रह कर रहे हैं। एक सीमा आती है कि मनुष्य को दिखाई पड़ता है कि इससे तो दुख मिटता नहीं, और मुझे चाहिए सुख। यह भी हो सकता है कि इसी प्रतिक्रिया में, इसके रिएक्शन में वह सारा घर-द्वार छोड़ दे, संपत्ति छोड़ दे, साधु हो जाए। कष्ट झेलने लगे, शरीर को पीड़ा देने लगे, भूखा रहने लगे, शरीर को कोड़े मरने लगे, कांटों पर सोने लगे, धूप में पड़ा रहने लगे, नंगा रहने लगे। जितने कष्ट शरीर को दे सकता है, देने लगे। लेकिन स्मरण रहे यह

हो सकता है कि यह सारा कष्ट और पीड़ा भी स्वर्ग में, इस लोग में, परलोक में इस जन्म में, अलग जन्म में, कहीं सुख को पाने की आकांक्षा से किया जा रहा हो ये कृत्य अधार्मिक हो जाते हैं।

यह तो आपको ज्ञात ही होगा, सारे धर्मों ने स्वर्ग की कल्पना की है और स्वर्ग में उन सभी सुखों की व्यवस्था की है, जो यहां हमें उपलब्ध नहीं हैंय या जिनकी यहां वर्जना है और निषेध है। यह किस बात का सबूत है? यह इस बात का सबूत है कि जो लोग इस लोक में सुख पाने में असमर्थ हो जाते हैं, उनकी आकांक्षाओं की हद नहीं है। वह परलोक में उन्हीं सुखों को पाने की कामना से फिर पीड़ित हो जाते हैं।

ऐसा मुल्क है, ऐसे लोग हैं जिन्होंने स्वर्ग में कल्पना की है कि शराब के झरने बहुत है। यहां शराब निषिद्ध है। धर्म कहते हैं, यहां शराब पीना बुरा है। लेकिन बड़े आश्चर्य की बात है, वे धर्म जो कहते है, शराब पीना बुरा है वे, ही कहते हैं, जो शराब नहीं पीएंगे, ऐसे स्वर्ग में जाएंगे, जहां शराब की नदियां बहती हैं। यह विरोध दिखाई पड़ता है। यह समझ में आता है कि जिन्होंने यहां शराब छोड़ी है, उन्होंने इस वजह से भी छोड़ी हो सकती है कि वे ऐसे स्वर्ग में प्रवेश पाना चाहते हैं जहां। शराब के झरने बहते हों, नदियां बहती हो। यहां जिन-जिन कामनाओं को निषेध किया गया है, उन्हीं-उन्हीं कामनाओं की परिपूर्ण तृप्ति की व्यवस्था स्वर्ग में की गई है। ये सब बुभुक्षित, प्यासे भूखे, सुख-लोभी लोगों की कल्पनाओं से ज्यादा नहीं हो सकते हैं। और इसलिए दुनिया के जिस मुल्क में जिस तरह की बात सुख मानी जाती है उस मुल्क के लोगों ने अपने स्वर्ग में उसकी व्यवस्था कर ली है। सभी मुल्कों के स्वर्ग एक जैसे नहीं है, क्योंकि सभी मुल्कों की सुख की कामनाएं भिन्न-भिन्न हैं।

अगर आप तिब्बत में पैदा हों तो वह वहां सर्दी बहुत दुख है, वहां ठंड बहुत पीड़ा देती है। इसलिए उन्होंने अपने स्वर्ग में उष्ण की कामना की है। वहां सर्दी बिल्कुल नहीं है, बर्फ बिल्कुल नहीं है, पहाड़ बिल्कुल नहीं हैं, मैदान हैं। तिब्बतयों का जो स्वर्ग है वहां सर्दी बिल्कुल नहीं है, बड़ा उत्तप्त वातावरण है। लेकिन हमारा जो स्वर्ग है, वहां शीतल हवाएं बहती हैं। गर्म मुल्क का स्वर्ग अलग होगा। तिब्बतियों का जो नरक है, वहां बर्फ ही बर्फ है, वहां जो पड़ेगा गल जाएगा। हम गर्म मुल्क के लोग हैं, गर्मी कष्ट देती है। हमने नरक में कष्ट की व्यवस्था कर रखी है। और शीतलता सुख देती है तो स्वर्ग को एअरकंडीशंड कर रखा है। ठंडे मुल्क के लोग हैं, उनकी कल्पना में ठंड बहुत पीड़ा दे रही है। उन्होंने अपने स्वर्ग में गर्मी की व्यवस्था कर ली है और नरक में सर्दी की व्यवस्था कर ली है। यह हमारी सुख-दुख की कल्पनाओं के प्रक्षेपण हैं, उसके ही प्रोजेक्शन हैं, उसका ही विस्तार है।

हम जिन सुखों को यहां नहीं पा पाते, बहुत से लोग जो यहां पीड़ित रह जाते हैं, यहां अनुभव करते हैं कि नहीं मिलता, उससे भी वे जागते नहीं। उससे भी उन्हें यह ख्याल नहीं आता कि मेरी सुख की खोज जगत है, बल्कि यह ख्याल आता है कि इस संसार में सुख की खोज गलत है, उस संसार में सुख खोजना चाहिए। सुख की खोज मौजूद रह जाती है। अगर सुख की खोज के पीछे कोई संन्यास में गया हो तो वह संन्यासी भी, वह साधु भी संसारी का हिस्सा है, संसार के बाहर नहीं है। उसकी खोज अभी टूटी नहीं। अभी उसे यह स्मरण नहीं आया कि सुख की खोज ही भ्रांत है, चाहे इस लोक में, चाहे उस लोक में। उस लोक में तो और भी ज्यादा भ्रांत है। और भी ज्यादा। क्योंकि और भी ज्यादा कल्पना की बात होगी। हम कल्पना में उन्हीं बातों की व्यवस्था कर लेते हैं, जो हमारे भीतर कहीं हमारे चित्त को पकड़े रहती है।

मैंने सुना है, एक घर में एक कुत्ते और बिल्ली दोनों का आवास था। दोनों साथ-साथ रहते थे तो मैत्री हो गई थी। एक रात दोनों सोए, बहुत उठते तो बिल्ली बहुत प्रसन्न थी। उसकी आंखों में बड़ा जोश था। बड़ी अकड़ कर चल रही थी। तो कुत्ते ने पूछाः बात क्या हो गई? बिल्ली ने कहाः रात तो गजब हो गया। वर्षा आने को है, बादल घिर गए हैं, रात मैंने क्या देखा, तब मैंने देखा कि इस वर्ष वर्षा में पानी की वर्षा नहीं हो रही है, बल्कि चूके बरस रहे हैं। उस कुत्ते ने कहा, नासमझ मूर्ख बिल्ली! जब देखती है, गलत बात देखती है। कभी ऐसा हुआ है? जब भी वर्षा होती है तो साथ में हड्डियां बरसती हैं, चूहे आज तक न कभी बरसे हैं और न कभी बरस सकते हैं, कुत्ते के स्वर्ग में हड्डियां होंगी, बिल्ली के स्वर्ग में चूहे होंगे। बिल्ली के सपने में वही होगा, जो उसका सुख है। कुत्ते के सपने में वही होगा, जो उसका सुख है। क्या आपको पता है, स्वर्ग में जिन लोगों ने अप्सराओं की व्यवस्था कर रखी है और उनके अंग-अंग का वर्णन किया है क्या ये वे ही लोग नहीं होंगे जो स्त्रियों से यहां अतृप्त रह गए हैं? क्या यह सचाई नहीं ही भीतर, क्या यह मन शास्त्र इतनी भी नहीं समझ सकता? क्या हम इतने अंधे हैं कि यह भी नहीं जान सकते कि जिन्होंने स्वर्ग में अप्सराओं के अंग प्रत्यंग की बड़ी-बड़ी सुंदर-सुंदर कल्पना की है और एक-एक अंग का वर्णन किया है, ये लोग वे ही होंगे जो स्त्री से यहां अतृप्त रह गए हैं और स्त्री की कल्पना वहां तक चली गई है?

आपको यह पता है, स्वर्ग में अप्सराएं कभी बुद्ध नहीं होती? सदा युवा रहती है, चिर युवा रहती हैं। क्या आपको पता है, स्वर्ग में कल्पवृक्ष होते हैं, जिनके नीचे बैठती ही सब कामनाएं पूरी हो जाती हैं? जो धर्म कहते हैं,

सब कामनाएं छोड़ दो, वे ही धर्म कहते हैं, कामना छोड़ने वाले लोगों को स्वर्ग मिल जाएगा, जहां कल्पवृक्षों के नीचे बैठ कर सारी कामनाएं तृप्त हो जाती हैं। ये सब सुख का ही विस्तार है। यह कोई धर्म की खोज नहीं है। यह कोई वास्तविक जीवन की दिशा नहीं है और इस अर्थ में सारी दुनिया के धर्मों ने उन लोगों को, जो उनकी बातों को मानेंगे, स्वर्ग की व्यवस्था दे दी है और उन लोगों को, जो उनकी बातों को नहीं मानेंगे, नरक की व्यवस्था दे दी है। जो उनकी बातों को मानेंगे, उनको सुख का आयोजन है और जो नहीं मानेंगे, उनके लिए दुख की बड़ी व्यवस्थाएं हैं।

और कितना आश्चर्यजनक है, स्टैलिन को, हिटलर को या मुसोलिनी को भी जिन बातों का पता नहीं होगा कि आदमियों को किस-किस भांति कष्ट दिए जाएं, उनके बहुत पुराने गुरुओं ने सब ग्रंथों में लिख दिया है। नरक में कौन-कौन से कष्ट दिए जा सकते हैं, कौन कौन सी कल्पना की जा सकती है, वह बहुत पहले कर ली गई है। अभी बाद में फेसिस्ट मुल्कों ने आदमियों को परेशान करने की बहुत ईजादें निकालीं। अगर उनको समझ होती और वह सारे पुराने ग्रंथ पढ़ लेती और नरक में क्या-क्या योजना की गई हैं, अगर उनको जान लेते तो उनके कारागृह और भी समृद्ध हो जाते। वहां वे और परेशान करने के, टार्चर करने के, लोगों को पीड़ा देने की नई-नई ईजाद जान सकते। लेकिन जिन लोगों ने यह कल्पना की है कि जो हमारी बातों नहीं मानेंगे, उनको इस-इस तरह के दंड दिए जाएंगे, ये लोग कोई अच्छे लोग नहीं रहे होंगे। असल में जो अपने लिए सुख खोजता है वह सदा दूसरे के लिए दुख खोजने का आकांक्षी होता है। यह तो नियम की बात है। जो अपने लिए सुख खोजता है वह अनिवार्यतया दूसरे के लिए दुख खोजने की व्यवस्था रखता है। इसीलिए तो मैंने कहा, सुख का खोजी अधार्मिक होता है।

अगर आप सारा सुख छीन लेना चाहते हैं तो कैसे छीनेंगे, जब तक कि दूसरे लोगों का सारा सुख आपके पास न आ जाए? आप कैसे सुखी हो जाएंगे? सबका सुख छीन लो, ये सुख के कामियों ने नरक की भी कल्पना की है, जहां कि जो उनके विरोध में हैं, उनको डाल दिया जाएगा। और आप हैरान हो जाएंगे, छोटे-छोटे निर्दोष पापों के लिए... जिनको कि पाप भी कहना कठिन है, उनके लिए इटर्नल कंडमनेशन तक की भी व्यवस्था अनंतकाल के लिए भी! एक आदमी जिंदगी में कितने पाप कर सकता है? अगर मैं हिसाब लगाऊं तो जितने पाप किए होंगे, कल्पना में सोचे होंगे, अगर सबका भी कोई सख्त से सख्त मजिस्ट्रेट से फैसला करवाऊं तो पांच साल से ज्यादा सजा मिलना मुश्किल है। दस पांच साल की सजा होगी, सौ साल की सजा होगी, लेकिन इटर्नल कंडमनेशन, अनंतकाल तक नरक में पड़े रहना! जरूर किन्हीं दुष्ट मनों की, किन्हीं बहुत वायलेंट, किन्हीं हिंसक मनों की, यह कल्पना है। लेकिन जो आदमी भी सुख की खोज करता है, वह आदमी हिंसा होता ही है, क्योंकि उसके भीतर होता है दुख, उसके भीतर होती है परेशानी, उसके भीतर होती है अशांति, और सुख की वह खोज करता है। लेकिन भीतर इतना बेचौन, अशांत, परेशान और दुखी होता है कि वह कभी किसी दूसरे को सुख में नहीं देख सकता। दूसरे को सुख में देखना उसे कठिन हो जाएगा। वह तत्क्षण दूसरे के सुख को मिटा देना चाहेगा। चाहेगा कि मुझे सब मिल जाए और शेष सबका सब छिन जाए।

यह जो दौड़ है, क्राइस्ट को जिस दिन सूली दी गई उस दिन उनके सारे शिष्य उनके पास इकट्ठे थे और उन शिष्यों ने क्राइस्ट से पूछा कि यह खतरा मालूम होता है कि शायद आप पकड़ लिए जाए और आपको सूली दे दी जाए। तो आप कृपा करके यह तो बता दें कि हमने जो आपके साथ इतनी तकलीफें सहीं, मरने के बाद स्वर्ग में हमारी पद प्रतिष्ठा क्यों होगी?

आपको पता है, यह क्राइस्ट से उनके शिष्यों ने पूछा कि आप कल अगर मर गए तो कम से कम इतना तो आश्वासन दे दें कि जब आप मर जाएंगे, जब हम भी मरकर स्वर्ग में आएंगे तो कौन कहां बैठेगा? परमात्मा के आसपास की क्या व्यवस्था होगी? किसका क्या पद होगा?

ये कैसे लोग रहे होंगे! और क्राइस्ट के मन को कैसा नहीं लगा होगा, कैसी दया नहीं आई होगी... कैसे पागल लोग! जो कहते हैं, हमने इतना छोड़ा, हमने इतना खोया, आपके पीछे इतनी तकलीफ उठाई। वह जो आदमी गहरी भूख से मर रहा है, उपवास कर रहा है, शरीर को कष्ट दे रहा ह... ऐसे फकीर हुए हैं, जिनको कोड़े मार रहे हैं जिंदगी भर, क्योंकि यह ख्याल है कि शरीर को जितना सताओगे, परमात्मा उसके प्रतिफल में पर लोग में उतना ही सुख देगा। ये सब सुखवादी हैं, ये सब मैटीरियलिस्ट हैं, ये सब हेडानिस्ट हैं। ये सबके सब सुख की खोज कर रहे हैं। ये उस जगत में सुख की व्यवस्था करने के लिए तकलीफ झेल रहे हैं। यह तकलीफ वास्तविक नहीं है, यह तपश्चर्या झूठी है। तपश्चर्या तभी वास्तविक होती है जब वह सुख की खोज के लिए न हो, बल्कि दुख के मूल कारण मिटाने के लिए हो। जब वह दुख के भीतर से मूल कारण नष्ट करने के लिए है।

तो सबसे पहली जरूरत तो यह है कि हम यह जाने लें और यह पहचान लें कि चाहे इस लोक में, चाहे पर-लोग में सुख की जो आकांक्षा है, वही भटकाने वाला तत्व है, वही भ्रांत दिशा में ले जाने वाला ख्याल है। क्यों है

भांति दिशा में ले जाने वाला? भ्रांत दिशा में ले जाने वाला इसलिए नहीं है कि दूसरों ने कहा, है, शास्त्रों ने कहा है, साधुओं ने कहा है, गुरुओं ने कहा है, इसलिए नहींय अगर आप खुद अनुभव करें, विचार करें तो आपको दिखाई पड़ेगा कि सुख कहीं भी ले जाने में समर्थ नहीं है। कभी आप कल्पना में भी विचार करें, जो भी सुख आपने पाना चाहा है, अगर उसे पा लें तो फिर क्या करेंगे? फिर क्या होगा? उसके बाद बात खत्म जो जाएंगी?

यताति का उल्लेख है, पुरानी कहानी है... यताति सौ वर्ष का हो गया, मरने का हुआ... एक पुराना राजा था, काल्पनिक कथा होगी... मरने को हो गया, मौत करीब आ गई। यताति ने कहाः यह क्या? अभी तो मैं जी भी नहीं पाया, कोई सुख पा भी नहीं पाया और मौत आ गई! यह कैसा अन्याय है परमात्मा! और मैं तो रोज पूजा करता था, प्रार्थना करता था। यह कैसा धोखा है! मौत ने कहाः क्या सौ वर्ष बीत गए, तुम सुख उपलब्ध नहीं कर पाए? यताति ने कहा, अभी तो कुछ भी नहीं मिला। अभी तो खाली हाथ हूं। कृपा करो, सौ वर्ष मुझे और दे दो। मौत ने कहाः मैं असमर्थ हूं। मुझे तो किसी को ले जाना पड़ेगा। तुम्हारे लड़कों में से कोई राजी हो जाए तो मैं उसको ले जाऊं, तुमको छोड़ जाऊं। तुम उसकी उम्र ले लो और सौ वर्ष जी लो। उस बूढ़े ने अपने लड़कों से हाथ जोड़े और प्रार्थना की कि कृपा करो और मुझे उम्र दे दो। कौन लड़का देगा? और बाप कैसा पागल था, कैसा नासमझ था! जब तुम बूढ़े होकर मरने को राजी नहीं तो जवान लड़कों से उसने प्रार्थना की। लेकिन जो सबसे छोटा लड़का था, अभी बीस ही वर्ष उसकी उम्र थी, उसने कहा, मेरी उम्र ले लें। मौत ने उससे पूछा कि तू कैसा पागल है? बाप तेरा मरना नहीं चाहता है, तू मरना चाहता है। उसने कहा, मैं समझ गया, जब सौ वर्ष में पिता को सुख नहीं मिला तो मुझे कैसे मिल जाएगा? मेरे लिए मामला हल हो गया। मेरी उम्र ले लें, बात खत्म हो गई। मैं प्रयोग करके देखता, वह मुझे दिखाई पड़ गया। यही तो मेरा होगा जो पिता का हुआ, यही दौड़ में भी दौडूंगा।

हर आदमी करीब-करीब एक सी दौड़ दौड़ रहा है। क्या आपको पता है, हम सब लोग एक ही तरह की जिंदगी रिपीट कर रहे हैं? यहां इतने लोग बैठे हैं, क्या आप सोचते हैं, आप अलग-अलग जिंदगी जी रहे हैं? वही क्रोध है, वही काम है, वही लोभ है, वही दुख है, वही पीड़ा है। एक सी जिंदगी रिपीट कर रहे हैं। यह कहानी बिल्कुल एक है, बहुत भेद नहीं है। इसमें थोड़े बहुत के अंतर होंगे। दुनिया में इसका कोई बहुत भेद नहीं है।

उस लड़के ने कहा, बात समझ में आ गई, यही जिंदगी तो मैं जीऊंगा उम्र दे दी। सौ वर्ष फिर बीत गए। फिर सौ वर्ष बीतने में देर कितनी लगती है! सौ वर्ष फिर बीत गए। फिर मौत आ गई। यताति चौंक गया। उसने कहा कि अभी? इतने समय बीत गया क्या? अभी तो मैं कुछ उपलब्ध कर नहीं पाया। मौत ने कहा, फिर तुम्हें छोड़ सकती हूं, अगर तुम्हारा एकाध लड़का... .इस सौ वर्ष में फिर उससे लड़के हो गए... कोई अपनी उम्र देने को राजी हो जाए। और ऐसी कहानी चलती है। यताति एक हजार वर्ष जीया। और एक हजार वर्ष के बाद जब मौत आई तो मसला वहीं था। उसने कहा कि अभी? मैं तो वहीं का वहीं हूं।

क्या आपको ख्याल है कि कल सुबह आप जहां थे, आज सुबह भी वही थे? क्या आपको ख्याल है कि एक वर्ष पहले जहां थे, इस वर्ष भी वही थे? क्या आपको ख्याल है, दस वर्ष पहले आप जहां थे, इस वर्ष भी आप वहीं थे? या कि सुख की मात्रा में कोई विकास हो गया? और अगर दस साल में विकास नहीं हुआ तो सौ साल में कैसे होगा, हजार साल में कैसे होगा? यह तो सिर्फ गणित को थोड़ा बड़ा कर लेना है। यह तो थोड़े से गणित की बात है, यह तो कोई बहुत समझदारी का, कोई बहुत बड़े तर्क की बात नहीं है, कल सुबह आप वही थे, आज सुबह भी वही हैं, कल सुबह भी वहीं होंगे तो क्या होगा? हजार साल बीतें कि लाख साल बीतें, आप वहीं की वहीं होंगे।

इस जीवन में, जिसे हम सुख की खोज मानकर चलते हैं, कभी कोई उपलब्धि नहीं हुई है, न हो सकती है। न हो सकने का कारण है। पहली बात, जो आदमी सुख कोख जाता है, जैसा मैंने कहा उसके भीतर दुख तो बना ही रहता है, वह तो कहीं जाता नहीं, सुख से छूता भी नहीं। सुख की नई-नई झलक विलीन हो जाती है, दुख फिर खड़ा हो जाता है। इसलिए सारी दुनिया में सुख के जो पागल हैं वे नये से नये सेंसेस की, नई से नई संवेदनाओं की खोज करते हैं। नई से नई संवेदनाओं की खोज करते हैं। और यही कारण है कि विज्ञान ने बहुत सी नई संवेदनाएं खोज दी हैं, जिनको हम सुख की संवेदनाएं कहें। और यही कारण है कि विज्ञान और यह स्वर्ग वादी धार्मिक जो हैं, विरोध में पड़ गए। दो तरह के सुख वाद हो गए दुनिया में, दोनों में झगड़ा शुरू हो गया। और लोग वैज्ञान के सुख वाद की ओर जल्दी झुक गए, क्योंकि परलोक की रोटी का क्या विश्वास! इस लोक में जो रोटी मिलती है, वह ज्यादा विश्वास हैय असंदिग्ध है। अस पर शक नहीं किया जा सकता। जब तक दुनिया में विज्ञान नहीं था, यह तथाकथित धर्म का, यह जो स्वर्ग और नर्कवादी धर्म है, यह जो सुख का विश्वास दिलाने वाला धर्म है कि जो ऐसा करेगा उसे सुख मिलेगा, जो ऐसा नहीं करेगा उसे दुख मिलेगा, ऐसा जो धर्म है, जिसका प्रलोभन और भय से नाता है, जो

प्रलोभन देता है कि यह-यह सुख देंगे तुमको, इस तरह का जीवन जीओ, तो जो सुख पाने के आकांक्षी हैं, उस तरफ का जीवन जीने को राजी हो जाते हैं।

इस तरह का जो धर्म है, विज्ञान का जब तक जन्म नहीं हुआ, अकेला था। सारी दुनिया धार्मिक मालूम पड़ती थी। फिर एक नया प्रतियोगी पैदा हुआ इधर तीन सौ वर्षों में। और विज्ञान ने कहा, छोड़ो स्वर्ग की बकवास हम यही बनाए देते हैं। छोड़ो अप्सराओं की फिकर, हम अप्सराएं जमीन पर खड़ी किए देते हैं। छोड़ो यह फिकर, हम यही भवन बनाए देते हैं जो कि सुखद होंगे। और बड़े जोर से पागलपन शुरू हुआ जमीन को ही स्वर्ग बनाने का। धार्मिक लोग घबड़ा गए। झूठे धार्मिक लोग सब घबड़ा गए, क्योंकि बड़ी दिक्कत हो गई। उसमें ग्राहक छिन जाने का डर बहुत से जोर पैदा हो गया। क्योंकि ग्राहक परलोक की दुकान पर अब राजी नहीं हो सकते थे। अब जब यहां प्रत्यक्ष मिलता हो तो कल्पना में कौन फिकर करे? इसलिए विज्ञान का जोर से प्रभाव हुआ। सारी दुनिया में विज्ञान का भौतिकवाद प्रभावी हो गया। धार्मिक लोग गाली देने लगे कि हम आध्यात्मिक हैं और ये भौतिकवादी है।

मैं आपको कहूं, भौतिक का ही भौतिकवाद से विरोध हो सकता है। आध्यात्मिक का भौतिकवाद से कोई विरोध ही नहीं हो सकता है। कैसे हो सकता है? अध्यात्मवाद का भौतिकवाद से क्या विरोध हो सकता है? वे तो दिशाएं ही अलग हैं। लेकिन भौतिकवाद का भौतिकवाद से विरोध हो सकता है। पुराने तरह का जो मैटीरियलिज्म था, वह जो स्वर्ग नरक की भाषा में सोचता था, पाप पुण्य के प्रतिफल देने की भाषा में सोचता था। अमीर आदमी हो जमीन पर तो हम कहते थे कि पिछले जन्मों के पुण्य कर्म का फल भोज रहा है। जब कि असलियत यह है कि इसी जन्म के पापों का फल है, धनय पिछले जन्म के पुण्यों का फल नहीं। और गरीब था दरिद्र था तो उसको कहते कि पिछले जन्म के पापों का फल भोग रहा है। यह हमारी व्यवस्था थी, हिसाब था कि लोगों के दिमाग में किसी तरह की क्रांति संभव न हो, कोई विचार, कोई विद्रोह पैदा न हो। लोगों को हमने तय कर रखा था कि जो गरीब है, वह पाप की वजह से गरीब है, जो अमीर है, वह पुण्य की वजह से अमीर है।

यह सारी जो व्यवस्था थी, यह सारी की सारी पदार्थवादी भौतिकवादी व्यवस्था थी, सब मैटीरियलिज्म था। इन सारे के सारे मेटी रियलिज्म से साइंस के मैटीरियलिज्म का विरोध हो गया। साइंस ने जो भौतिकवाद खड़ा किया वह सबल साबित हुआ। सारे धार्मिक घबड़ा गए और गाली देने लगे विज्ञान को। लेकिन गाली हमेशा कमजोर देता है और देने से कोई फल नहीं होता है। वह गाली देते बैठे रहे और विज्ञान का भौतिकवाद जोर से फैलता गया। मैं इसमें कोई बहुत विरोध नहीं देखता हूं। ये दोनों एक ही तरह के भौतिकवाद हैं। धर्म बहुत दूसरी बात है। वह भौतिकवाद है ही नहीं, वह सुख की खोज ही नहीं है। वह तो तभी शुरू होती है धर्म की बुनियाद, धर्म की दिशा, वह जो वास्तविक धर्म है, उसकी दिशा तभी शुरू होती है जब कोई व्यक्ति सुख की दौड़ के भ्रम से जाग जाता है। और उसे दिखाई पड़ता है कि यह तो पागल दौड़ है, इसका कोई अंत नहीं है, इसका कोई अर्थ नहीं है। जब यह दिखाई पड़ता है कि सुख की दौड़ कहीं भी नहीं ले जा सकती, उस क्षण में, उस डिइलूजनमेंट में, उस भ्रम के टूट जाने पर व्यक्ति का चित्त किसी और दिशा में मुड़ना शुरू होता है और वह दिशा धर्म की दिशा होती है।

हम अनेक-अनेक प्रकारों के भौतिकवादी होंगे। कोई धार्मिक प्रकार का भौतिकवादी होगा, कोई वैज्ञानिक प्रकार का भौतिकवादी होगा, लेकिन ये सब भौतिकवाद हैं। ये सब भौतिकवाद हैं। दिखाई नहीं पड़ते, बहुत सूक्ष्म हो सकती है हमारी पकड़। हमारी मैटीरियलिस्ट जो पकड़ होती है, वह सूक्ष्म हो सकती है।

मैं एक साध्वी से मिलता था... कल ही मैं बात कर रहा थाय कल ही मैं लोगों से कह रहा था... एक साध्वी से मिलता था, मेरा कपड़ा उड़ता था हवा में, उसको छू गया। वह घबड़ा गई। हवा उड़ती रही, कपड़ा छूता रहा, वह बहुत घबड़ाती रही। किसी ने मुझे रोका और कहा कि साध्वी को पुरुष का कपड़ा नहीं छूना चाहिए। तो मैंने कहा, मैं समझ ही नहीं पाता कि साधु-साध्वी कहते हों कि हम आत्मा हैं और शरीर नहीं हैं, वह कपड़े के छूने से घबड़ा जाएं। कपड़ा किसको छूता हैय आत्मा को या शरीर को? और जब शरीर को कपड़ा छूता हो, और वह कपड़ा भी पुरुष और स्त्री का हो जाए तो बहुत आश्चर्य की बात हो जाएगी। यह तो हद्द दर्जे का, बहुत नीचे दर्जे का पदार्थवाद हो गया कि मेरा कपड़ा चूंकि पुरुष पहने हुए है इसलिए कपड़ा भी पुरुष हो गया और स्त्री पहने हुए है तो कपड़ा स्त्री हो गया। कपड़ा तो कपड़ा है बस।

लेकिन यह हमारी बहुत बहुरी भौतिकवादी पकड़ है और भौतिकवाद की यह विरोधी पकड़ दिखाई नहीं पड़ती। यह हमारे ख्याल में नहीं आती, क्योंकि हमने परंपरा से सुन रखा है कि यह ठीक है और हम परंपरा से माने बैठे हैं कि यह ठीक है। जो हम बहुत दिन तक ठीक माने रहते हैं, बहुत दिन तक, बहुत समय तक, बहुत वर्षों तक जो बातें हमें ठीक समझाई जाती रहती हैं, हम उनकी ठीक मानने को राजी हो जाते हैं... बिना विचारे, बिना सोचे हुए।

ये सब भौतिकवाद के रूप हैं। इनका अध्यात्म से कोई गहरा संबंध नहीं है, अध्यात्म का संबंध, धर्म का संबंध तो सारी दिशा के और खोज के परिवर्तित हो जाने से, एक रिव्योलूशन, एक क्रांति हो जाने से है।

एक छोटी सी कहानी आपसे कहूं और उसके बाद मैं कहूं, यह क्रांति हो तो उसके बाद क्या होगा? लेकिन कैसे हो? छोटी सी बच्चों की कहानी है।

एक अलाइस नाम की लड़की है, वह परियों के देश में पहुंच गई है। परियों का देश है, वह वहां पहुंच गई है। बच्चों की कहानी है, काल्पनिक कथा, वह पहुंच गई है। थक गई जमीन से आकाश तक पहुंचने में। भूख लग आई, प्यास लग आई। उसने आंख उठा कर देखा, तो देखा, बड़ा हरा-भरा है परियों का देश। परियों की रानी... वह दूर एक वृक्ष के नीचे खड़ी है। किसी कल्पवृक्ष के नीचे खड़ी होगी। रानी के पास बहुत मिठाइयां है, बहुत फल हैं। उस रानी ने उसे हाथ से इशारा किया कि आओ, आवाज दी। करीब ही है दरख्त, ज्यादा दूर भी नहीं है। शीतल छाया है उसके नीचे, पानी का झरना है, मिठाइयां है, फल हैं। वह इलाइस दौड़ने लगती। भूखी है लड़की। जमीन से स्वर्ग तक की यात्रा की है। वह वह भागने लगी। सुबह थी, सूरज उग रहा था, वह भागती गई, भागती गई और भागती गई। आखिर में घबड़ा गई, दोपहर हो गई और उसने खड़े होकर देखा, रानी और उसके बीच फासला उतना का उतना है, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ा। उसने बहुत चिल्लाकर पूछा कि यह क्या बात है? मैं दौड़ते-दौड़ते थक गई, सुबह से दोपहर हो गई और अभी तक मैं कहीं पहुंची नहीं। रानी ने कहा, सोचो मत, जो सोचता है, वह दौड़ता नहीं है। रानी ने कहा, सोचो मत। जो सोचता है, फिर दौड़ नहीं पाता। दौड़े चलो। जो दौड़ता चलता है, वह ही दौड़ सकता है। जिसने सोचा, कि रुक जाएगा, खड़ा हो जाएगाय फिर मुश्किल हो जाएगी। आओ, घबड़ाओ मत, जरूर पहुंच जाओगी।

फिर उसने दौड़ना शुरू किया। फिर वह दौड़ी। और दौड़ी और दौड़ी। सांझ होने लगी, सूरज ढलने लगा तो फिर खड़ी हो गई। उसने चिल्लाकर पूछा, मामला क्या है? यह समस्या कैसी है? यह पहेली क्या है? सांझ होने के करीब आ गई, दौड़ते-दौड़ते मैं थक गई हूं, फासला उतना की उतना है, डिसटेंस वही का वही है। वह रानी खड़ी है सामने और दोनों के बीच का अंतर उतना का उतना है। रास्ता उतना अभी भी पार करना है। उस रानी ने कहाः देखो, मैंने फिर भी कहा, सोचो मत, जो सोचता है, रुक जाता है। दौड़ो। अगर पहुंचना है तो दौड़ते रहो। वह फिर दौड़ने लगी, सूरज ढल गया, रात हो गई। उसने चिल्ला कर कहाः अब तो रात होने लगी। यह तुम्हारी दुनिया कैसी है, जहां कोई चले तो रास्ता पूरा नहीं होता? वह रानी हंसने लगी। उसने कहाः पागल! किसी दुनिया में, किसी भी दुनिया में कोई कितना चले, कोई भी रास्ता कभी पूरा नहीं होता। तुम्हारी दुनिया में कोई कितना चले, कोई भी रास्ता कभी पूरा नहीं होता। तुम्हारे दुनिया में भी कोई कितना ही चले, कोई कितना ही दौड़े कोई कितना ही श्रम करे, रास्ता कभी पूरा नहीं होता। जो पाना था, वह जन्म के दिन जितना दूर रहता है, मृत्यु के दिन भी उतना ही दूर पाया जाता है।

वह फासला वही का रहता है। जन्म के दिन जितना अधूरा होता है आदमी, जितना दुखी होता है, मृत्यु के दिन भी उतना ही पता है। कोई सुख उपलब्ध नहीं होता। उपलब्ध हो ही नहीं सकता, अगर कोई सुख को खोजेगा तो। फिर कैसे हो सकता है? फिर कैसे होगा? और जितना कोई सुख को खोजता है, पीछे दुख खड़ा हो ही रहता है। सुख और दुख दोनों एक ही सिक्के के दो पहले हैं। वे अलग-अलग नहीं है। वे एक ही बात के दो पहलू हैं। क्या आपको पता है कि सुख और दुख एक-दूसरे के पीछे छिपे रहते हैं? प्रेम और घृणा एक-दूसरे के पीछे छिपे रहते हैं? शांति और क्रोध एक-दूसरे के पीछे छिपे रहती हैं? अभी आप शांत हैं और बगल का आदमी जरा सा एक गाली आपकी तरफ फेंक दे और शांति विलीन हो जाएगी, अशांति आ जाएगी। अभी आप मुझे बड़ा प्रेम कर रहे हैं और मैं एक ऐसी बात कह दूं, कि प्रेम विलीन हो जाएगा और घृणा सामने आ जाएगी। अभी आप मुझे बड़ा आदर कर रहे हैं, एक छोटा सा काम ऐसा कर दूं, सब आदर विलीन हो जाएगा, अनादर सामने आ जाएगी। जिसको आप फूल की माला पहना रहे हैं, जरा कुछ बात गड़बड़ हो जाए, फूल की माला अलग और गर्दन पर छुरी लेकर खड़े हो जाएंगे।

आपके भीतर शांति के पीछे अशांति छिपी रहती है, आपके प्रेम के पीछे घृणा छिपी रहती है, आपके सुख के पीछे दुख छिपा रहता है, अभी सुखी हैं, एक क्षण में दुखी हो सकते हैं। अभी दुखी हैं, एक क्षण में सुखी हो सकते हैं। ये एक-दूसरे के पहलू हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो जो आदमी कितना ही सुख को खोजे, जाएगा कहां? दूसरा पीछे छाया की तरह खड़ा रहेगा। आप कितना ही भागें, आपकी छाया आपके साथ होगी। कितना ही सुख खोजें, दुख पीछे छाया की भांति खड़ा रहेगा। जरा ही आंख मोड़ेंगे, पाएंगे वह मौजूद है।

इसलिए जिन्होंने सुख के जीवन का विश्लेषण किया हो... आप भी करें, कोई भी करे, उसे दिखाई पड़ेगा, सुख की खोज कहीं ले जाती नहीं। यह बिल्कुल ही वंध्या, यह बिल्कुल मार्ग जो है, वंध्या मार्ग है। इस पर कहीं कुछ उत्पत्ति नहीं होती, इस पर कुछ कहीं पाया नहीं जाता। यह बिल्कुल बांझ है। यह दिशा बिल्कुल ही उत्पत्तिहीन है।

यह बिल्कुल ऊजड़ जमीन है, जमीन है, इस पर कुछ नहीं होता। यह सुख की खोज की जो जमीन है, यह जब दिखाई पड़े, यह जब ख्याल में आए तो आपको लगेगा, यह तो क्या हुआ, यह तो जीवन व्यर्थ गया, अब क्या करूं? अब क्या ाहो? यह सुख की खोज तो सब फिजूल हो गई और मैं कहीं पहुंचा हनीं। अब क्या हो? तो आप अपने दुख को देखें कि वह कहां है? आप भीतर जाए और पहचाने कि दुख कहां है, कहां है दुख का क्या स्वरूप है? क्या मिलेगा?

अगर भीतर झांक कर देखेंगे तो दुख के स्वरूप क्या मिलेंगे? हाथ-पैर में दर्द है, यह दुख नहीं है, यह तो कष्ट है। यह तो दवा दे देंगे तो ठीक हो जाएंगे। किसी के शरीर में कोई बीमारी है, यह कोई दुख नहीं है, यह तो कष्ट है। यह तो इलाज से ठीक हो जाएगी। कष्ट को तो विज्ञान ठीक कर लेता है। लेकिन अगर कोई बीमारी न हो, कोई हाथ-पैर में तकलीफ न हो, सब भांति सुविधा हो, घर में कोई असुविधा न हो तो क्या आप सोचते हैं, आपके भीतर दुख नष्ट हो जाएगा? अगर यह सच होता तो महावीर को घर छोड़कर भागने का क्या सवाल था? बुद्ध को घर-द्वार दौड़ देने का क्या सवाल था? सब सुख उनके पास था। कौन सी कमी थी? कौन सी बात नहीं थी? सब था, लेकिन भीतर दुख था। कष्ट न हो, इससे दुख नहीं मिटता। कष्ट सब मिट जाए, दुख कोई और बात है। दुख क्या है? दुख है आत्म-अज्ञान। स्वयं को न जानना ही दुख है। स्वयं के परिचित न होना ही दुख है। स्वयं से पहचान न होना ही दुख है। खुद के स्वरूप के प्रति अनजान, अपरिचित, अज्ञान में बने रहना ही दुख है। दुख है एक कि मैं स्वयं को नहीं जानता हूं। और जब तक मैं स्वयं को न जान लूं तब तक दुख के बाहर नहीं हो सकता हूं। और जिस दिन मैं स्वयं को जान लूं उसी दिन सुख के और आनंद के द्वार खुल जाएंगे और मैं दुख के बाहर हो जाऊंगा।

स्वयं को जानना... यही है, यही है वह चाबी, वह सीक्रेट, वह रहस्य जो मनुष्य को धर्म की दिशा में ले जाता है। और बस जान ले, कुछ भी होगा। इसको जानना ही होगा, जो भीतर बैठा है। कैसे इसे जानेंगे, कैसे इसे पहचानेंगे? क्या करेंगे जिससे यह जाना जा सके? एक छोटा सा काम करेंगे तो शायद यह जाना जा सके। इस छोटे से सूत्र को मैं अंत में आपसे कहता हूं, अगर इसकी प्रयोग हो तो जाना जा सकता है कि भीतर कौन है? साधारणतः दुख आता है तो हम कहने लगते हैं कि मैं दुखी हूं। सुख आता है तो हमने कहने लगते हैं, मैं सुखी हूं। जो भी घटना हम पर घटने लगती है, हम कहने लगते हैं, मैं यही हूं। बच्चा होता हूं तो मैं कहने लगता हूं, मैं बच्चा हूं। जवान होता हूं तो कहने लगता हूं, मैं जवान हूं। बूढ़ा हो जाता हूं, तो कहने लगता हूं, बूढ़ा हूं।

यह मैं क्या बच्चा भी हो सकता है, जवान भी हो सकता है, बूढ़ा भी हो सकता है? यह मैं दुखी भी हो सकता है, सुखी भी हो सकता है। तो क्या इससे यह बात ख्याल में नहीं आती कि यह जो मैं नाम का तत्व होगा, सुख से, दुख से, चुपचाप से, बुढ़ापे से अलग होगा?

अभी मैं यहां बैठे हुए हैं, यहां भवन के बाहर बैठे हुए हैं। आप चाहें तो भगवान के भीतर जा सकते हैं। आप चाहे तो फिर बाहर आ सकते हैं। तो जो आदमी भवन के भीतर जा सकता है, बाहर आ सकती है, उसके भीतर जाने और बाहर आने से क्या वह प्रमाणित नहीं होता है कि वह भीतर जाने और बाहर आने से क्या वह प्रमाणित नहीं होता है कि वह भवन से पृथक और अलग है? अगर मैं दुख में जा सकता हूं और दुख के बाहर आ सकता हूं, सुख में जा सकता हूं, सुख के बाहर आ सकता हूं, तो क्या इससे यह प्रमाणित नहीं होता है कि मैं सुख और दुख दोनों से अलग हूं। अगर मैं दुखी होता तो फिर मैं सुखी नहीं हो सकता था। अगर मैं सुखी होता तो फिर मैं दुखी नहीं हो सकता था। मैं सुबह एक झाड़ के नीचे बैठ जाऊं, सूरज निकलेगा, प्रकाश फैल जाएगा तो मैं कहूंगा कि मैं दिन हूं? रात आएगी, अंधेरा भर जाएगा, तो क्या मैं कहूंगा कि मैं रात्रि हूं? मैं कहूंगा कि मैंने देखा कि दिन आया, मैंने देखा कि रात आई और मैं तो अलग हूं।

जीवन के प्रत्येक अनुभव के साथ अपने को बांध देने से कि मैं यही हूं, अज्ञान घना होता है और आत्म-अज्ञान प्रगाढ़ होता है। और जीवन के प्रत्येक अनुभव से स्वयं को पृथक कर लेने से कि मैं दुख को देखने वाला हूं, दुखी मैं नहीं। मैं केवल सुख को देखने वाला हूं, सुखी में नहीं। मैं केवल देखने वाला हूं कि युवा अवस्था आ गई, मैं केवल देखने वाला हूं कि बुढ़ापा आ रहा है, मैं केवल देखने वाला हूं कि अभी जाग रहा हूं और अब नींद आ रही है। और मैं केवल देखने वाला हूं कि दिन हुआ, प्रकाश हुआ, रात्रि हुई और अंधेरा हुआ। अगर यह द्रष्टा का तत्व, अगर यह देखने वाले का बोध पृथक हो सके, अगर यह साक्षी का भाव पृथक हो सके... हो सकता है, निश्चित हो सकता है। पहाड़ खोद कर पानी निकाला जा सकता है, चांद पर यात्रा की जा सकती है, ग्रह नक्षत्रों की यात्राएं संभव हो जाएंगी, समुद्र के भीतर मीलों गहराइयों में रत्न खोजे जा सकते हैं, तो अपने भीतर इस स्वयं को क्यों नहीं खोजा जा सकता?

मनुष्य ने बड़ा पुरुषार्थ दिखलाया है बाहर के जगत में। इतना बड़ा पुरुषार्थ दिखाया है, अगर उतना ही साहस और सामर्थ्य और श्रम स्वयं के भीतर प्रविष्ट किया जाए, स्वयं के साथ लगाया जाए तो भी कारण नहीं है कि हम स्वयं को क्यों न जान सकें? जो हम हैं, वह क्यों न जाना जा सके? स्वयं को जानने का सूत्र है, सब अनुभवों से, सब एक्सपीरिएंसेस से जो अनुभूतियां होती हों, अपने को अलग कर लेना, भिन्न कर लेना। चौबीस घंटे कोई मंदिर जाने की बात नहीं है। अगर मंदिर जाए, तो जानें कि मंदिर जाने वाला मैं नहीं हूं, मैं केवल देख रहा हूं कि फलां सज्जन मंदिर जा रहे हैं। रास्ते पर चलते हैं तो जानें कि रास्ते पर मैं चलने वाला नहीं हूं, मैं देख रहा हूं कि फलां सज्जन चल रहे हैं।

एक साधु थे, उनका नाम था राम। वह ऐसा नहीं कहते थे कि मैं फलां जगह गया। वह कहते थे, रात फलां जगह गए। वह कभी ऐसा नहीं कहते थे कि वहां लोग आए और मुझे गालियां दीं। वह कहते थे कि वहां कुछ लोग आए और राम को गालियां देने लगे। तो लोग उनसे पूछते कि कौन राम? तो वह कहते, यह। तो लोग कहते कि आप ऐसा क्यों नहीं कहते कि मैं? उन्होंने कहा कि नहीं, मैं कैसे कहूं? मैं तो देखने वाला था। लोग राम को गालियां दे रहे थे, मैं भी देख रहा था।

एक तीसरा बिंदु पैदा करे, एक साक्षी का बिंदु पैदा करें, जो अलग खड़ा हो सके आपके जीवन में। जो आपके सारे जीवन के चलते हुए घेरे से दूर खड़ा हो सके, देख सके, जाने सके, साक्षी हो सके, विटनेंस हो सके। अगर ऐसा बिंदु आप धीरे-धीरे विकसित करें, आज बीज की तरह है, कल अंकुर बनेगा, परसों बड़ा पौधा बन सकता है। फिर बड़ी घनी छाया दे सकता है। और जब यह जितना विकसित होता जाएगा, आप पाएंगे, न तो दुख है, न सुख है। आप पाएंगे, न तो कोई पीड़ा है। तब आप पाओगे, न तो अंधेरा है, न प्रकाश है। मैं तो अलग हूं, मैं तो पृथक हूं। मैं तो हर अनुभूति से दूर हूं और भिन्न हूं। जब यह अनुभव में होगा कि मैं पृथक हूं, अल हूं, मैं तो दूर हूं, तब एक तत्व चेतना आपके भीतर जाग्रत होगी तो आप पाएंगे कि उस तत्व को पा लेना ही आनंद को पा लेना है। उस तत्व को पा लेना ही धर्म को पा लेना है। उस तत्व को पा लेना ही धर्म है। क्योंकि धर्म का क्या अर्थ है? धर्म का अर्थ है स्वरूप। अपने खुद के स्वरूप को पा लेना धर्म है। और उसे जो पा लेता है वह जीवन के अभिप्राय को पा लेता है। वह कृतार्थ हो जाता है, वह धन्य हो जाता है।

लेकिन हम सुख को खोजते रहेंगे, दुख से बचते रहेंगे, तो उसको हम कैसे पाएंगे, जो न सुख है और न दुख है? हम अंधेरे में भागते रहेंगे और प्रकाश को खोजते रहेंगे तो उसे कैसे पाएंगे, जो न प्रकाश है और न अंधेरा है? अगर हम भोजन को खोजते रहेंगे या फिर कभी उपवास को खोजने रहेंगे तो उसे हम कैसे पाएंगे जा कि भोजन करने का भी द्रष्टा है और उपवास करने का भी द्रष्टा है... वह जो दोनों से अलग है। अगर वह गृहस्थी को खोजते रहेंगे और फिर संन्यास को खोजते रहेंगे तो उसे कैसे पाएंगे जो कि गृहस्थी को भी देखने वाला है और संन्यास को भी देखने वाला है? वह जो सबसे पृथक है और किसी अनुभूति में, किसी अनुभव में आविष्ट नहीं होता, बाहर रह जाता है, उसको कैसे देख पाएंगे? उसे देखने के लिए तो जानना होगा, पहचानना होगा, श्रम करना होगा। उठते, बैठते, सोते, जागते उसका स्मरण रखना होगा। अगर हम उसका स्मरण रख सकें... अभी आप सुन रहे हैं। मेरी बात, एक क्षण को, जब आप सुन रहे हैं मेरी बात तो आपको यह ख्याल हो रहा होगा कि मैं बोल रहा हूं और आप सुन हरे हैं। अगर मेरी तरफ से लें तो मैं यह देख रहा हूं कि बोला जा रहा है। अगर आप भी थोड़ा ख्याल करें तो आपको फौरन दिखाई पड़ेगा कि आप देखने वाले पीछे खड़े हैं और आपके भीतर कोई मन है जो सुन रहा है। अभी मैं बोल रहा हूं, एक क्षण को भी अगर उस तरफ ख्याल जाए तो आपको स्पष्ट दिखाई पड़ेगा कि आप सुन रहे हैं, इसको भी जानने वाला आपके भीतर एक तत्व मौजूद है। आप सुन रहे हैं, इसका भी बोध करने वाला एक तत्व मौजूद है, जो अलग खड़ा हुआ है।

उस तत्व की तरफ ध्यान विकसित हो, उस तत्व की तरफ दिशा चले तो आपकी धर्म की तरफ दिशा होगी। और जिस दिन आप उस तत्व को खोज लेंगे, उस दिन आप मंदिर में प्रविष्ट हो जाएंगे। उस दिन आप परमात्मा के सामने खड़ा हो जाएंगे। अभी इन मकानों में मत खोजते फिरे, जिनको हमने मंदिरों के नाम दे रखे हैं। हम बहुत पागल हैं, हम चीजों पर भी लेबल लगा देते हैं, मकानों पर भी लगा देते हैं... कोई मस्जिद का, कोई मंदिर का। वे सब मकान हैं। मंदिर तो भीतर है और परमात्मा वहां है और वहां खोलने की मैं आपको चाबी कह रहा हूं... जागें और साक्षीभाव को, जो अलग है हमेशा। जब रात आप सोने जाते हैं तो खाल करें, एक व्यक्ति सो रहा है और आपके भीतर एक तत्व है जो जान रहा है कि कोई सोने जा रहा है। जब भूख लगती है तब आप देखें, विचार करें, समझें तो आपको दिखाई पड़ेगा, एक तल पर भू, लग रही है, दूसरे तल पर कोई देख रहा है कि भूख लग रही है। भूख लगने को को जाना जा रहा है।

दो दिशाएं मैंने आपसे कहीं... एक सुख की खोज की दिशा है और एक दुख के मूल कारण को मिटाने की दिशा है। दुख का मूल कारण मैंने कहा, आत्म-अज्ञान। और ध्यान का मैंने अर्थ आपसे कहा, उस तत्व के प्रति सजग होना जो हमारे भीतर प्रत्येक स्थिति में ज्ञाता है, प्रत्येक स्थिति में नोअर है, प्रत्येक स्थिति में ज्ञान है और प्रत्येक स्थिति में केवल जान रहा है। यह जानना ही आत्मा का स्वरूप है। यह ज्ञान... यह केवल ज्ञान मात्र ही आत्मा का स्वरूप है। यही चेतना का प्राण है, इसे, इस दिशा में कुछ गति करेंगे... .और ऐसा न सोचें।

लोग मुझसे कहते हैं, बड़ी कठिन बात कर रहे हैं। इससे सरल और कोई बात नहीं हो सकती, क्योंकि सत्य से सरल और क्या हो सकता है? असत्य कठिन होता है, जटिल होता है। सत्य से सरल और क्या होगा? यह बिल्कुल सरल बात है, यह बिल्कुल सीधी बात है। अगर यह कठिन मालूम होगी तो कठिनता आपके मन में कहीं होगी। अगर यह जटिल मालूम होती है तो कोई पूर्व धारणाएं बनी होंगी जिनके कारण जटिल मालूम होती होंगी। अगर मन की सारी धारणाओं को एक क्षण अलग कर दें, अपने सीखे हुए सिद्धांत एक तरफ रख दें तो सीधे जो मैं कह रहा हूं, उसके तथ्य पर, उसके फैक्ट पर विचार करें तो आपको स्वयं दिखाई पड़ेगा कि सीधी और सरल बात है। और जीवन में सत्य को पाया जा सकता है और प्रत्येक पा सकता है। यह कुछ चुने हुए लोगों का, कोई चूजेन फ्यू, उनका अधिकार नहीं है। सत्य सबका अधिकार है, प्रत्येक का स्वरूपसिद्ध अधिकार है। और अगर हम न पा सकें तो हमारे अतिरिक्त और कोई जिम्मेदार नहीं होगा। और कोई जिम्मेदार नहीं होगा, उत्तरदायित्व हमारा है। इस उत्तरदायित्व को समझें, विचार करें, जीवन में प्रयोग करें, इसकी प्रार्थना करता हूं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और सबसे अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

घाटकोपर, बंबई, दिनांक 16 अप्रैल, 1966

दूसरा प्रवचन

स्वयं की खोज

बीते दो दिनों में स्वयं की खोज के लिए कुछ बातें मैंने आपसे कहीं। पहले दिन मैंने आपसे कहा, हमें इस बात का स्मरण भी नहीं है कि हम हैं। हमारी सत्ता का बोध भी हमें नहीं है। और जिसे यह भी पता न हो वह है, उसके जीवन, उसके भविष्य उसकी उपलब्धियों का यदि यह भी बोध नहीं हो कि मैं हूं तो जीवन में और क्या हो सकेगा? फिर तो कोई भी जीवन में गति और विकास नहीं हो सकता। सबसे पहली बात तो यह होगी कि मैं जानूं कि मैं हूं।

और मैं आपसे कहा, यह बहुत आश्चर्यजनक है कि हमें इसका स्मरण भी नहीं आता। जीवन बीत जाता है और हमें पता भी नहीं चलता कि हम थे।

एक व्यक्ति के बाबत मैंने सुना है--यह बात निश्चित ही असल होगी--मैंने सुना है कि जब वह मर गया, तब उसे पता चला कि मैं जिंदा था। लेकिन यह सब व्यक्तियों के बाबत सच है। जब हम मरने लगेंगे तो पता चलेगा कि जीवन हाथ में था और नहीं है। लेकिन हम हैं, जब जीवन हमारे हाथ है तो हम दूसरे कामों में इतने व्यस्त हैं कि जीवन का हमें बोध नहीं हो पाता। हम जीने में इतने व्यस्त हैं कि जीवन का हमें पता नहीं चल पाता। हम जीने में इतने ज्यादा उलझे हुए हैं कि वह जो जीवन का केंद्र है, अपरिचित रह जाता है। इस संबंध मैंने आपसे कहा कि यह बहुत प्राथमिक बोध है, जो मनुष्य को जीवन के विकास की तरफ, उत्कर्ष की तरफ, जीवन के अनुभव की तरफ ले जाए। स्मरण आना चाहिए कि मैं हूं।

एक तो हमारे काम की दुनिया है, जो हम कर रहे हैं, और एक हमारा होना है, जो हम हैं। एक तो हमारी डूइंग और कामों का जगत है और एक हमारे बीइंग का, हमारे होने की और हमारी सत्ता की दुनिया है। हम सारे लोग काम की ही दुनिया में समाप्त हो जाते हैं और उसे नहीं जान पते जो कि हमारा होना है। हम काम करते हैं, और काम करते हैं, और काम करते हैं, और काम करते हुए समाप्त हो जाते हैं। लेकिन यह कौन था जो काम के भीतर जी रहा था? यह कौन था जो सब काम के पीछे खड़ा था? यह कौन था जिसने सारे काम किए और सारे का देखे? उसकी तरफ हमारी आंखें नहीं उठ पाती हैं।

मैंने आपको कहा कि उसकी तरफ आंखें न उठें तो जीवन में कोई आनंद संभव नहीं है, क्योंकि आनंद का स्रोत तो वहां है। और उसकी ओर आंखें न उठें तो दुख से मुक्त होना असंभव है, क्योंकि दुख है सिर्फ इसीलिए कि हमारी आंखें उसकी तरफ नहीं हैं। जैसे कोई आदमी सूरज की तरफ पीठ कर ले और भागता जाए और भागता जाए, उसकी छाया उसके सामने पड़ेगी, अंधेरा उसके सामने होगा और वह रोए और चिल्लाए कि मेरे जीवन में अंधेरा है, अंधेरा है, मैं क्या करूं? और भागता जाए, लेकिन सूरज की ओर आंखें न उठाए तो उसके जीवन से अंधेरा नहीं मिटेगा। वह लाख उपाय करे और हजारों मील की यात्राएं करें, छाया उसके सामने ही पड़ती रहेगी। जिसके पीछे सूरज हो उसके समाने छाया पड़ेगी, और जो सूरज की ओर आंखें उठा ले उसके लिए छाया विलीन हो जाएगी और जीवन प्रकाश से भर जाएगा।

है कोई सूरज हमारे भीतर--हमारी सता का। उसकी तरफ आंखें उठानी हैं। लेकिन पहली बात होगी कि हम जानें कि हम हैं। उस संबंध में मैंने पहले दिन आपसे बातें कीं। दूसरे दिन मैंने इस संबंध में बात की कि यह मैं कौन हूं इसको हम खोजें। कैसे खोजेंगे। तो मैंने आपसे कहा, क्रमशःय जो हम नहीं हैं उसे जानने से उसकी तरफ बढ़ेंगे जो हम हैं। अगर हम ठीक से जानते चले जाए कि यह मैं नहीं हूं, षरीर मैं नहीं हूं, मन मैं नहीं हूं, विचार मैं नहीं हूं, तो धीरे-धीरे हम उसकी तरफ जाएंगे जो हम हैं। दो ही बातें महत्वपूर्ण हैं--यह जानना कि मैं हूं, और फिर यह खोज लेना कि मैं कौन हूं। आज मैं इस संबंध में कहूंगा कि यह खोज कैसे चित्त की भूमिका में हो सकती है।

आपने मेरी बातें सुनी, अनेक लोग मुझसे कहते हैं, यह तो बहुत कठिन है। अब एक आदमी हो, एक किसान हो, बीज उसे दे दिया जाए और वह पहाड़ पर चला जाए और चट्टान पर बीज को बोने लगे और फिर वापस लौट कर आए कि बीज तो जल जाते हैं, पौधे तो निकलते नहीं। ये बीज कठिन है, बहुत कठोर हैं, इनसे कोई निकलेगा नहीं। तो उसे क्या कहेंगे? हम कहेंगे कि बीज बोए कहां थे? कहीं किसी चट्टान पर बोने तो नहीं चले गए थे? बीज तो बड़े कोमल थे। बीज से तो अंकुर निकलने को प्रति क्षण उत्सुक था। वहां तो बीज को फोड़ कर प्राण निकलने को बाहर फैलने की आकांक्षा से भरे थे। वहां तो बीज के भीतर जो आत्मा बैठी थी वह सूरज की तरफ उठने को लालायित थी। लेकिन बीज डाले कहां थे? अगर बीज पत्थर पर बोए गए थे, पथरीली जमीन पर, तो फल नहीं लाएंगे। तो मैंने जो बात कहीं, वह कठिन मालूम हो सकती है, अगर मन की भूमि पथरीली हो, पत्थरों से भरी होय तो कठिन हो जाएगी। तो मन की भूमि चाहिए उपजाऊ।

मन का खेत कैसे उपजाऊ बन जाए उसके बाबत आज बात करूंगा। बीज के बाबत मैंने आपसे बात की, बीज को बोने की आकांक्षा के बाबत बात की, लेकिन अलग खेत के बाबत बात न करूं तो बात अधूरी हो जाएगी। आज मैं आपसे बात करना चाहूंगा कि किस खेत में यह बीज बोए जा सकते हैं? मन कैसा हो, तब यह उपलब्धि हो सकती है। चित्त कैसा हो, चित्त भी भूमिका कैसी हो कि निश्चित ही यह बहुत सरल हो जाता है। अब बीज को कोई किसान बोता है तो खींच-खींचकर उसमें से अंकुर थोड़े ही निकालने पड़ते हैं! बस, जमीन में बो देने पड़ते हैं, जमीन हो उपजाऊ, अंकुर तो अपने आप आ जाएगा। अंकुर को खींचकर निकालना नहीं पड़ता।

सत्य को भी खींचकर पैदा नहीं करना होता। वह तो आ जाएगा, एक दफा भूमि तैयार हो। और मैं आपको कह दूं, हमारे मन की भूमि बहुत पथरीली है, बहुत पत्थर हैं उसमें। और ये पत्थर किसी और ने डाले होते तो भी कोई बात थी, ये पत्थर हमने ही डाले हुए हैं। ये जमीन हमने ही पथरीली कर ली है। हमने ही इसमें पत्थर ला लाकर इकट्ठे कर दिए हैं और अनेक-अनेक तरह के पत्थर हैं। कैसे ये पत्थर अलग हो सकते हैं, क्या ये पत्थर हैं, उसके बाबत आज आपसे कहूंगा।

पहली बात--जो मन बहुत ज्यादा षब्दों से भरा हो, वह मन सत्य को नहीं जा सकता। जो चित्त षब्दों से बहुत भरा हो, वह चित्त सत्य को नहीं जान सकता। षब्द सबसे ज्यादा पत्थर जैसी चीज है जो मन पर जम जाए तो फिर कुछ भी नहीं हो सकता। और हम सबके मनों में बहुत षब्द बैठे हुए हैं। षब्दों ने हमारे मनों को बिल्कुल छा लिया है। अगर आप अपने भीतर खोजेंगे तो षब्दों के सिवाय और क्या पाएंगे? अगर आप अपने भीतर खोजने जाएंगे तो षब्द मिलेंगे, और षब्द मिलेंगे, और षब्द मिलेंगे और षब्दों की हमने ऐसी पूजा की है कि जो आदमी षब्द रखे हुए हैं, जिसके पास बहुत षब्द हैं, जो बहुत षब्दों का प्रयोग कर सकता है, उसका हम बहुत आदर करते हैं। उसको हम पंडित कहते हैं, उसको विद्वान कहते हैं, उसको ज्ञानी कहते हैं। षब्द का जिसके पास बहुत संग्रह है, हम कहते हैं वह ज्ञानी है। जब कि मैं आपसे कहूं, जो अपने भीतर निःशब्द हो जाता है, केवल वही ज्ञान को उपलब्ध होता है। षब्दों से कोई ज्ञानी नहीं होता। षब्दों की इस खोले के भीतर अज्ञान मौजूद रहता है। ये षब्द ऊपर से चिपकाए गए हुए हैं। सब षब्द हमने बाहर से सीखे हुए हैं। कोई षब्द आपके भीतर से आया हुआ नहीं है। या कि आप सोचते हैं कि कोई षब्द आपके भीतर से आया हुआ है? सब षब्द आपने बाहर से सीखे हैं। जो आपको सिखा दिया गया है, उन षब्दों ने आपके मन को घेर लिया है।

कोई आदमी हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है। यह क्या है? क्या कोई आदमी हिंदू होता है, कोई मुसलमान होता है? यह षब्दों का भेद है। एक तरह के षब्द किसी को सिखा दिए गए हैं, वह जैन है। दूसरी तरह के षब्द किसी को सिखा दिए गए हैं, वह मुसलमान है। तीसरी तरह के षब्द किसी को सिखा दिए गए हैं, वह हिंदू है। और हजार तरह के षब्दों की अवस्था है, वह हमने सीख लिए हैं। ये षब्द हमारे भीतर बैठ जाते हैं और जब भी हम विचार करते हैं, जब भी हम सोचते हैं तो वह विचार स्वतंत्र नहीं हो पाता, इन षब्दों से बंधा हुआ हो जाता है। इन षब्दों से षुरू होता है हमारा सब चिंतन, हमारा सब विचार।

षब्द से प्रारंभ हुआ चिंतन असत्य होता है। षब्द से बंधा हुआ चिंतन असत्य होता है, मिथ्या होता है, क्योंकि अर्थ ही यह हुआ कि पहले से सीखे हुए षब्दों के घेरे में घूमने लगते हैं। षब्द की बड़ी परतंत्रता है। और क्या मैं आपको कहूं, मनुष्य के इतिहास में जितनी इस परतंत्रता ने मनुष्य को पीड़ा दी है, दुख दिया है, और किसी परतंत्रता ने नहीं दिया। जितनी हत्याएं और हिंसाएं और जितने अनाचार हुए हैं, इन षब्दों के कारण, आइडियोलॉजी के कारण, संप्रदायों के कारण, सिद्धांतों के कारण हुए हैं।

मनुष्य और मनुष्य के बीच षब्द के अतिरिक्त और कोई दीवार नहीं है। और यह गुलामी इतनी गहरी है कि इसका हमें पता भी नहीं चलता कि हम किन्हीं षब्दों के गुलाम हैं। अभी राम के षब्द के विरोध में कुछ कह दूं। आपके प्राण तिलमिला जाएंगे--एक षब्द के विरोध में कुछ कह दूं। अगर मैं कृष्ण के विरोध में कुछ कह दूं तो आपके प्राण तिलमिला जाएंगे--एक षब्द के विरोध में। अगर मैं क्राइस्ट को कुछ कह दूं, महावीर को कुछ कह दूं तो आपके प्राण तिलमिला जाएंगे। एक षब्द के विरोध में आपके प्राण कंप जाएंगे। एक षब्द आपके ऊपर इतना प्रभावी है। एक षब्द आपको पकड़ ले सकता है और आपकी जान लिवा ले सकता है। एक छोटा सा षब्द और और आपके प्राणों को बांधे रहता है। लोहे की जंजीरें इतनी सख्त नहीं होती जितना चित्त पर षब्दों की जंजीरें हो जाती हैं।

मेरे एक मित्र जेल में बंद थे। लौटकर--मैं एक षब्दों की उनसे बात कर रहा था--वह मुझसे कहने लगे, ऐसी एक घटना जेल में घटी। एक कैदी उनके साथ था। आजादी के दिनों की बात होगी, एक कैदी भी उनके साथ था। उस कैदी की बड़ी ख्याति थी, वह कैसी भी जंजीर को तोड़ सकता था, कैसी भी जंजीर को, और तोड़कर दिखा देता था। और कैसी भी दीवाल फांद कर भाग सकता था। उसने अपने जेलर को कहा भी, अगर मुझे यह विश्वास दिलाया जाए कि मुझे वापस नहीं पकड़ा जाए तो आप सारा आयोजन कर लो, मैं तीन दिन के भीतर जेल के बाहर हो जाऊं।

और वैसी उसकी सामर्थ्य थी। मेरे मित्र भी वहां थे। वे रोज सुबह बैठकर प्रार्थना कराते थे, वे राम-राम का जप कराते थे। उस कैदी को भी उन्होंने कहा, तुम भी उस जप में आया करो। उसने कहा, राम-राम के जम में! वह था मुसलमान। तो वह मुझसे कहने लगा कि वह लोहे की जंजीर तोड़ सकता था, लेकिन राम-राम के जप में नहीं बैठ सकता था। उसके मन में तो कोई और दूसरे षब्द बैठे हुए थे। राम का जप।

अभी एक जैन साधु मेरे पास मेहमान थे। वह सुबह उठे और मुझसे कहने लगे, मुझे झेन मंदिर जाना है। मैंने कहा, किसलिए? क्या काम है? वह कहने लगे, आप भी क्या पूछते हैं? मंदिर कोई किसलिए जाता है? वहां ध्यान करूंगा, षांति से बैठूंगा, आत्म-स्मरण करूंगा, एकांत में सामायिक करूंगा, इसलिए जाना चाहता हूं। मैंने कहा, आप सच बोल रहे हैं? इसलिए जानना चाहते हैं? उन्होंने कहा, मैं झूठ क्यों बोलूंगा? इसीलिए जाना चाहता हूं। तो मैंने कहा, यहां का झेन मंदिर जो है, वह तो बाजार है। वहां बड़ी भीड़भाड़ है, षोरगुल है। मेरे पास में एक चर्च है, बड़ा अकेला है और इतवार का दिन होने से वहां कोई नहीं आता, क्योंकि ईसाइयों का धर्म तो सिर्फ इतवार के दिन है, और किसी दिन तो होता नहीं। तो वहां चर्च में चले चलें। वहां कोई भी नहीं है, बड़ा सन्नाटा है, बड़ा अकेला है, बड़ा बगीचा है। वही अपना ध्यान करें, वहीं अपना आत्म-स्मरण करें।

उन्होंने कहा, चर्च! आप कहते क्या है? तो मैंने उनसे कहा, तो फिर आप झूठ ही कहते होंगे कि मैं आत्म-स्मरण के लिए जाना चाहता हूं। आप जैन मंदिर जाना चाहते होंगे, वह षब्द बड़ा मूल्यवान है। आत्म-स्मरण के लिए तो चर्च में भी बैठ सकते हैं, नदी के किनारे भी बैठ सकते हैं। जैन मंदिर में क्या लेना देना है? या हिंदू मंदिर से या मस्जिद से या चर्च से क्या लेना-देना है? नहीं, लेकिन एक षब्द हमारे मन में बड़ा गहरा हो जाना है और षब्द को हम पकड़कर बैठ जाते हैं। और हम सब षब्दों को पकड़कर बैठे हैं। और जो भी षब्द को पकड़कर बैठा है, वह सत्य तक कैसे जाएगा? कैसे जा सकता है? सत्य तक प्रवेश के लिए जरूरी है कि सब षब्द छोड़ दिए जाए, सारे षब्दों की पकड़ छोड़ दी जाए, तभी यात्रा हो सकती है उस जगत में, तभी हम स्वयं में प्रविष्ट हो सकते हैं।

आप मुझे नहीं पकड़े हुए हैं, समाज किसी को नहीं पकड़े हुए हैं, लेकिन समाज से प्रदत्त षब्द, सिद्धांत, विचार, षास्त्र, वह मनुष्य के मन को जकड़े हुए हैं। वहीं हम घूमते हुए रह जाते हैं कोल्हू के बैल की तरह। उन्हीं-उन्हीं षब्दों को जीवन भर दोहराते रह जाते हैं और उनसे ऊपर उठने का ख्याल नहीं आता। षब्द किसने दिए हैं? षब्द तो समाज ने दिए हैं। षब्द तो दूसरे ने दिए हैं लेकिन मौन? मौन किसने दिया है? निःशब्दता किसने दी है? किसी ने भी नहीं दी। वह आपके स्वरूप का हिस्सा है। जो किसी ने नहीं दिया है, उसे ही खोजने से स्वयं का पता चलेगा, क्योंकि स्वयं का सत्य किसी का दिया हुआ नहीं है। यह स्वयं की सत्ता किसी की दी हुई नहीं है। आपके ऊपर किसी का ऋण नहीं है इसके लिए। यह आपकी अपनी है, निज है। इस निज की सत्ता को जानना हो तो पर से, दूसरों से, अन्यों से दिए गए षब्द बाधा हो जाएंगे, रुकावट हो जाएंगे।

एक साधु एक दिन सुबह-सुबह नदी में स्नान करने को उतरा होगा। अभी सूरज निकला भी नहीं था और तारे भी आकाश में थे। वह स्नान कर रहा है और पास में ही देखा, एक आदमी डोंगी पर, छोटी नाव पर सवार हुआ है। डोंगी को खे रहा है, और पानी में ले जाने की कोशिश कर रहा है। लेकिन बड़ी देर हो गयी उसे पतवार चलाते, और डोंगी है कि वहीं अटकी है। उस आदमी ने चिल्लाकर पूछा संन्यासी को कि बात क्या है, यह डोंगी यही रुकी क्यों है? मैं इसे गहरे में ले जाना चाहता हूं। उस संन्यासी ने कहा, जहां तक मैं सोचता हूं, तुम उसकी जंजीर खोलना भूल गए हो। तुम पतवार तो फेंक रहे हो, जोर से चला रहे हो लेकिन नाव की जंजीर किनारे से बंधी होगी। वह आदमी नीचे उतरा, देखा नाव किनारे से बंधी है।

हम सब भी खेना चाहते हैं, सत्य के गहरे सागर में जाना चाहते हैं, यात्रा करना चाहते हैं, आत्मा और परमात्मा से परिचित होना चाहते हैं जीवन के अर्थ को, अभिप्राय को जानना चाहते हैं, लेकिन हमारे चित्त की जो जंजीर है, वह किनारे से बंधी है। षब्दों के किनारे से बंधी है। किनारे नदी नहीं हैं। जहां किनारों को छोड़ देता है, वही कोई प्रवाह में आता है। किनारे तो जड़ हैं और नदी का प्रवाह जीवित है। जीवन तो जीवित प्रवाह है और उसके चारों तरफ जो षब्द के फूल बन जाते, किनारे बन जाते हैं। उन किनारों पर अटके रहने से कुछ होगा नहीं। लेकिन हम सब रुके हैं। हम सब ठहरे हुए हैं। जब सोचते भी हैं कि हमें सत्य पाना है तो इन षब्दों के किसी घेरे पर सोचते हैं।

एक मुसलमान मेरे पास आता है, वह मुझसे कभी नहीं पूछता कि पुनर्जन्म होता है कि नहीं? उसकी किताब में लिखा हुआ नहीं है। एक हिंदू आता है, वह पूछता है, पुनर्जन्म होता है या नहीं? उसकी किताब मैं लिखा हुआ है। एक जैन मुझसे पूछता है, आत्मा क्या है? लेकिन जैन मुझ से कभी नहीं पूछता कि स्रष्टा परमात्मा क्या है? उसकी

किताब में लिखा हुआ नहीं है। एक बौद्ध मेरे पास आता है, वह नहीं पूछता, आत्मा क्या है? वह पूछता है, अनात्मा क्या है? उसकी किताब में आत्मा नहीं लिखी हुई है, आत्मा लिखी हुई है। जो जिसकी किताब में लिखा हुआ है, उस की पूछता है।

ये किताब से उठे हुए प्रश्न वास्तविक नहीं हैं। यह षब्दों से बंधा हुआ किनारा है। वास्तविक प्रश्न अगर होंगे तो हिंदू का, मुसलमान का, ईसाई का अलग-अलग कैसे हो सकता है? वह तो जीवन का होगा और सबका होगा और समान होगा। वास्तविक समस्या मनुष्य की होती है। झूठी समस्या किताब की होती है, षब्द की होती है। इन झूठी समस्याओं को लेकर जो खोज में निकलते हैं, वे तो कभी नहीं पहुंच सकते। अनेक लोग मुझसे कहते हैं, हम ईश्वर को खोज रहे हैं। मैं उनसे कहता हूं, जिसका तुम्हें पता ही नहीं है, उसको खोजोगे कैसे? कैसे खोजोगे? किसी किताब में पढ़ लिया होगा, ईश्वर है, खोजने निकल पड़े कोई मुझसे कहता है, हम आत्मा को खोजने चले हैं। जिस आत्मा का तुम्हें पता नहीं है, उसे खोजोगे कैसे? क्यों खोजने चल पड़े हो? किसी ने कह दिया है, इसलिए? नहीं, जब जीवन की खुद की समस्या और प्यास जगती है, और जीवन के तथ्य खुद दिखायी पड़ने षुरू होते हैं और अपने आप अज्ञान का बोध होता ह--किसी ने कहने से नहीं, बल्कि जीवन के अनुभव सेय जब दिखता है कि मैं एकदम अज्ञान के घिरा हुआ हूं, मुझे कुछ भी पता नहीं, मेरे होने का पता नहीं, मुझे अपने जीवन का कोई कूल-किनारा पता नहीं, मुझे कोई दिशा का अनुमान नहीं, मुझे जीवन के किसी आयाम का, किसी घेरे का कोई संपर्क नहीं। मैं यह कैसा हूं? यह मेरी क्या स्थिति है? जब यह पीड़ा मनुष्य को पकड़ती है तो उसकी जिज्ञासा षब्दों की नहीं होती है, सत्य की हो जाती है। षब्दों की जिज्ञासा मनुष्य को पंडित बना सकती है, लेकिन प्रज्ञावान नहीं। और पंडित इस जगत में सबसे बड़ी बाधा है प्रज्ञा तक उठने में--खुद के लिए, खुद के लिए बाधा है। षब्द उसने सीख लिए और उन्हीं को दोहराता रहेगा, दोहराता रहेगा और षब्दों के वृत्त में घूमता रहेगा, घूमता रहेगा और खूब तर्क करेगा, खूब विचार करेगा, लेकिन कहीं पहुंचेगा नहीं, पहुंच सकता नहीं।

षब्द को छोड़ कर गति है, किनारे को छोड़ कर यात्रा है। तो पहली बात आपसे कहना चाहूंगा, चित्त को षब्दों की दासता से मुक्त कर लें। षब्दों की जंजीरों से बंधा हुआ चित्त कभी भी सत्य को नहीं जान सकेगा। फिर चाहे वे जंजीरें किसी की हों--वेदांत की हों, कि बौद्ध धर्म की हो, कि जैन धर्म की हों, वे षब्द की जंजीरें मन को पकड़ें रहेंगी, तब तक कहीं आप जा नहीं सकते। बहुत साहस चाहिए जंजीरें तोड़ देने को। क्योंकि आप कहेंगे, जंजीरें तोड़ देने को क्या साहस चाहिए? बहुत कठिन है जंजीर को तोड़ देना। इसलिए कठिन है कि धीरे-धीरे जंजीर को भी हम प्रेम करने लगते हैं। वह भी हमारे जीवन का हिस्सा हो जाती है। वह भी हमारी परिचित हो जाती है और लगने लगता है, इसके बिना कैसे जी सकेंगे? कैसे जी सकेंगे?

वहां फ्रांस में राज्य क्रांति हुई तो वेस्टील ने किले में बहुत से कैदी बंद थे। क्रांतिकारियों ने सोचा, सबसे पहले जैसे ही उनके हाथ में सत्ता आई कि जाएं और वेस्टील के किले को तोड़ दें और कैदियों को मुक्त कर दें। उन्होंने सोचा, हम बड़ा काम करने जा रहे हैं। ऐसा भ्रम बहुत लोगों को पकड़ता है--बुद्ध को कपड़ा, महावीर को, सुकरात को, क्राइस्ट को। ऐसा भ्रम बहुत लोगों को पकड़ता है कि जाएं और कैदियों को मुक्त कर दें। क्रांतिकरियों को भी पकड़ा कि जाए और कैदियों को मुक्त कर दें। कैदी कितने प्रसन्न हो जाएंगे! वह गए और उन्होंने जाकर दीवाल तोड़ दी और कैदियों से कहाः जाओ, तुम मुक्त हो। प्रसन्न होओ, नाचो और कूदो और गाओ, आनंदित होओ। लेकिन कैदी बड़े घबराएं हुए खड़े थे कि वह कह क्या रहे हैं? वहां तो सबसे पुराने जघन्य अपराधी रखे जाते थे जिन्हें आजीवन की कैद होती थी। कोई बीस वर्ष की उम्र में आया था और अस्सी वर्ष हो गया था। साठ साल, हाथ की जंजीरें वह भूल गया था कि हाथ से अलग हैं। साठ साल! जंजीरें हाथ में थीं और हाथ में रही थीं। भूल ही गया था कि हाथ से अलग हैं। जैसे हाथ में अपने, वैसे ही जंजीर भी अपनी हो गयी थी। सुना कि स्वतंत्र! सुना कि मुक्त! बहुत बेचैन और परेशान हो गए। एक नयी दुनिया में कहां धक्के देते हो? बहुत लोगों ने कहा, हम ठीक हैं। हम जहां है वहीं ठीक है। आप कृपा करो, ये हमारी कोठरियां काफी अच्छी हैं। वे बिल्कुल अंधकार से भरी हुई कोठरियां थीं और हाथ-पैर में जंजीरें थीं। लेकिन भोजन मिल जाता था, वहां वे पड़े रहते थे। अंधेरे में आदी हो गए थे। लेकिन क्रांतिकारियों को तो पागलपन सवार था लोगों को मुक्त करने का। उन्होंने तो उनको धक्का दिया और बाहर निकाल दिया, जंजीरें तुड़वा दीं। लेकिन कितना दुखद है, सांझ को अंधे कैदी वापस लौट आए, और यह कोई कहानी हनीं है, यह ऐतिहासिक तथ्य है। और उन कैदियों ने कहा, आप क्षमा करें, हम पर कृपा करें, हम जहां हैं, वहां रहने दें। बाहर बहुत भय मालूम होता है।

और मैं जब आपसे कहता हूं, षब्द की जंजीरें तोड़ दें, मैं जब आपसे कहता हूं, मुक्त हो जाए तो मैं जानता हूं कि वैसी घबराहट भीतर सरकती होगी। कैसे तोड़ दें, कैसे मुक्त हो जाएं, यही तो हमारी संपदा है, यही तो हम सब

हैं, यही तो षास्त्र हमारे प्राण हैं और कहते हैं छोड़ दें? और इनको छोड़ कर फिर हम कहां जाएंगे? मैं जब बोलता हूं, तब भी आपके मन में आप हिसाब बिठाते रहते हैं कि किस षास्त्र के अनुकूल है यह बात। परसों यहां से निकला, एक मित्र ने कहा, आप जो कह रहे हैं वही है न, जो गीता में हैं? वे संतुष्ट हो जाना चाहते थे, अपनी किताब को पकड़े रहें। मैंने सोचा, ठीक है, और मैं इनसे क्या कहूं? वही है न जो गीता में है? और मैं तो कुछ बोला ही नहीं, उन्होंने खुद ही कहा, हां, बिल्कुल ठीकय वही है। और वे निश्चित चले गए। वह वेस्टील का कैदी जो था, षाम को घर वापस लौट आया कैद में। और उसने कहा, कृपा करें। यही तो दुनिया है, कहां आप बातें कर रहे हैं! आप, जब मैं बोल रहा हूं, तब भी अपनी किताब से मेल बिठाते जाते हैं कि महावीर स्वामी ने यह कहा है कि नहीं, बुद्ध ने यह कहा है कि नहीं, क्राइस्ट ने यह कहा है कि नहीं। अगर यही कहा तो बिल्कुल ठीक है, अगर नहीं कहा तो फिर बहुत बड़बड़ है। फिर आपके षब्दों में दिक्कत हो जाएगी। फिर आपको अड़चन हो जाएगी। भीतर फिर मेरे षब्द गड़ने लगेंगे, लेकिन मैं चाहता हूं कि षब्द गड़ जाए और मैं चाहता हूं कि भीतर तुलना न करें। क्योंकि तुलना की कि आप फिर नींद में सो जाते हैं। एक करवट ले ली और फिर सो गए। फिर लगा कि बिल्कुल ठीक है, वही तो है, जो हम मानते थे। फिर आप सो गए।

नहीं, कृपा करें, तुलना मत करें, पुराने षब्दों से मेल न बिठा लें, बल्कि सोचें। सोचें थोड़ा। नहीं कहता हूं, गीता गलत है। नहीं कहता हूं, कुरान गलत है। नहीं कहता हूं, कोई गलत है। नहीं कहता हूं, कोई सही है। लेकिन जिस दिन आप सब हटाकर खुद को जानेंगे, उस दिन जरूर ये सब धर्मशास्त्र सत्य हो जाएंगे, लेकिन उकसे पहले नहीं। उसके पहले सब असत्य हैं। जिस दिन आप अपने निजी सत्य को जानेंगे, उस दिन सब धर्मशास्त्र एक ही साथ सत्य हो जाएंगे। लेकिन उसके पहले सब गलत है आपके लिए। आपके लिए षब्द से ज्यादा नहीं है। उन षब्दों को इकट्ठा करते रहेंगे और उन षब्दों से बंधे रहेंगे तो कहीं भी जा नहीं सकते। सत्य की खोज में, स्वयं की खोज में षब्दों से मुक्त हो जाना पहली षर्त है। मुक्त हो जाएं, तोड़ दें ये जंजीरें, ये जंजीरें दिखायी नहीं पड़ती। मन में खोजेंगे तो दिखायी पड़ेंगी। मन मैं खोजेंगे तो ज्ञात होगा, जंजीरें बड़ी गहरी हैं।

अभी मैं आया जिस दिन, मेरे एक मित्र एक चिट्ठी लेकर आए, उस चिट्ठी में किसी ने हरि ओम, हरि ओम, हरि ओम, हरि ओम लिख दिया हुआ था। और नीचे लिख दिया था कि अगर इसी भांति की दस चिट्ठियां आपने लिखकर दस लोगों को नहीं डालीं, तो स्मरण रखना कि भगवान दंड देगा। और अगर डालीं तो दस दिन के भीतर इसका लाभ भी मिलेगा। अब वह घबड़ा गए। वह मेरे पास आए। डाक्टर हैं, पढ़े-लिखे हैं। अब ऐसे डाक्टर से मरीजों का इलाज करवाना बड़ा खतरनाक है। इनमें विज्ञान की तो बुद्धि नहीं है, इनमें साइंस की तो कोई बुद्धि नहीं है, इनमें कोई बुद्धि नहीं है। वे चिट्ठी लेकर आए, मैंने कहा, यह तो ठीक है, लेकिन आइंदा--कभी-कभी मैं बीमार पड़ता था। मेरा इलाज करते थे--अब मेरा इलाज कभी मत करना। बोल, क्यों? मैंने कहा, आपका दिमाग ही अनसाइंटिफिक है, आपका दिमाग ही जड़ है।

घबड़ा क्यों गए इसमें? घबड़ाहट हो गई कि कहीं भगवान दंड न दे दे! एक-दो षब्द, और प्राण कांप गए उनके। वे दस चिट्ठियां लिख कर ले आए कि मैं किस-किसके पते पर डाल दूं! एक षब्द--मैं हिंदू हूं और हरि ओम, हरि ओम लिखा हुआ है। हालांकि उसमें अल्लाह-हल्लाह लिखा हुआ होता तो बेफिकर से फाड़कर फेंक देते, उन्हें कोई डर नहीं होता। कोई डर की बात न थी। एक मुसलमान एक हिंदू के मंदिर को तोड़ कर फेंक देता है। जरा भी भयभीत नहीं होता, क्योंकि उसके षब्द इसके विरोध में पड़ते हैं। लेकिन आप, अगर भगवान की मूर्ति को पैर लग जाए तो प्राण कांप जाएंगे, क्योंकि भगवान की मूर्ति... ! और मुसलमान उसी को तोड़ते रहे और वे खुश होते रहे और आपके प्राण कांप जाएंगे। एक मुसलमान मंदिर को आग लगा दे तो दिक्कत नहीं होती, लेकिन मस्जिद को आग लगा दे तो प्राण कांप जाएंगे। क्यों? एक षब्द पकड़ लेता है।

हिंदू को, मुसलमान को, जैन को सबको पकड़े हुए हैं। और हम सब षब्दों के गुलाम है और षब्दों की गुलामियों में बंटे हुए हैं। और इन गुलामियों के अलग-अलग झंडे हैं। और इन गुलामियों के अलग-अलग संगठन हैं। और उन गुलामियों को पोषण देने के लिए निरंतर प्रचार चल रहा है। साधु है, संन्यासी हैं, पंडित हैं, यह सब चल रहा है कि वह षब्द की गुलामी न टूटने पाए।

बाप बच्चे के पैदा होते ही उसको गुलाम करना षुरू कर देता है। सिखाना षुरू कर देता है कि तुम कौन हो? तुम्हारा विश्वास क्या है? तुम्हारा धर्म क्या है कि तुम कौन हो? तुम्हारा विश्वास क्या है? तुम्हारा धर्म क्या है? मंदिर कौन सा है तुम्हारा? हजारों वर्षों से चली आती गुलामी को वह अपने बच्चे में संक्रमित कर देता है। इससे बड़ा कोई पाप नहीं। जिस व्यक्ति को स्वयं सत्य पाना हो वह स्मरण रखे कि दूसरे को सत्य के संबंध में षब्द न सिखाए, जिज्ञासा सिखाए कि खोजना, जानना, प्राणों को समर्पित करना, खोजना, अपने पूरे प्राणों को लगा देना और जानने

की कोशिश करना कि क्या है! लेकिन षब्दों को मत सी, लेना दूसरों के। दूसरों के षब्द सीखे हुए तोतों की भांति हो जाते हैं और उनको हम दोहराते रहते हैं।

मैंने सुना है कि षंकर, आचार्य षंकर जब मंडन मिश्र के पास विवाद करने को पहुंचे, गांव में वह वह प्रविष्ट हुए और उन्होंने लोगों से पूछा कि मंडन का भवन कहां है? कुएं पर स्त्रियां पानी भरतीं थीं। उन्होंने कहा, यह भी कोई पूछने की बात है? मंडन की कीर्ति तो दूर-दूर दिगंत में व्याप्त हो रही है। उसके मकान का भी कोई पता लगाना है? फिर भी षंकर ने कहा, कैसे मैं पहचानूंगा इतने बड़े नगर में कि मंडन का भगवान कहां है? स्त्रियों ने कहा, जाओ, जिस भवन के आसपास पक्षी भी वेद के मंत्रों का उच्चार करते हों, समझ लेना कि मंडन का भवन आ गया। बड़ी प्रशंसा में उन स्त्रियों ने कहा कि जिसके आसपास पक्षी भी वेद के मंत्रों का उच्चार करते हों, समझ लेना कि मंडन का भवन आ गया।

लेकिन दुख तो यह है कि पक्षी ही अगर वेद के मंत्र का उच्चार करते हों तो भी ठीक, आदमी भी पक्षियों की भांति वेद के मंत्रों का उच्चारकर रहे हैं। पंडित भी वही कर रहे हैं। सीखे हुए षब्द हैं, उनको दोहराए चले जा रहे हैं, उनको दोहराए चले जा रहे हैं। यह मनुष्य की जड़ता की सूचना है, उसके ज्ञान की नहीं। जड़ जो बुद्धि होती है, वह दूसरों को पुनरुक्त करती है। और जो चेतन बुद्धि होती है, वह स्वयं में प्रविष्ट होती है और किसी मौलिक जीवन के आधार को खोजने की चेष्टा करती है। षब्द पर चेतन व्यक्ति रुकता नहीं, जड़ व्यक्ति रुक जाता है। वह इडियाटिक माइंड का लक्षण है। वह जड़ बुद्धि का लक्षण है, वह षब्द पर रुक जाता है। षब्द को पकड़ लेता है, षब्द को याद कर लेता है और उसको दोहराने लगता है, और फिर दोहराने में मजा आने लगता है। क्योंकि जितना ज्यादा दोहराता है, उतना और अच्छा दोहराने लगता है। जितना और अच्छा दोहराता है, सुविधापूर्ण हो जाता है। धीरे-धीरे उसे लगता है, यही सत्य है। क्या आप सबको भी, हम सबको भी ऐसा ही नहीं लग रहा है? जिन षब्दों को हम बार-बार सुनते और दोहराते हैं वे सत्य मालूम होते हैं। एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में एक वचन लिया है, बहुत अर्थपूर्ण है। हिटलर अपने आत्मकथा में एक छोटा सा वचन लिखा है, किसी भी असत्य को बार-बार दोहराओ, धीरे-धीरे वह सत्य हो जाता है। किसी भी असत्य का खूब प्रचार करो, लोगों के मन में पुनरुक्त होने दो, पुनरुक्त होते-होते ही वह उन्हें सत्य मालूम होने लगेगा।

क्या हमने हजारों ऐसी ही बातों को स्वीकार नहीं कर लिया है, जिन्हें हम नहीं जानते कि वे सत्य हैं, या असत्य? क्या किसी बहुत गहरे प्रचार और प्रोपेगंडा ने हमारे मनों में कुछ षब्द प्रविष्ट नहीं कर दिए हैं? सिवाय इसके और हमारी संपत्ति क्या है? हमारे चित्त की और संपत्ति क्या है सिवाय प्रचारित षब्दों के?

उन्नीस सौ सत्रह में क्रांति हो गयी रूस में। वहां जो लोग हुकूमत में आए, उनके षब्दों का पैटर्न और ढांचा दूसरा था। पुराना षब्दों का ढांचा था ईश्वर, उनका ढांचा था ईश्वर नहीं। पुराने षब्दों का ढांचा था आत्मा, उनका ढांचा था आत्मा नहीं। पुराने षब्द कुछ और कहते थे--वे बाइबिल को दोहराते थेय वे दोहराते थे कार्ल मार्क्स को, कैपिटल को दोहराते थे। उनका षब्द नया था, उनके षब्द का ढांचा नया था। तीस-चालीस साल उन्होंने मेहनत की, सुझाया लोगों को, समझाया। करोड़-करोड़ लोग उन्हीं षब्दों को दोहराने लगे। दोहराने की आदत पुरानी थी। पहले आत्मा-परमात्मा दोहराते थे, स्वर्ग-नर्क, ओरिजनल सिन की बातें करते थे, अब कम्युनिज्म की बातें करने लगे। ईश्वर नहीं है, धर्म अफीम का नशा है, यह कहने लगे। अब नए षब्द दोहराने लगे। लेकिन षब्द से छुटकारा नहीं होता है। एक षब्द हटता है, दूसरा षब्द पकड़ लेता है।

मैं जो आपसे कह रहा हूं, इसलिए नहीं कि आप और षब्द छोड़ दें, मेरे षब्द पकड़ लें। वह एक ही बात हो गयी। वह तो मूर्खता वही रही, पुरानी रही, कोई फर्क न हुआ। अब मुझे लोग मिलते हैं, वे कहते हैं, हमें तो आपकी बात बिल्कुल ठीक लगती है। वे मेरी बात दोहराने लगते हैं, मैं एकदम घबड़ा जाता हूं। मैं यही तो कह रहा हूं किसी और की बात आपको ठीक न लगे। सब बातें दूसरों की छोड़ दें। उसमें मैं भी सम्मिलित हूं, क्योंकि मैं भी दूसरा हूं। और उस जगह चलें जहां कि किसी दूसरे की बात प्रवेश नहीं करती, आप स्वयं हैं।

अभी मैं पूना गया था, तो वहां की नदी पर मैंने देखा, दूर-दूर तक हरे पानी के पौधे ने नदी को घेर लिया है। हरी नदी जो है, बिल्कुल पौधा ही पौधा हो गयी है। मीलों तक सिर्फ पौधों का विस्तार हो गया है और पानी बिल्कुल ढंक गया है। पता ही हनीं चलता कि पानी है। उसे देखकर मैं सोचने लगा, आदमी का मन भी ऐसे ही है। षब्दों के पौधे फैलते चले गए हैं और उन्होंने पूरे मन को घेर लिया है और पीछे पता ही हनीं चलता कि जीवन कोई पानी भी है। अब उनको जरा हटाएं, पौधों को, तो नीचे मिल जाएगा। षब्दों को थोड़ा हटाएं तो नीचे प्राण मिल जाएंगे, सत्य मिल जाएगा। पहली षर्त है, षब्दों को हटाएं। साहस के साथ षब्दों को अलग करें, षब्दों की जड़ता को

तोड़े और अपने को चौतन्य करें, अपने को जड़ न बनाए। दोहराने वाला मन जड़ हो जाता है। असल में दोहराने की क्रिया ही जड़ता का लक्षण है। एक मशीन है, वह निरंतर ही दोहराती रहती है। मशीन कभी गड़बड़ नहीं करती, कभी बीच में अनियमितता नहीं करती। इररेगुलरिटी नाम की चीज मशीन में नहीं होती, क्योंकि वह जड़ है। और अगर आपका मन भी मशीन की तरह दोहराता रहता है, रोज सुबह उठकर गीता पढ़ लेता है ठीक छह बजे से लेकर सात बजे तक, रात को ठीक मिनटों में प्रार्थना कर लेता है, ठीक पुराने षब्दों में भगवान से बातें कर लेता है, रोज-रोज करता जाता है चालीस साल तक, तो आप जड़ हो जाओगे, मशीन हो जाओगे। आपके भीतर चौतन्य का लक्षण ही नहीं रहा।

चौतन्य का लक्षण तो सहज स्फुरणा है, रिपीटीशन नहीं। लेकिन कोई मुझे कल लिख कर पूछा कि अगर हम राम-राम का जप करें तो क्या लाभ होगा? लाभ होगा क्या! मुर्दा हो जाओगे। लाभ यह होगा कि बुद्धि नष्ट हो जाएगी। लाभ यह होगा कि चेतना विलीन हो जाएगी। लाभ यह होगा कि एक जड़ आदमी की तरह जीने लगोगे और समझोगे कि बहुत बड़ी बात हो गयी। कोई चीज बार-बार दोहराने से मन की चेतना को क्षीण कर जाती है। दोहराना नहीं, चेतना को जगाना है और चेतना को जगाने के लिए स्फुरणा लानी है और स्फुरणा के लिए षब्दों को हटाना है। मैं कोई जप और मंत्र का पक्षपाती नहीं हूं। उन्होंने तो मनुष्य के मन के नीचे से ले जाकर नष्ट कर दिया है। सब हटा दें मन को और निःशब्द में चलें। को हटाएं और निःशब्द में चलें। विचार को हटाएं और निर्विचार में चले। पहले तो यह बोध मन में ले आए कि षब्द से मुक्त हो जाना है तो सत्य की यात्रा हो सकती है।

दूसरी बात--शब्द से मुक्त होना है और दमन से रिक्त होना है। जो मन बहुत दमन करता है वह मन बहुत जटिल, बहुत कांप्लेक्स और बहुत आंतरिक कंट्राडिक्शंस, असंगतियों में, विरोध में पड़ जाता है। हम चौबीस घंटे अपने से लड़ रहे होंगे। तो लड़ने वाला मन धीरे-धीरे अपनी षक्ति तो खोता ही है, अपनी षक्ति तो अपव्यय करती ही है, बहुत सी जटिलताएं खड़ी कर लेता है जिनका हमें स्मरण नहीं होता है। क्रोध आया, क्रोध को दबा दिया। कोई वासना उठी, वासना को दबा लिया। सेक्स का भाव हुआ, उसे दबा लिया? दबाकर सब चीजें जाएंगी कहां? दबाने से चीजें कहां जाएंगी? दबाने से चीजें तो आपके भीतर के ही अतः प्रकोष्ठों में प्रविष्ट हो जाएंगी। बहुत गहरे में भी आपके ही अनकांशस में, आपके ही मन के अचेतन तलों पर चली जाएंगी, वहां बैठ जाएंगी। उनकी जड़ें और गहरी हो गयीं। जैसे किसी आदमी को किसी वृक्ष से विरोध हो और जमीन में गड़ा दे तो उसकी जड़ें और गहरी नीचे बैठ जाए।

आप जब भी कोई चीज दबा रहे हैं जबरदस्ती तो वहां और गहरे में बैठ जाएंगी और आपके चित्त को भीतर से मरोड़ने लगेगी, पकड़ने लगेगी। भीतर से बेचौनियां, अशांतियां पैदा करने लगेंगी और तब आपके चित्त की सारी सरलता नष्ट हो जाएगी। केवल वही चित्त सरल हो सकता है, जो दमन से मुक्त हो, जो सप्रेशन से मुक्त हो। नहीं तो चित्त तो कांप्लेक्स होगा, जटिल होगा। जटिल चित्त कैसे सत्य को जान सकेगा? जटिल चित्त तो भीतर जाने में ही डरता है।

मुझे कई प्रश्न थे, जिनमें लिखा है कि हम तो अकेले में बैठते हैं तो बड़ी बुरी भावनाएं आने लगती हैं। इसलिए आप कहते हैं अकेले में बैठो। हम तो अकेले में बैठते हैं तो सिवाय पाप के कोई विचार नहीं उठते हैं और आप कहते हैं, अकेले में बैठो, निजी हो जाओ। तो हमारे धर्मगुरु और हमारे सत्संग देने वाले लोग तो यह कहते हैं कि कभी अकेले मत रहो, हमेशा सत्संग करते रहो, जिसमें कि बुरी भावनाएं न आए। पागल हुए हैं। अकेले में जो बुरी भावनाएं आती हैं, वे बता रही हैं कि आपके भीतर बुरी भावनाएं हैं। सत्संग में अगर जाकर अच्छी भावनाएं आने लगें और अकेले में बुरी भावनाएं आए तो समझना असली नहीं है, असली तो अकेले में जो उठ रहा है, वही है। दूसरे की बातें सुनकर थोड़ी देर अच्छा भाव बना रहा तो उसका क्या मूल्य है? मूल्य तो उसका है जो आपके भीतर है, वही आपके साथ रहेगा। कोई सत्संग आपके साथ नहीं रहेगा, सत्य आपके साथ रहेगा। अगर यही सत्य है कि मेरे भीतर बुराइयां हैं, तो भागें मत, घबडाएं मत, दबाए मत। उन्हें जानें, पहचानें। रास्ता है उनके विसर्जन का, रास्ता है उनके परिवर्तन का, रास्ता है उनके ट्रांसफार्मेशन का। दमन रास्ता नहीं है। मेरी बात सुनकर लगता है, फिर क्या हम भोग करें? क्रोध आ जाए तो क्रोध करें? वासना आ जाए तो वासना को पूरा करें? क्या करें? नहीं, मैं कहता कि भोग करें। लेकिन अगर कोई मुझसे पूछता हो कि दमन और भोग मग से किसको चुनें तो मैं कहूंगा, कृपा करें और भोग को चुन लें। कम से कम भोग सहज है, नैसर्गिक है। ज्यादा से ज्यादा पशु होंगे। लेकिन अगर दमन को चुना तो पागल हो जाएंगे। अनैसर्गिक है, जबरदस्ती है, अमनोवैज्ञानिक है। कोई विज्ञान न उसके समर्थन में है, न हो सकता है। न कभी रहा है। जो जानते रहे हैं वे भी कभी उसके पक्ष में नहीं रहे हैं।

लेकिन एक तीसरा रास्ता भी है। न तो भोग को चुनने की जरूरत है न दमन की। न पशु होने की जरूरत है, न पागल होने की। जरूरत है मुक्त होने की। और एक और तीसरा रास्ता है, उसकी मैं आपसे बात करता हूं। लेकिन उसको ख्याल में लाने के पहले आपके मन में लग रहा होगा कि जल्दी मैं बताऊं कि कौन-सा रास्ता है। यह क्यों लग

रहा है? आप जानते है? यह इसलिए लग रहा है कि दमन की हमें तो बहुत आदत है। अगर वह रास्ता मिल जाए तो उसी से दबा दें। दबाना तो क्रोध को है, दबाना तो सेक्स को है, नष्ट तो इनको करना ही है। आप बता दें, कोई रास्ता है तो उसी से कर दें।

नहीं, इसलिए मैं पहले आपको यह कहूं कि पहले समझ लें कि यह दमन क्या है? और दमन का भाव छोड़ दें। दबाने से कभी कुछ नहीं होता है। चित्त विकृत होता जाता है। कुरूप होता जाता है, कुरूप से कुरूप होता जाता है। सबसे बड़ी अग्लीनेस अगर कोई हो सकती है तो सप्रेस्ड माइंड है, वह दबा हुआ मन है। वह हर चीज को दबाए हुए हैं। उसकी हर चीज कुरूप हो जाती ह--हर चीज। अगर वह फूल को छूता है तो उसके प्राण कांप जाते हैं, क्योंकि भीतर उसने दबाया हुआ है कुछ। अगर वह किसी सुंदर रूप को देखता है तो उसके प्राण कांप जाते हैं, क्योंकि भीतर कुछ दबाया हुआ है। उसके जीवन में सब कुरूप हो जाता है, सब घबड़ाहट, सब बेचौनी, सब मुश्किल हो जाती है। वह चौबीस घंटे चौकन्ना और डरा हुआ रहने लगता है, भयभीत हो जाता है। हर वक्त उसे डर लग रहा है कि कहीं यह न हो जाए, कहीं वह न हो जाए। वह दबे हुए वेग ऊपर आना चाहते हैं, और दबा देते हैं आप क्योंकि शिक्षा सिखाती ह--भोग बुरा है, क्रोध करना बुरा है, प्रेम करना बुरा है, घृणा करनी बुरी है, सब बुरा है। हर चीज बुरी है, इसको दबाओ। तो दबाने का भाव शिक्षा सीखाती है, इसको दबाओ। मैं आपको कहता हूं, दबाओ नहीं, इसको बदलो दबाओ नहीं, इसे परिवर्तित करो। ये सब षक्तियां हैं, जिन्हें दबाना नहीं, बल्कि ट्रांसफार्म करना है, बदलना है। ये तो षक्तियां हैं।

क्या आपको यह कभी ख्याल में आया है, इस जगत में जो लोग परम ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हुए हैं, वे कौन लोग थे? क्या वे लोग थे जिनके पास सेक्स की षक्ति नहीं थी? नहीं, ये वे ही लोग थे जिनके पास सेक्स की अति षक्ति थी। वही अति षक्ति परिवर्तित हुई। क्या आपको पता है, जो क्षमा को उपलब्ध हुए, ये वे लोग थे जिन्होंने कभी क्रोध नहीं किया? नहीं, ये वे ही लोग थे जिनके पास क्रोध की चरम षक्ति थी। क्रोध की चरम षक्ति ही परिवर्तित होकर एकदम क्षमा और दया बन जाती है। और काम की, सेक्स की षक्ति ही परिवर्तित होकर प्रेम और आनंद बन जाता है। षक्तियां वही हैं, उनके टरंसफार्मेशन का सवाल है। लेकिन जो दमन में पड़ जाएगा उसका चित्त कुरूप और विकृत हो जाएगा। वह खुद के भीतर विभाजित हो जाएगा। एक हाथ से करना चाहेगा, एक हाथ से नहीं करना चाहेगा। वह ऐसी हालत में हो जाएगा, जैसे किसी कार में दोनों तरफ इंजन लगा दिए हों या चारों तरफ, और इंजन एक साथ षुरू कर दिए गए हों और चारों तरफ गाड़ी को भगाने की कोशिश चल रही हो। क्या होगा परिणाम? क्या परिणाम हो सकता है? घिसटेगी गाड़ी आवाज करेगी, षोरगुल मचाएगी, वहीं की वहीं खड़ी रहेगी। परेशान करती रहेगी और खुद के प्राणों को कंपाती रहेगी।

हम सभी ऐसे ही दोहरी तरफ जुते हुए हैं। उसी को भोगना चाहते हैं, उसी को दबाना चाहते हैं, उसी को भोगना चाहते हैं, उसी को दबाना चाहते हैं। फिर कठिन हो जाता है। हटाते हैं और खुद बुलाते हैं। खुद निमंत्रण भेजते हैं, खुद द्वार बंद करते हैं। तब फिर बहुत मुश्किल हो जाती है, चित्त जटिल हो जाता है। जटिल चित्त सत्य को नहीं जान सकता और जटिल चित्त स्वयं में प्रवेश करने में डरने लगता है। आप सब डरेंगे। अगर आपको एकांत में बिठा दिया जाए और कहा जाए, बिल्कुल निज हो जाए, अकेले हो जाए, आपकी बड़ी घबड़ाहट होने लगेगी, ये कहां-कहां के विचार आ हरे हैं? यह तो बड़ी मुश्किल हो गयी। अगर ऐसे महीने भर रह गया तो पागल हो जाऊंगा, यह क्या हो रहा है? कभी अकेले में बैठे, दरवाजा बंद कर लें, जोर-जोर से जो मन में आता हो, बोलें। आप घबड़ा जाएंगे। कहेंगे कि यह मेरे मन में क्या आ रहा ह--क्या आ रहा है यह? आप अपने निकटतम मित्र के पास बैठकर भी अपना हृदय नहीं खोल सकते हैं। नहीं खोल सकते, क्योंकि आप खुद ही डर जाएंगे, अपने सामने नहीं खोल सकते। इतना दबाया है, इतना-इतना दबा लिया है जाएंगे, अपने सामने नहीं खेल सकते। इतना दबाया है, इतना-इतना दबा लिया है कचरा है, वही आपकी संपत्ति हो गयी है। उस संपत्ति के कारण आप भीतर प्रवेश नहीं कर सकते हैं।

मैंने सुना है, एक होटल में एक रात एक नया मेहमान आकर ठहरा। वह जब आया तो होटल में एक ही कमरा खाली था। तो उस होटल के मैनेजर ने कहा कि कहीं और ठहर जाए। एक कमरा खाली तो है, लेकिन देने में डर लगता है। उस कमरे के नीचे जो मेहमान ठहरे हुए हैं, वे कुछ बड़े अजीब और बड़े पागल हैं। अगर ऊपर आप जरा जोर से भी चलें और उनको आवाज मिल गयी, तो वे झगड़ा करने पहुंच जाएंगे। अगर आपने कोई सामान जरा जोर से रख दिया या कुर्सी जोर से खींच ली तो वे झगड़ा करने पहुंच जाएंगे। आप कहीं और चल जाए। उसकी वजह से वह कमरा किसी और को देना कठिन है। लेकिन उस आदमी ने कहा, मुझे कोई काम भी नहीं करना, कोई मौका भी नहीं है। रात मैं बारह बजें लौटूंगा, आकर फिर सुबह ही वापस चला जाऊंगा। कोई गुंजाइश नहीं है। फिर मैं ध्यान रखूंगा। चार-छह घंटे सोऊंगा कि कोई नींद में मुझे गड़बड़ न हो। नहीं माना तो उस यात्री को ठहरा दिया गया।

रात बारह बजे लौटा। थका-मांदा दिन-भर के काम के बाद बिस्तर पर बैठा, एक जूता खोला, छोड़ा। जैसे ही जूता गिरा, आवाज आई। उसे ख्याल आया, कहीं नीचे कुछ बड़बड़ न हो जाए। उसने दूसरा धीरे से निकालकर रखा और सो गया!

नीचे बड़बड़ हो गयी। नीचे के आदमी ने आवाज सुनी, दरवाजा खुलते ही समझा कि ऊपर के सज्जन आ गए। फिर जूता पटकने की आवाज आयी तो उसने आया कि एक जूता उतारा। अब वह दूसरे की प्रतीक्षा करने लगा कि दूसरे जूते का क्या हुआ? दूसरे जूते का आखिर हुआ क्या? देर पर देर होने लगी और दूसरा जूता तो गिरा नहीं। उसने अपने मन में बहुत सोचा कि मुझे किसी के जूते से क्या लेना है! अलग करो इस विचार को। वह जितना धक्का देने लगा, उतनी नींद मुश्किल हो गयी। वह निकालने लगा इस विचार को, मुझे किसी के जूते से क्या लेना-देना! अलग करो, अलग करे, इससे मुझे क्या करना है? लेकिन दूसरा जूता उसके ऊपर बिल्कुल झूलने ही लगा कि वह गिर क्यों नहीं रहा है? उस दूसरे जूते का हुआ क्या? वह जितना धकाने लगा, जितना उसे हटाने लगा, उतना ही पाया कि वह आने लगा है। वह घबड़ा गया, वह बेचौन हो गया, वह परेशान हो गया, वह परेशान हो गया। आखिर उसके बर्दाश्त के बाहर हो गया, वह उठा और ऊपर गया। कोई एक-डेढ़ बजता होगा, दरवाजा खटखटाया। यह आदमी बहुत घबड़ाया कि क्या बात है। दरवाजा खोला, आशा तो हुई कि नीचे वाले सज्जन होने चाहिए। वह आदमी गुस्से में खड़ा हुआ था। उसने कहा, क्या मामला है, दूसरे जूते का क्या हुआ?

... निषेध आमंत्रण बन जाता है। निषेध आमंत्रण बन जाता है, इसे स्मरण रखें। यहां दरवाजे पर लिख दिया जाए, भीतर झांकना मना है, फिर इतना षक्तिशाली मनुष्य षायद ही उसके सामने से निकले जो बिना झांके निकल जाए। और अगर कोई किसी तरह से संयम करके निकल भी जाए तो घर पहुंचकर भी लौटने का मन बना रहेगा कि दफा झांककर देख ही लेना था कि बात क्या थी, मामला क्या था? ऐसे ये दरवाजे खुले हुए पड़े हैं, और कोई इनसे झांकेगा नहीं। लेकिन इन पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दें कि यहां झांकना मना है और बस तब कठिनाई षुरू हो जाएगी।

हमने जिंदगी पर सब जगह लिख दिया है कि झांकना बना है और इसकी वजह से सारी कठिनाई पैदा हो गयी है। क्रोध करना मना है, सेक्स करना मना है, सब चीजें वर्जित हैं, सब मन हैं। सबके भीतर झांकने का मन पैदा हो जाता है। सिखा दिया जाता है, झांकना मना है, इस वजह से आकर्षण गहरा हो जाता है। फिर झांकते भी हैं तो पछताते हैं, क्योंकि बुद्धि कहती है कि झांकना मना था, वह कैसा पाप कर दिया! झांकते है तो पछताते हैं, नहीं झांकते तो पछताते हैं कि झांक क्यों न लिया? तो बहुत कठिनाई खड़ी हो जाती है। और चित्त बहुत मुश्किल में उलझता चला जाता है। जिंदगी छोटी और उपद्रव बड़ा हो जाता है। उसे झेलना मुश्किल हो जाता है। आखिर में आप पाते हैं कि इस उपद्रव में, इस संघर्ष में नष्ट हो गए। यह कांफिलफ्ट दुख देती है। कांफ्लिक्ट, अंत द्वंद्व के अतिरिक्त मनुष्य को नष्ट करने वाली और कोई चीज दुनिया में नहीं है। वही तोड़ देती है और नष्ट कर देती है। और तब हम एक खंडहर की तरह रह जाते हैं जिसका कुल धंधा पछताना है, और कुछ भी नहीं है। अगर भोग लें तो पछताते हैं कि पाप कर लिया, अगर न भोग पाए तो पछताते हैं कि पता नहीं, पाप में ही सुख रहा हो! यहां तो कोई सुख मालूम होता नहीं।

जो गृहस्थ हैं, वे मुझे मिलते हैं, कहते हैं, गृहस्थी से ऊबे हैं। वे सबके सामने कहते हैं, सरल लोग हैं, संन्यासी मुझे मिलते हैं, वे अकेले में कहते हैं, बहुत ऊबे हुए हैं, कुछ समझ में नहीं आता क्या करें? गृहस्थी थी। उसको छोड़ा कि यहां सुख नहीं है। यहां भी कोई सुख नहीं है, जिसको संन्यास करके पकड़ लिया था। मुझसे एकांत में कहते हैं, क्योंकि संन्यासी उतने सरल नहीं है, गृहस्थ भीड़ में कह देता है कि मेरा चित्त बड़ा अशांत है। संन्यासी कहता है, अकेले में मेरा चित्त बहुत अशांत है, मैं मुश्किल में पड़ा हूं। कई दफा मन होता है उसका कि वापस लौट जाऊं, दुनिया को बिना झांके छोड़ आया हूं, झांक ही लूं, षायद वहीं रस हो। यहां तो कोई रस मालूम होता नहीं। वे वर्जित फल मीठे हो जाते हैं।

ईसाइयों की कहानी है, आदम ने बहिश्त के बगीचे में, इडेन के बगीचे में वह जो ज्ञान का फल था, उसको खा लिया। अब उसका जिम्मा अदम पर नहीं हो सकता, भगवान पर होगा। उन्होंने वर्जित कर दिया पहले कि इस फल को मत खाना। कठिनाई हो गयी। उन्होंने कह दिया कि बगीचे मग सब फल खा लेना, भगवान ने आदमी को, ईव को कहा, सब फल खा लेना, जो टी आफ नालेज है, वह झाड़ है ज्ञान है, इसका ईल मत खाना। बस, यह वर्जन ही आकर्षण हो गया।

अब ईव और अदम कितने परेशान हुए होंगे, नहीं कहा जा सकता। कैसे रात उन्होंने बेचौनी में गुजारी होगी, कैसे जागते होंगेय सोचते होंगे, क्या करें, कैसे करें, कैसे वह फल होगा, क्या होगा उसमें, क्या नहीं होगा! वह जो कहा जाता है, षैतान उनको समझाने लगा, खो लो, उसका मतलब यही है। उनका मन ही उनसे कहने लगा, खा

लो, चख लो, जरूर उसमें कुछ मामला होगा, तभी तो भगवान ने वर्जन किया। तो षैतान ने उनसे कहा कि भगवान खुद तो यह खाता है और तुमको वर्जित करता ह--यह उनके मन ने ही कहा। षैतान कहां है, कौन? कि खुद तो खाता है और तुमको मना करता है, सबसे बड़ा रहस्य यही है। जहां वर्जन है, वही रहस्य है। तो अगर अदम बगीचे से निकला और उसने पाप किया फल को खाने का तो जिम्मा अगर किसी का हो तो परमात्मा का ही होगा। न निषेध करता, न पता चलता उतने बड़े जंगल में कि कौन से झाड़ को नहीं खाना है।

लेकिन हम सबको निषेध सिखाया गया है और उससे दमन पैदा होता है। मैं आपको कहता हूं, जीवन को सहज भाव से लें, घबड़ाए नहीं और किसी फल का वर्जित न मानें। वर्जित माना कि दुख में पड़ जाएंगे। चखें, जाने, पहचानें, अपनी षक्तियों से परिचित हों, क्रोध की षक्ति से भी परिचित हों, काम की षक्ति से भी परिचित हों, अपने चित्त के सारे वेगों से परिचित हों। और परिचित होने से आप उस रहस्य पर पहुंचेंगे जहां वेग से मुक्त हो जाना होता है। तो न तो कहता हूं, भोग मैं जीवन भर पड़े रहे। वह भी एक मूर्च्छा है कि कोई आदमी भोग में ही पड़ा रहे और उसके ऊपर न उठ जाए। और न कहता हूं कि दमन करें, वह और भी बड़ी मूर्च्छा है। उससे कोई मुक्त नहीं होता। कहता हूं कि जीवन के सारे वेगों के प्रति, मन के सारे वेगों के प्रति, जाग्रत हों, साक्षी बनें, देखें, पहचानें, परिचित हों, और आप हैरान हो जाएंगे कि अगर एक बार भी क्रोध के पूरे साक्षी हो जाए तो आप क्रोध से मुक्त हो जाएंगे। अगर एक बार भी अपनी किसी वासना के पूरे साक्षी हो जाए--शुरू से लेकर अंत तक--पत्ते से लेकर जड़ तक, गहरे मन के अंतिम कोने तक, अगर उस वासना के पूरे रूप से आप परिचित हो जाए तो वह जानना ही मुक्त कर देता है।

ज्ञान ही मुक्त कर देता है, क्योंकि उसके बाद करने जैसा कुछ भी नहीं रह जाता, उसमें कोई अर्थ नहीं हर जाता है। कोई रस नहीं रह जाता। निषेध नहीं करना होता है। निषेध तो वही करता है, जिसे रस है। एक आदमी प्रतिज्ञा लेता है कि मैं तो ब्रह्मचर्य से रहूंगा। यह आदमी सेक्सुअल है, तब तो प्रतिज्ञा लेता है। अगर इसका सेक्स का भाव जानने से विलीन हो गया हो तो प्रतिज्ञा ब्रह्मचर्य की क्या अर्थ रखती है? जो भी प्रतिज्ञा लेते हैं और व्रत लेते हैं, घोषणा करते हैं, उससे विपरीत रस उनके भीतर मौजूद है। नहीं तो कोई वजह नहीं है। जो जानता है, क्या प्रतिज्ञा लेगा? क्या मैं प्रतिज्ञा लूंगा कि जब भवन से निकलूंगा तो दरवाजे से ही निकलूंगा, दीवाल से नहीं निकलूंगा? फिर क्या प्रतिज्ञा लूंगा? जानता हूं कि दीवाल से निकला ही नहीं जा कसता। सिर फाड़ सकता हूं। जानता हूं कि निकलना दरवाजे से होता है। बिना प्रतिज्ञा किए तीन दिन से रोज निकल जाता हूं। दरवाजे से निकल जाता हूं, दरवाजे से आता हूं। प्रतिज्ञा एक भी दिन लेने की जरूरत नहीं पड़ती। लेकिन अगर कोई आदमी यहां कहे कि मैं सबके सामने खड़े होकर प्रतिज्ञा करता हूं कि आज तो दरवाजे से निकलूंगा, दीवाल से नहीं, तो हम सोचेंगे कि मस्तिष्क में दीवाल से निकलने की कोई बात चल रही है। नहीं तो यह कैसे होता? एक आदमी ब्रह्मचर्य लेता है कि ब्रह्मचर्य से रहूंगा, अर्थ हुआ कि मन के भीतर बहुत कामनाएं, वासनाएं चल रही हैं। उसके विरोध में खड़ा हो रहा है। विरोध में खड़े होने से मन षुरू हो जाएगा।

नहीं, मैं नहीं कहता कि ब्रह्मचर्य का व्रत लें, मैं कहता हूं, सेक्स को जानें और समझें, और आप पाएंगे कि ब्रह्मचर्य आना षुरू हो गया। उससे डरें न, घबड़ाए न। क्रोध से डरें न, घबड़ाए न, उससे परिचित हों, जानें, और जब क्रोध आए तो इसका एक अवसर बनाए आब्जर्वेशन का, इसे एक अवसर बनाए निरीक्षण का, इसे एक अवसर बनाए कि कितना बढ़िया मौका मिला कि मैं जानूं अपने चित्त की एक सोयी वृत्ति को कि यह क्या है। बैठ जाए एक कोने में और क्रोध को फैलने दें, फूलने दें, बढ़ने दें और षांत होकर उसका निरीक्षण करें कि यह क्रोध क्या है। मत दोहराएं पिता ने जो सिखाया है कि क्रोध बुरा हैय क्योंकि यह दोहराया कि क्रोध का फिर निरीक्षण नहीं हो सकता। किताब में क्या लिखा है कि क्रोध बुरा है, मत दोहराएय क्योंकि दोहराया कि फिर निरीक्षण नहीं हो सकेगा। अगर मैं यह मानकर ही आपके घर आ जाऊं कि यह आदमी बुरा है, षैतान है, तो फिर आपसे मिलना क्या हो सकेगा, आपसे पहचान क्या हो सकेगी! मेरी मान्यता बाधा बन जाएगी। क्रोध या, घृणा, या काम या लोभ, किसी के प्रति कोई भावना न बनाए। जीवन पाप को मिला है। दूसरों की उधार दृष्टियों को लेने का कोई भी कारण नहीं है। जिए और जानें। क्रोध को पहचानें, अबाजर्व करें, ठीक-ठीक सम्यक निरीक्षण करें तो आप हैरान हो जाएंगे, जिस दिन आप क्रोध की पर्त-पर्त उघाड़कर देख लेंगे, आप पाएंगे कि इसमें तो कुछ भी न था, इसमें तो कोई अर्थ न था, इसमें तो कोई अभिप्राय न था। तब आप सिर्फ हंसेंगे। तब सिर्फ हंसेंगे कि कैसा पागल था कि दीवाल से निकलने की कोशिश करता था! आंख खुल जाएगी। तो हंसेंगे। हंसने के सिवाय कुश षेष न रह जाएगा और तब क्रोध विलीन हो जाएगा।

जानने से, परिचित होने से, पहचानने से, वैज्ञानिक निरीक्षण से, तटस्थ द्रष्टा के भाव से क्रोध, और उसी भांति और वासनाएं क्षीण होती हैं, और विलीन हो जाती हैं। लेकिन यह विलीन होना बहुत भिन्न है और दमन

बहुत भिन्न है। दबाने से क्रोध तो विलीन होता, क्रोध तो भीतर होता है, अक्रोध का भाव ऊपर जाता है। क्रोध भीतर दबा रहता है, अक्रोध की वेश-भूषा ऊपर हो जाती है। काम भीतर होता है, ब्रह्मचर्य ऊपर होता है और इसीलिए हमेशा डर बना रहता है कि वह जो भीतर है, चौबीस घंटे धक्के देता है कि बाहर न आ जाए, बाहर न निकल आए, इसलिए उसे सम्हालना पड़ता है। और जिंदगी एक सम्हालना हो जाती है, जीना नहीं। लिविंग दूसरी बात है और सम्हालना दूसरी बात है।

एक आदमी सम्हाल रहा है चौबीस घंटे अपने को। वह कोई जीना है? लेकिन यदि क्रोध के ज्ञान से क्रोध विलीन हो जाए तो अदभुत घटना होती है। वह जो क्रोध की षक्ति थी, वह जो वेग था जो इनर्जी थी, वह जो ऊर्जा थी, वह अब चूंकि क्रोध के मार्ग से निकलने में असमर्थ हो जाती है, क्रोध का मार्ग ही नष्ट हो जाता हैय फिर वह कहां जाएगा? वही ऊर्जा क्षमा बन जाती है। तो टरंसफार्मेशन होता है। अगर एक मार्ग बंद हो जाए, अगर आप एक झरने पर हों और झरने का एक मार्ग बंद हो जाए, फिर झरना दूसरे मार्ग से प्रवाहित होगा। अगर नीचे के मार्ग बंद होते चले जाए--ज्ञान से, जबरदस्ती नहीं, तो षक्तियां ऊपर के मार्गों से प्रवाहित होने लगती है। अगर व्यक्ति की पशुता जिस-जिस द्वार से विलीन हो जाती है, उसी-उसी द्वार से व्यक्ति के प्रभु का प्रकाशन षुरू हो जाता है। पशु मग ही प्रभु छिपा हुआ है। वे जो आपके वेग हैं उनमें ही सारी श्रेष्ठ बातें छिपी हैं जो मनुष्य को मुक्त कर दें और मोक्ष में प्रतिष्ठित कर दें। इनसे घबड़ाए न और मन को जटिल न करें, दमन न करें।

दूसरी बात है, दमन से रिक्त हो जाए और साक्षी भाव को जगाए। विसर्जन को पैदा करें, वृत्तियों का परिवर्तन करें, वृत्तियों का विरोध नहीं। वृत्तियों के षत्रु न बनें, प्रेम करें, मित्र हो जाए और जीत लें। ये दो बातें--शब्द से मुक्त हो जाए और दमन से रिक्त हो जाए तो आपके चित्त की भूमि से पत्थर हो जाएंगे। पत्थर हट जाएंगे। बस ये दो तरह के पत्थर हैं--सिद्धांत और दमन। ये मन को घेरे हुए हैं। वह खाली कर लें, भूमि निर्बल हो जाएगी। भूमि उपजाऊ हो जाएगी। पत्थर हट जाएंगे। अब इसमें बोए जा सकते हैं बीच। अब इसमें वे सत्य, जिनके बाबत मैंने दो दिन चर्चा की, इसमें डाले जा सकते हैं।

क्या मैंने चर्चा की? मैंने दो दिन चर्चा की कि क्रमशः-क्रमशः हमें उससे हटाते जाना है जो हम नहीं हैं और उसे जगाना है जो हम हैं। क्या-क्या हम नहीं हैं? असल में जो भी हम कर सकते हैं, जो भी हम सोच सकते हैं, जिसकी भी हम कल्पना कर सकते हैं, वह हम नहीं होंगे। जो हम कर सकते हैं, हमारा कर्म हो सकता है, वह हम नहीं होंगे। क्योंकि कर्म अलग होगा और मैं अलग। करने वाला अलग होगा। अभी मैं बैठा हूं, अभी चल नहीं रहा हूं। अभी उठूंगा तो चल सकता हूं। चलने की क्रिया नहीं है, तब भी चलने वाला मौजूद है। अभी उठूं तो चल सकता हूं। अभी बोल सकता हूं, अभी चुप हो जाऊं। चुप हो गया, तब भी बोलने वाला मौजूद है। क्रिया न हो तो कर्ता मौजूद है, इसलिए फिर हम बोल सकते हैं, फिर चल सकते हैं। क्रियाएं हम नहीं हैं--चाहे षरीर की और चाहे मन की, तो चित्त से अगर पत्थरों को अलग कर दें तो फिर अक्रिया में, उस दशा में, जब न कि मेरे षरीर की कोई क्रिया है और न मन की कोई क्रिया है, स्वयं में प्रवेश हो जाता है।

अक्रिया ध्यान है, नॉन-एक्शन। सब तलों पर--शरीर के तल पर, मन के तल पर अक्रिया, किसी तरह की क्रिया का न होना, किसी तरह के कंपन का न होना ध्यान है।

एक फकीर हुआ है, बहुत बड़ा फकीर था--बहुत बड़ा दूर तक उसके प्रभाव का घेरा था। हजारों-लाखों लोग उसके पास आते हैं। बहुत बड़ा उनके विश्राम के लिए आश्रम था। दूर-दूर तक फैले हुए जंगल में भवन थे, कुटिया थीं। एक बार देश का राजा भी वहां आया तो वह फकीर दिखलाने ले गया अपने आश्रम को। उसने भोजनालय से लेकर पुस्तकालय तक सब दिखलाया, सब बताया--यहां यह, यहां यह। सारे भवनों के घेरे के बीच में एक विशाल भवन था। और सब भवन तो छोटे-छोटे थे, झोपड़े थे। बीच में था एक विशाल भवन। राजा बार-बार पूछने लगा, यह क्या है, यहां क्या होता है? लेकिन फकीर इसे सुने और चुप रह जाए, राजा बहुत हैरान हुआ। छोटे-छोटे झोपड़े दिखाए, जाकर बताया कि यह स्नानगृह है, ये पाखाने हैं, यह फलां है, ढिकां है। राजा बार-बार पूछने लगा कि, और यह जो बीच में, यह जो विशाल भवन है, यह क्या है? फकीर से जैसे ही यह पूछे, फकीर चुप रह जाए। राजा बहुत हैरान हुआ कि यह आदमी पागल है कि क्या है। जो दिखाने जैसा है वह दिखाता नहीं। जो नहीं दिखाने जैसा है वह घुमा रहा है और दिखा रहा है।

आखिर विदा का भी वक्त आ गया, द्वार पर भी राजा आ गया। राजा ने पूछा, मैं कुछ समझने में असमर्थ हूं कि जो भवन इस आश्रम में सबसे बड़ा है, केंद्र में है, विशाल है, दूसरे से जिसके गुंबद दिखाई पड़ते हैं, यह क्या है? यहां क्या होता है? और वहां मुझे दिखाया भी नहीं और फिजूल के झोपड़े मुझे घुमाए गए। फकीर कहने लगा, बार-बार आप पूछते थे, मैं क्या बताऊं? कुछ बात ही ऐसी है कि बताना मुश्किल है। राजा ने कहाः फिर भी कुछ तो वहां

करते होंगे? क्या करते हो? क्या है यह? उस फकीर ने कहाः यही तो कठिनाई है। वहां बैठ कर कुछ भी नहीं करते, वहां हम सिर्फ बैठ जाते हैं, खाली हो जाते हैं, करते कुछ भी नहीं। वह तो नॉन-एक्शन की जगह है, वह तो मेडिटेशन की जगह है, वह तो ध्यान की जगह है। अब हम कैसे बताए कि वहां क्या करते हैं? वहां तो कुछ भी नहीं करते। किसी को कुछ भी नहीं करना होता है तो वहां चला जाता है। फिर वहां वह कुछ भी नहीं करना है। बस रह जाता है, हो जाता है, सिर्फ होता है, करता कुछ भी नहीं। कुछ भी हनीं करता, मात्र रह जाता है। जस्ट एक्झिस्ट! सिर्फ होना!

आप न षरीर से कुछ कर रहे हैं, न मन से कुछ कर रहे हैं, वहां ध्यान है। लेकिन या तो कोई माला फेर रहा है, तो यह सब क्रिया है। या कोई राम नाम जप रहा है, यह भी क्रिया है। या कोई गायत्री का पाठ कर रहा है, यह भी क्रिया है। जहां कोई भी क्रिया नहीं है, वहां स्वयं सत्ता है। चित्त की भूमि को तैयार करें, मुक्त करें षब्द से, रिक्त करें दमन से और फिर आप--आसान हो यह किन्हीं घड़ियां में, किन्हीं अमूल्य क्षणों में, बस हो जाएं, सिर्फ हों, और कुछ न करें।

एक और घटना कहूं, षायद उससे ख्याल में आए। मुझसे ही लोग पूछते हैं, ध्यान कब करते हैं? मैं मुश्किल में हो जाता हूं। कब करते हैं... ? जिनके घरों ठहरता हूं, वे नजर रखते हैं मुझ पर। सुबह उठा तो कब ध्यान के लिए बैठा? रात सोया, फिर बैठा कि नहीं, फिर बड़े निराश हो जाते हैं। मैं तो कभी ध्यान को बैठता ही नहीं। कई लोग हैं, कई पागल हैं, मुझसे कहते हैं, आपके पास-पास आना चाहते हैं, जीवनचर्या देखना चाहते हैं। जीवनचर्या क्या देखेंगे? खाता हूं, पीता हूं, नहाता हूं, कपड़े पहनता हूं, क्या करेंगे? कोई आग्रह नहीं मेरा कि चार बजे उठूं। मेरा कोई आग्रह नहीं। जब नींद खुलती है तो उठता हूं नींद आती है तो सोता हूं। भूख लगती है, खाता हूं, नहीं भूख लेती है, नहीं खाता हूं। तो दिखेंगे क्या? क्या देखेंगे? वे बेचारे देखने आना चाहते हैं कि ध्यान कब करता हूं, कैसे करता हूं? ध्यान कोई करने की बात नहीं है कि आप बैठ गए पालथी लगा कर और पदमासन लगा कर और आंखें बंद करके। बच्चों जैसी बात है, इम्योच्योर बात है। ऐसे बैठ गए बनकर तो सोचा ध्यान हो गया। कोई माला लेकर बैठ गया, सोचा ध्यान हो गया। ध्यान बड़ी अदभुत बात है। ध्यान कोई क्रिया नहीं है। ध्यान कोई एक्शन का हिस्सा नहीं है, ध्यान बीइंग का हिस्सा है। ध्यान है आत्मा का स्वरूप ध्यान आपकी कोई क्रिया नहीं है।

एक फकीर एक पहाड़ी के किनारे खड़ा था। कुछ मित्र आते थे, करीब आते थे। सोचने लगे, क्या वहां करता होगा? कोई भी--मैं नहीं बैठा हूं, सोचेंगे क्या करते होंगे? अभी बोल रहा हूं तो आपको लगता होगा, बोल रहा हैं, लेकिन एक तल है, जहां कुछ भी नहीं हो रहा है। वह खड़ा था वहां तो सोचा, कुछ न कुछ करता होगा। विवाद हो गया, और हमारा विवाद तो किसी भी बात में हो जाए। चित्त तो विवाद से भरा हुआ है, किसी में भी लड़ जाए! छोटी-मोटी बातों में लड़ जा सकते हैं कि किस फिल्म में कौन अभिनेता काम करता है, इस पर लड़ सकते हैं। महावीर बड़े थे कि बुद्ध बड़े थे, इस पर लड़ सकते हैं। एक पंडित ने मुझसे पूछा कि आप मुझे बताइए कि उम्र में महावीर बड़े थे कि बुद्ध बडे थे? मैंने कहा, आपका दिमाग ठीक है कि खराब हो गया है? मुझे क्या प्रयोजन? नहीं, मैं इधर सात वर्षों से खोज कर रहा हूं। सात वर्ष तो मिट्टी में गए आपके, और अभी भी थोड़ा बहुत समय है, उसकी फिकर कर लें, अपनी उम्र की फिकर करें। महावीर बड़े थे उम्र में या बुद्ध बड़े थे, क्या मतलब है? लेकिन दुनिया में रिसर्च के नाम से बहुत पागलपन आया है, बहुत मैडनेस आयी है। और वह पागलपन चल रहा है कि कहां क्या था, किस गांव में पैदा हुए थे। किसी में हुए हों, क्या लेना-देना है? न भी हुए हों तो क्या फर्क पड़ता है? आप हैं, यह तो विचार की बात है, तो वह छोटी-सी बात में हमारे तो विवाद हो सकते हैं, कोई विवाद की तो दिक्कत नहीं है।

एक गांव में गया, मैं बोलता था, एक फकीर का नाम लिया, एक सज्जन बीच में खड़े हुए, बोले बिल्कुल गलत है, यह नाम तो ठीक नहीं है। यह घटना तो किसी दूसरे फकीर की है। मैंने कहा, दूसरे की समझ लो, तीसरे की हो, तीसरे की समझ लो। क्या लेना-देना? अ ब स कोई भी नाम रख लो। मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन इसमें विवाद क्या है? इसमें गुंजाइश क्या है, लड़ने की?

वह फकीर खड़ा है, तीन-चार मित्र गए, सोचने लगे क्या कर रहा है? एक कहा कि अक्सर ऐसा होता है कि उसकी गाय खो जाती है। पहाड़ी पर जाकर खोजता है कि मेरी गाय कहां है। वही खोजता होगा लेकिन दूसरे ने कहा कि मालूम नहीं होता कि गाय खोजता है, क्योंकि खोजने वाले की आंखें भटकती हुई होती हैं। वह तो षांत ही खड़ा हुआ है। मुझे ऐसा लगता है कि कोई मित्र पीछे आया होगा, छूट गया घूमने में, उसकी प्रतीक्षा करता होगा। तीसरे ने कहा, क्षमा करें, प्रतीक्षा करने वाला थोड़ी-थोड़ी देर में लौट कर पीछे देखता है। वह तो लौटकर देखता

नहीं, खड़ा ही हुआ है। प्रतीक्षा-व्रतीक्षा नहीं कर रहा है, मैं समझता हूं फकीर है, साधु ध्यान कर रहा है, परमात्मा का स्मरण कर रहा है। कोई प्रार्थना कर रहा है।

नहीं तय हो सका तो सोचा, चलो उसी से पूछ लें। चढ़े पहाड़ पर ऊपर गए। फकीर से जाकर पहले व्यक्ति ने पूछा कि क्या भिक्षु आपकी गाय खो गयी है? उसको खोज रहे हैं? भिक्षु ने कहा, गाय! कैसी गाय, किसकी गाय? मेरा कुछ भी नहीं है, गाय मेरी कैसे हो सकती है? पूछने वाला हैरान हुआ, फिर भी सोचा, आपकी कभी-कभी गाय खो जाती है। मेरी कोई गाय ही नहीं तो खोएगी कैसे? मैं कुछ नहीं खोज रहा। दूसरे ने कहा, निश्चित ही फिर आपका कोई मित्र पीछे छूट गया होगा। उसने कहा, कैसा मित्र, कैसा षत्रु? मेरा कोई षत्रु नहीं, मेरा कोई मित्र नहीं। मैं किसी के साथ आया नहीं, किसी के साथ जाऊंगा नहीं। तो मैं किसी प्रतीक्षा करूं? मैं कहूं अकेला निपट। किसी की प्रतीक्षा, किसी की प्रतीक्षा नहीं कर रहा। तब तो तीसरे ने सोचा, अब तो जीत का मामला पक्का ही है। उसने कहा, अब तो तय है कि आप भगवान की प्रार्थना कर रहे हैं। उसने कहा, कैसा भगवान और कैसी प्रार्थना? मैं कभी कोई प्रार्थना नहीं किया करता। मेरी कोई कामना नहीं तो प्रार्थना क्या होगी? कैसा भगवान? मैं तो अपने अतिरिक्त किसी को जानता नहीं। तो कैसे किसी भगवान का स्मरण करूं? उन तीनों ने कहा कि अजीब बात है। आप कर क्या रहे यहां? आखिर हो क्या रहा है यहां? क्या कर रहे हैं यहां? फकीर ने कहाः मैं तो केवल हूं। और कर कुछ भी नहीं रहा। मैं सिर्फ हूं और कर कुछ भी नहीं रहा। मैं तो बस हूं मात्र।

यह होना मात्र सिर्फ हो जाना मात्र--यह है बात। फिर उसे कुछ भी कहें--ध्यान कहें, कुछ और नाम दें, जो मन में आए वह कहें, यह है। और इस संगीत को जो होने मात्र से अनुभव होता है वह परमात्मा कहा जाता है। इस संगीत को जीने मात्र होने से अनुभव पाया जाता है जीवन, इस संगीत को जो होने मात्र से संपदित होता है और सारे तन-प्राणों को घेर लेता है और घेरता चला जाता है, और धीरे-धीरे सारे जगत को घेर लेता है और आनंद के ऊर्जा में स्थापित कर देता है, इसे कहा है मोक्ष। व्यक्ति यहां मिट जाता है, और समष्टि रह जाती है। इसे कहा है स्वयं का होना। लेकिन जैसे ही हम इसमें प्रविष्ट हुए, स्वयं का भी भाव विलीन हो जाता है और रह जाती है मात्र सत्ता एक्झिस्टेंस, वह जो है। और वही है ईश्वर, जो है। वही है सत्य, जो है। और उसे ही पाना है और उसमें ही होना है। और उसके बाहर दुख है, पीड़ा है। उसके बाहर चिंता है। उसके बाहर अंधकार है, और सपने हैं। और उसके बारह सब असत्य है, और उसके भीतर है सत्य।

इस सत्य को पाने के लिए इन तीन दिनों में थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कहीं। जो बातें कहीं, उन पर ख्याल करना और जो इशारा किया, उस पर थोड़ी आंखें उठाना। नहीं तो अक्सर यह होता है कि कोई चांद के अंगुली से दिखाए तो अंगुली को हम पकड़ लेते हैं और चांद को भूल जाते हैं। अंगुली को भूल जाना उसका कोई भी मूल्य नहीं है। मूल्य है चांद का, जिस तरफ उंगली उठायी थी। और नहीं तो मेरी अंगुली पर विचार करते रहेंगे और चांद वहीं पड़ा रह जाएगा जहां पड़ा था।

तो कृपा करना, मेरे षब्दों को भूल जाना। मैंने जो कहा, उसे भूल जाना। मैंने जो बातें कहीं, उन्हें विस्मरण कर देना और जिस तरफ इशारा किया है और जिस तरफ आपके ध्यान को आकर्षित करने की चेष्टा की है उस तरफ देखना। अंगुली मेरी हो सकती है, अंगुली महावीर की हो सकती है, उंगली क्राइस्ट की, कृष्ण की हो सकती है, चांद किसी का भी नहीं है। उंगली किसी की भी हो सकती है, चांद किसी का भी नहीं है। जो उंगली को पकड़ता है, वह संप्रदाय को पकड़ लेता है। और जो चांद को देखता है, वह धर्म को देख लेता है। परमात्मा करे, धर्म को देखने की क्षमता उपलब्ध हो। उससे ही मिलेगा--जो मिलने जैसा है, और उससे ही छूटेगा--जो व्यर्थ है और छूट जाने जैसा है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और षांति से सुना, और ऐसी बात को, जिसमें फूल कम हैं और कांटे ज्यादा हैं और ऐसी बातों को, जिनमें आपको चोटें पहुंच जाती हैं, इतने प्रेम और षांति से सुनते हैं तो मुझे बड़ा ऋण मालूम होता है, मुझे बड़ी कृपा मालूम होती है--इतने प्रेम और षांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तीसरा प्रवचन

छाया-जगत का बोध

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी चर्चा प्रारंभ करना चाहूंगा।

कहानियों से मुझे कुछ प्रेम है, इसलिए कि आदमी का जीवन भी कहानी से ज्यादा नहीं है और इसलिए उचित है कि मनुष्य के जीवन के संबंध में विचार किसी कहानी से शुरू हो।

मैंने सुना है, ईश्वर एक बार किसी देवता से बहुत नाराज हो गया। उस देवता को स्वर्ग से निष्कासित कर दिया गया दंड के स्वरूप, और साथ ही सजा दी गई... देखने में सजा बहुत छोटी थी, और हमें भी लगेगा कि यह भी क्या कोई सजा है? उस देवता को भी लगा कि यह सजा नहीं है। वह प्रसन्नता से सजा को झेलने को तैयार हो गया। सजा थी कि उस देवता का, जहां भी वह चले, उठे, बैठे, उसकी कोई छाया नहीं पड़ेगी। अब यह कोई सजा न हुई, यह कोई दंड न हुआ। आपकी अगर छाया न पड़े तो इसमें कौन सी बड़ी सजा हो गई? वह देवता स्वर्ग से निकाल दिया गया। जमीन पर आया। धूप में चलता था, उसकी छाया नहीं बनती थी। सोचा इसमें क्या कठिनाई है? लेकिन धीरे-धीरे कठिनाइयां आनी शुरू हो गई, लोगों ने देखा कि उस व्यक्ति की छाया नहीं बनती है, लोग उससे डरने लगे और दूर भागने लगे। वह जिस दूकान पर जाता उस दूकान के दरवाजे बंद हो जाते। जिस मकान पर जाता, मकान के लोग अंदर छिप जाते, द्वार बंद कर लेते। उससे कोई मिलना न चाहता, उसके पास कोई आना न चाहता, उससे लोग छूत की बीमारी की तरह बचने का प्रयास करते। और धीरे-धीरे उसे अनुभव हुआ कि यह दंड तो बड़ा है, उसका जीवन मुश्किल हो गया। उस व्यक्ति की छाया नहीं पड़ती थी। धीरे-धीरे उसे कठिनाई अनुभव हुई। उसका जीवन मुश्किल हो गया। ऐसा कोई बड़ा कसूर न था, कोई अपराध न था लेकिन जिसकी छाया न पड़ती हो, वह आदमी साधारण न मालूम होता था। लोग समझने लगे, प्रेत है, भूत है, क्या है! जिस गांव से निकलता उस गांव के लोग उसे खदेड़ कर बाहर कर देते। उसे भोजन मिलना, पानी मिलना मुश्किल हो गया। जब सारे लोग सो जाते, अंधेरे में रात में कुओं पर जाकर वह पानी पी लेता। रात्रि में चोरी से लोगों के घरों में घुस कर भोजन कर लेता। उसका जीवन एक नरक हो गया।

यह कहानी आपसे कही, बिल्कुल काल्पनिक है। कोई कहीं ईश्वर इस भांति का नहीं है कि किसी को दंड दे। न ही ऐसा कभी हुआ होगा, लेकिन किसी और प्रयोजन से यह बात मैंने आपसे कही है। यह मैंने इस ख्याल से आपसे कही है कि अगर आपकी छाया खो जाए तो आपका जीवन कष्ट में पड़ जाएगा। लेकिन अगर आपकी आत्मा ही खो जाए तो फिर कष्टों का अंत नहीं होगा। छाया खोने भर से जीवन नरक और पीड़ा बन सकता है और आत्मा ही खो जाए तो फिर कल्पना भी करनी कठिन है कि हम किन पीड़ाओं में नहीं पड़ जाएंगे।

उस व्यक्ति की छाया खो गई थी, और हम सारे लोग की आत्मा खो गई है। हमारी छाया तो बनती है--अगर ठीक से कहें तो हमारे केवल छाया ही बनती है और हमारे भीतर कुछ भी नहीं है। हम चलते हैं, उठते हैं, काम करते हैं, जीते हैं और यह सारा का सारा उपक्रम एक छाया एक शैडो से ज्यादा अर्थपूर्ण नहीं है। इसके भीतर कोई सत्व, कोई सारभूत आत्मा का न तो हमें अनुभव होता है और न हमारे जीवन में उसका प्रतिफलन होता है। और न हमारे जीवन में उसका प्रकाश फैलता है। छाया का जीवन है। इस छाया के जीवन पर हम इधर इन तीन दिनों में विचार करेंगे और इस पर भी विचार करेंगे इस पर भी विचार करेंगे कि छाया का जीवन आत्मा के जीवन में कैसे परिणत हो सकता है? यह जो शैडो लाइफ है, यह जो छाया जैसा जीवन है, यह वास्तविक और आत्मिक जीवन में कैसे बदला जा सकता है, इसके बाबत विचार करेंगे।

छाया के जीवन से मेरा क्या अर्थ है, वह मैं आपको कहूं।

बहुत समय पहले, च्वांग्त्सु नाम का एक विचारक हुआ। एक रात्रि में, एक झोपड़े के पास निकलता था। उसके भीतर--एक प्रेमी और प्रेयसी की बातें चलती थीं, उनको झोपड़े के बाहर से अचानक सुन लिया। वह प्रेयसी अपने प्रेमी को कहती थी कि तुम्हारे बिना मैं एक क्षण भी नहीं जी सकती हूं। तुम्हारा होना ही मेरा जीवन है। च्वांग्त्सु मन में सोचने लगा, किसी का जीवन किसी दूसरे के होने में कैसे हो सकता है? अगर मैं आपसे कहूं कि आपके होने में ही मेरा जीवन है, और अगर मेरा कोई जीवन होगा तो वह छाया का जीवन होगा कि क्योंकि आपके होने में मेरा जीवन कैसे हो सकता है? जो लोग भी अपने जीवन को किसी और में रख देते हैं, वे लोग छाया का जीवन जीते हैं--चाहे धन में, चाहे यश में, चाहे मित्रों में, चाहे प्रियजनों में। जो दूसरों में अपने जीवन को रख देता है उसका खुद का जीवन छाया का जीवन हो जाता है। उसका जीवन वास्तविक नहीं हो सकता। उसका जीवन झूठा होगा। जैसे कोई वृक्ष कहे किसी दूसरे वृक्ष से कि तुम्हारी जड़ें ही मेरी जड़ें हैं और अपनी जड़ों को भूल जाए, तो यह

वृक्ष थोड़े ही दिनों में कुम्हला जाएगा, मुर्झा जाएगा और सूख जाएगा। क्योंकि दूसरे की जड़ें दूसरे की ही होंगी, इस वृक्ष की नहीं हो सकेंगी। च्वांग्त्सु ने लौट कर अपने शिष्यों को कहा कि आज मैंने एक अदभुत सत्य अचानक सुन लिया है। एक प्रेयसी अपने प्रेमी को कहती थी, तुम्हारे होने में मेरा जीवन है। जहां-जहां कोई व्यक्ति यह कहता हो कि फलां चीज के होने में मेरा जीवन है, वहीं जानना कि जीवन असत्य है और झूठा है। जीवन अपने होने में होता है, किसी और के होने में संभव नहीं है।

फिर और भी आश्चर्यजनक बात घटी--कुछ समय बीत जाने के बाद च्वांग्त्से एक पहाड़ के करीब से गुजरता था और उसने एक स्त्री को एक कब्र के पास बैठे हुए देखा। यह तो कोई अनहोनी बात न थी।

च्वांग्त्सु ने जाकर पूछा कि बात क्या है? उस स्त्री ने कहाः मेरे पति को मरे दो ही दिन हुए और मुझे एक नये प्रेमी के प्रेम में पड़ जाना हो गया है। तो कम से कम पति की कब्र सूख जाए, उतनी देर तक रुकना जरूरी है। इसलिए कब्र को सुखा रहे हैं। च्वांग्त्सु वापस लौटा, उसने अपने शिष्यों से कहाः आज एक और नये सत्य का अनुभव हुआ। जो लोग कहते हैं, तुम्हारे बिना न जी सकेंगे, वे तुम्हारे मरने के बाद तत्क्षण अपने जीने के लिए कोई और कारण खोज लेंगे, कोई और उपाय खोज लेंगे। अभी एक स्त्री अपने पति की कब्र को पंखा कर रही थी, क्योंकि कब्र जल्दी सूख जाए ताकि वह नये प्रेम की दुनिया में प्रवेश कर सके।

जो जीवन दूसरों पर जीता है वह उनके हट जाने पर तत्क्षण दूसरे मुद्दे, दूसरे कारण खोज लेगा। और यह भी स्मरण रखें कि ऐसा जीवन प्रतिक्षण बदलता हुआ जीवन होगा, क्योंकि छाया का जीवन स्थिर जीवन नहीं हो सकता। आप जहां जाते हैं वहां आपकी छाया चली जाती है। सुबह, मैंने सुना है, एक चींटी अपने छेद से बाहर निकली, उसने देखा, सूरज उग रहा है, उसकी बड़ी लंबी छाया बन रही है।

उसने कहाः आज तो मुझे बहुत भोजन की जरूरत पड़ेगी। बहुत भोजन की जरूरत पड़ेगी, क्योंकि छाया उसकी बड़ी थी और उसने सोचा, इतनी बड़ी मेरी देह है आज मुझे भोजन की जरूरत पड़ेगी। दोपहर तक वह भोजन खोजती रही, तब तक सूरज ऊपर चढ़ गया, छाया छोटी हो गई। दोपहर उसने सोचा था, आज थोड़ा सा भी मिल जाए तो भी काम चल जाएगा। जो छाया सुबह बड़ी थी, वह दोपहर सिकुड़ कर छोटी हो गई। जो छाया बहुत बड़ी बनती थी, अंधकार में बिल्कुल नहीं बनेगी।

छाया का जीवन प्रतिक्षण बदलता हुआ जीवन होगा, क्योंकि छाया की कोई सत्ता या अस्तित्व नहीं होता। इसलिए जो लोग छाया में जीएंगे, स्वाभाविक है कि वे रोज बदल जाए, प्रतिक्षण बदल जाए, प्रतिपल बदल जाए। उनके भीतर कोई स्थिरता का बिंदु, कोई आधार ठहरा हुआ नहीं होगा। उनमें व्यक्ति तो होगा लेकिन वे व्यक्ति नहीं होंगे। रोज-रोज बदल जाने वाली बात होगी। कल जिसे प्रेम किया है उससे आज घृणा की जा सकती है। कल जो मित्र था वह आज शत्रु हो सकता है। सुबह जिस पर हम प्रसन्न थे, सांझ उप पर नाराज हो सकते हैं। एक क्षण पहले हमारे मन में जो विचार था, एक क्षण बाद नहीं हो जाएगा। एक क्षण पहले जिस सिद्धांत के लिए अपनी जान दे देते, एक क्षण बाद उसी सिद्धांत को नष्ट करने के लिए भी जान दे सकते हैं। एक क्षण पहले कुछ थे, एक क्षण बाद कुछ हैं। जैसे पानी बदलता जाता है, वैसे ही छाया का जिनका जीवन है, उनका मन भी बदलता जाता है प्रतिक्षण। उसमें हर क्षण कुछ बदलाहट होती चली जाती है। कोई स्थिरता का बिंदु, कोई आधार उनके व्यक्तित्व के केंद्र पर नहीं होगा।

हम अपने संबंध में भी सोचें तो क्या सुबह आप वही होते हैं जो सांझ होते हैं? और क्या सांझ आप अपने भीतर उसी व्यक्ति को पाते हैं, जिससे दोपहर को मिलन हुआ था? क्या वर्ष भर पहले जो आप थे वही आज आप हैं? यह सब बहा जा रहा है। गंगा के किनारे खड़े होकर हम देखें तो लगेगा, वही गंगा है लेकिन पानी प्रतिक्षण बहा जा रहा है। एक वर्ष के बाद आप जाएंगे तो आप कहेंगे, इसी गंगा का दर्शन पिछले वर्ष किया था। लेकिन यह बात झूठी होगी। यह गंगा बह गई, वह पानी बह गया जिसका अप वर्ष भर पहले दर्शन किए थे। अब पानी दूसरा है। केवल नाम पुराना है, और कुछ भी पुराना नहीं है। न वे घाट है, न वे रेत के कण हैं, न वे जल के बिंदु हैं। वहां कुछ भी नहीं रह गया, सब बह गया। केवल नाम गंगा का पुराना है।

हम भी, नाम तो हमारा पुराना होता है। जो कल था वही आज है, जो आज है वही कल होगा। जो जन्म के समय दे दिया गया नाम, वह मृत्यु के समय तक चलेगा। नाम भर स्थिर रहेगा, और कुछ भी थिर नहीं है। भीतर सब बदलता जा रहा है। वहां व्यक्तित्व की नदी रोज बहाती चली जाती है। ऐसा जो बदलता हुआ प्रसाद है, इस प्रवाह में जो जीता है, उसको जीवन छाया का जीवन है। इस बदलते हुए प्रवाह में, हम चाहे कितना ही श्रम करें, हम चाहे कितने ही दौड़, हम कहीं पहुंच नहीं पाएंगे। कोई मंजिल, कोई गंतव्य, कोई लक्ष्य उपलब्ध नहीं हो सकेगा इसलिए कि जो छाया के पीछे दौड़ता है, उसके हाथ खाली हो रह जाते हैं, वे कभी भर नहीं पाते। और हम कोई

नये व्यक्ति नहीं है। जमीन पर करोड़ों-करोड़ों लोग हमसे पहले हुए हैं और हमने मरते समय उनकी मुट्ठियां खाली देखी हैं, खुली देखी हैं। जीवन-भर जिन्होंने दौड़ कर बहुत पाने की कोशिश की होगी, आखिर में हमने पाया है कि उनके पास कुछ भी नहीं है। हम अपने पर ही विचार करेंगे तो पाएंगे कि इतने दिन हमने भी दौड़ा है--कोई दस वर्ष दौड़ा होगा, कोई पचास वर्ष, कोई साठ वर्ष, कोई सत्तर वर्ष। उपलब्धि के नाम पर, संपत्ति के नाम पर हमारे पास क्या है? क्या भीतर झांककर हम अपने को दरिद्र नहीं पाते हैं--निपट दरिद्र, जिसके पास कुछ भी न हो! क्या भीतर झांक कर हमें भय नहीं मालूम होता? क्या भीतर झांक कर हमें असुरक्षा अनुभव नहीं होती? इसीलिए तो हम भीतर झांकने से बचते हैं। इसीलिए तो कोई अपने से मिलना नहीं चाहता, इसलिए तो कोई अपने को परिचित नहीं होना चाहता। इसीलिए तो आत्म-ज्ञान पर इतने शास्त्र हैं, लेकिन आत्म-ज्ञान कोई चाहता नहीं।

मैं एक घटना आपसे कहूं--एक फकीर हुआ। कुछ थोड़े से रुपये उसके पास थे, जीवन भर में इकट्ठे कर लिए थे। मरने का दिन उसका करीब आया तो उसने लोगों से कहा, यद्यपि मैं फकीर था, भिखमंगा था, फिर भी मैंने कुछ इकट्ठा कर लिया है। और अब चूंकि मैं मरने के करीब हूं, इस सारी संपत्ति को किसी दरिद्र आदमी को दे देना चाहता हूं। तो तुम जाओ, गांव में कोई दरिद्र हो, उसे बुला लाओ। तुम उसे यह दे दो। गांव में बहुत दरिद्र थे। ऐसा कौन सा गांव है, जहां दरिद्र न हों? बहुत सैकड़ों लोग उसके झोपड़े के पास भीड़ लगाकर खड़े हो गए और उन सबने मांग की कि हम दरिद्र हैं, हमें दे दिया जाए। और उन सबने अपने-अपने दस्तावेज प्रस्तावित किए और अपनी-अपनी सिफारिशें लाए कि मैं सबसे बड़ा गरीब आदमी हूं।

लेकिन वह फकीर हंसता रहा। उसने कहा, जब सबसे बड़ा गरीब आएगा तो मैं उसे देख कर ही पहचान जाऊंगा। इसलिए तुम्हारे प्रमाण पत्रों की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि गरीब आदमी अपने को छिपा नहीं सकता। जब गरीब आदमी आएगा, तब मैं पहचान जाऊंगा और दे दूंगा। और तभी एक बहुत बड़ी भीड़, बहुत बड़ा जलूस रास्ते पर निकला और वे सारे दरिद्र लोग जो रुपया मांगने इकट्ठे हुए थे, आंखें फाड़ कर उस जुलूस को देखने लगे। राजा की सवारी थी। उस भीड़ में तो सारे लोग राजा को देखने में लग गए, उस फकीर ने अपने रुपयों की थैली उठाई और राजा के हाथी पर फेंक दी। राजा ने कहाः यह क्या है? उस फकीर ने कहाः कुछ रुपये मैंने इकट्ठे कर लिए हैं, अब मरने को हूं तो इस गांव में सबसे दरिद्र आदमी को देने का मेरे मन में ख्याल था, वह मैं तुम्हें दे देता हूं। वे सारे दरिद्र चिल्लाए कि यह क्या पागलपन है, राजा को दे रहे हो? और सोचा था दरिद्र को देने का। उस फकीर ने कहाः राजा भी अगर विचार करेगा तो पाएगा, उससे ज्यादा दरिद्र कोई भी नहीं है। और रात्रि जब राजा अपने बिस्तर पर सोने गया और सोचने लगा तो उसे ख्याल आया कि उचित ही है कि उसने मुझे सबसे बड़ा दरिद्र कहां, क्योंकि सर्वाधिक संपत्ति पाकर भी जिसका मन न भरा हो, उससे बड़ा और दरिद्र नहीं हो सकता।

असल में जो व्यक्ति जितना दरिद्र होगा उतनी ही संपत्ति की खोज करता है। संपत्ति की खोज दरिद्र का लक्षण है। जो व्यक्ति बीमार होगा, वह स्वास्थ्य की खोज करेगा। स्वास्थ्य की खोज बीमार का लक्षण है। जो व्यक्ति अंधेरे में होगा वह प्रकाश की खोज करेगा। प्रकाश की खोज अंधेरे में होने का लक्षण है। तो धन की खोज दरिद्र होने का लक्षण है। यश की खोज हीन होने का लक्षण हैं। जिसको मनोवैज्ञानिक इनफिरिआरिटी कांप्लेक्स कहते हैं, वह हीनता का भाव। जिस व्यक्ति में जितनी हीनता का भाव होगा उतना ही बड़े पदों पर होने की उसमें आकांक्षा पैदा होगी। क्योंकि अपनी हीनता के भाव को भुलाने का और कोई उपाय नहीं है, सिवाय इसके कि बड़े से बड़े कुर्सियों पर, बड़े से बड़े पदों पर बैठ जाया जाए। और जिस व्यक्ति के भीतर जितनी दरिद्रता का अनुभव होगा उतना ही वह धन के पीछे पागल हो जाएगा, क्योंकि धन को इकट्ठा करके अपने को यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि मैं दरिद्र नहीं हूं। लेकिन स्मरण रखें, चाहे कितना ही धन इकट्ठा हो जाए, दरिद्रता नहीं मिटती। और चाहे कितने ही बड़े पदों पर पहुंच जाया जाए, हीन भाव नष्ट नहीं होते। नहीं होता इसलिए कि दरिद्रता भीतर है और धन बाहर है, और दोनों का कोई संबंध नहीं है। हीन भाव भीतर है और पद बाहर है। इसलिए तो यह होता है कि एक पद मिले तो उससे बड़े पद की आकांक्षा पैदा होती है वह पद मिल जाए तो और बड़े पद की आकांक्षा पैदा हो जाती है।

बंदरों को वृक्षों पर चढ़ते अगर आपने कभी देखा हो--उनकी बेचौनी देखी हो, कूदेंगे, फांदेंगे, एक क्षण को थिर न रह सकेंगे, ऊंची से ऊंची डाल पर पहुंचने की कोशिश करेंगे, जब तक कि वृक्ष की आखिरी फुनगी पर न पहुंच जाए। इसके ऊपर जाने का फिर कोई उपाय नहीं। तब तक वे कूदेंगे, फांदेंगे, ऊपर की फुनगी पर पहुंचेंगे। डार्विन ने मनुष्य को बंदर से पैदा हुआ, ऐसा कहा है। मुझे पता नहीं कि यह कहां तक सच है, लेकिन ऊपर की कोशिश, डाल की आखिरी फुनगी पर पहुंचने की कोशिश, राष्ट्रपति बन जाने की कोशिश मनुष्य में वैसी है जैसी बंदरों में होती है। और यह ऊपर पहुंच जाने की कोशिश इस बात का सबूत है कि हमारे मन में, हम बहुत नीचे हैं, इसके बोध से पैदा होती है। हम बहुत हीन हैं, हमें सिद्ध करना है।

इसलिए दुनिया में जिन लोगों में हीनता की भावना सर्वाधिक होती है, वे लोग बड़े-बड़े काम कर गुजरते हैं। बड़े काम उनसे हो जाते हैं। बड़े काम का अर्थ, जिन्हें दुनिया बड़ा कहती है। बड़े काम, बड़े युद्ध। हिटलर, स्टैलिन या मुसोलिनी जैसे लोग बहुत हीनता के भाव से पीड़ित होते हैं। सिकंदर या चंगीज खां, तैमूरलंग जैसे लोग बहुत हीनता के भाव से पीड़ित लोग थे। इन्हें तब तक चौन न थी जब तक इन्होंने यह दिखा दिया कि लाखों लोग हमारे कब्जे में हैं, उनकी गर्दन पर हमारे हाथ हैं। जब हम उनकी गर्दन चाहें अभी मरोड़ दें, अभी खत्म कर दें। जब तक उन्हें यह विश्वास न आ गया कि हम शक्तिशाली हैं तब तक वे भागते गए। और यह विश्वास कभी नहीं आता, आखिर तक नहीं आता। इसलिए सारी दुनिया पर कब्जा हो जाए, करोड़-करोड़ लोगों के जीवन हमारे हाथ में हो जाए तो हीन-बुद्धि व्यक्ति को यह भाव पैदा होता है, ख्याल आता है कि मैं भी कुछ हो गया। अब वह यह डर छोड़ सकता है कि मैं कुछ भी नहीं हूं, यह डर छोड़ा जा सकता है, क्योंकि इतने लोगों पर मेरा कब्जा है। लेकिन फिर भी भीतर डर बना रहता है। इसलिए जितना जो व्यक्ति शक्तिशाली होता जाता है, शक्ति इकट्ठी करता जाता है, उतनी ही निर्बलता उसको पकड़ने लगती है, उतनी ही उसे अपनी सुरक्षा की व्यवस्था करनी होती है।

स्टैलिन तो बाद के दिनों में क्रेमलिन के बाहर भी नहीं निकल सका। ठीक उसकी शक्ल का दूसरा आदमी खोज लिया गया था जो सभाओं में जाता, जुलूस में सम्मिलित होता स्टैलिन की जगह क्योंकि डर था कि कहीं गोली न मार दी जाए। हिटलर ने भी अपना डबल खोज लिया था जो उसकी जगह सड़कों पर निकलता, सलामियां लेता। कैसा आश्चर्यजनक है! सलामियां लेने का मजा है, लेकिन वह भी दूसरे आदमी से लिवानी पड़ेगी, क्योंकि उसे मैदान में जाने का, खुले में जाने का खतरा है। गोली मारी जा सकती है, बम फेंका जा सकता है।

तो इस दुनिया में जो व्यक्ति जितनी इस भांति की शक्ति इकट्ठी करता है, उतना ही भीतर निर्बल होता है। उतनी ही भीतर निर्बलता पकड़ने लगती है, इतनी ही सुरक्षा की व्यवस्था करनी होती है। जितनी शक्ति इकट्ठी होती है उतनी सुरक्षा की व्यवस्था करनी होती है। फिर भी हमें ख्याल नहीं आता कि यह शक्ति निश्चित ही झूठी होगी, जिसमें सुरक्षा की व्यवस्था और बढ़ जाती है। अगर शक्ति वास्तविक हो तो सुरक्षा की व्यवस्था टूट जानी चाहिए--अगर शक्ति वास्तविक हो। अगर शक्ति झूठी है तो सुरक्षा की व्यवस्था करनी होगी। अगर धन वास्तविक हो तो सुरक्षा की व्यवस्था करनी होगी। अगर धन वास्तविक हो तो सुरक्षा का भय मिट जाना चाहिए। लेकिन धन वास्तविक न हो तो धन के पहरेदार रखने होते हैं। और धीरे-धीरे, वह जिसे हम धनी कहते हैं, खुद भी धन का एक पहरेदार हो जाता है, और कुछ भी नहीं। वह खुद भी अपने धन पर एक पहरा देने लगता है। वह खुद भी एक नौकर हो जाता है और धन की रक्षा करने लगता है। धन खोजा था इसलिए कि मेरी सुरक्षा होगी। आखिर में हम पाते हैं कि वह आदमी खुद भी धन की सुरक्षा कर रहा है। शक्ति खोजते हैं इसलिए कि भीतर इनसिक्योरिटी मिट जाएगी, हीनता मिट जाएगी, कमजोरी मिट जाएगी। लेकिन आखिर हम पाते हैं कि वह आदमी और भी कमजोर हो गया, और भी कंपा हुआ हो गया।

तैमूरलंग रात को सो नहीं पाता था। उसने हजारों लोगों की हत्याएं करवाई, लेकिन रात को सो नहीं सकता था। प्रतिक्षण उसे डर था कि कब कोई मेरी जान न ले ले। चंगीज खां जब भारत से बाहर आ गया, जब वह दिल्ली आया तो उसने दस हजार बच्चों के सिर भालों पर ठुकवा दिए ताकि दिल्ली जान ले कि कोई आया। बहुत लोग आए होंगे लेकिन चंगीज कभी नहीं आया। दस हजार बच्चों कि सिर, छोटे-छोटे बच्चों के सिर कटवा के भालों पर लगवा कर उसने जुलूस निकलाया, उसके पीछे चंगेज आया। लेकिन वह भी रात को सो नहीं पाता था। उसे भी अपने सिर के काटे जाने का भय पूरे वक्त सताए हुए था।

एक पागल आदमी अभी एक अस्पताल में भरती हुआ है। वह बचपन से ही पागल रहा होगा। जब भी उससे पूछा गया, वह क्या होना चाहता है? उसने कहाः मैं कब्र खोदना चाहता हूं। लोगों ने पूछाः कब्र खोदने वाला होनाय यह आकांक्षा बड़ी अजीब है। फिर धीरे-धीरे वह आदमी पागल हो गया और अब वह अपना कारण बताता है। वह कहता है, मैं इसलिए कब्र खोदने वाला होना चाहता था ताकि मैं वह विश्वास पा सकूं कि मैं ही खुद तो कब्र खोदने वाला हूं, मेरी कब्र कौन खोदेगा? ये चंगीज और हिटलर और स्टैलिन और मुसोलिनी, ये लोगों की हत्या करने वाले लोग हैं। ये हत्याएं इस कारण करना चाहते हैं ताकि इन्हें यह विश्वास हो जाए कि मैं तो लाखों लोगों को मारने वाला आदमी हूं, मुझे कौन मारेगा? अपनी मृत्यु का भय आदमी को दूसरे को मारने के लिए प्रेरित करता है ताकि यह विश्वास आ जाए कि मैं, जिसने कि करोड़ लोग मार डाले, मुझे कौन मार सकेगा?

मृत्यु का भय है, कमजोरी है, हीनता है, वह मनुष्य को दौड़ाती है। और इस दौड़ में एक छाया का जीवन शुरू होता है। क्योंकि बीमारी कुछ और होती है और उपचार हम कुछ और खोजते हैं। दरिद्रता भीतर है, धन बाहर खोजते हैं। हीनता भीतर है, गौरव बाहर खोजते हैं। अंधकार भीतर है, रोशनी बाहर जलाते हैं। तो सारे उपचार बीमारी को दूर नहीं कर पातेय वरन समय बीतता जाता है और बीमारी गहरी होती चली जाती है। यह बीमारी

मनुष्य को पूरा पकड़ ले तो उस जीवन को मैं छाया का जीवन कह रहा हूं। यह महत्वाकांक्षा की दौड़, यह एंबीशन मनुष्य को पूरा पकड़ ले कि वह धन इकट्ठा करें, मकान बनाए, राज्य खड़े करे, यश कमाए। धन-समृद्धि, वैभव इनको संगृहीत करे। और अगर सारा जीवन इस दौड़ में व्यतीत हो जाए तो इस तरह के जीवन को मैं छाया का जीवन कह रहा हूं। यह मनुष्य, जो वास्तविक सत्ता है, जो वास्तविक शक्ति है, जो वास्तविक संपत्ति है, जो वास्तविक संपदा है उसे जानने से वंचित रह जाएगा। जो वास्तविक गौरव है, जो वास्तविक गरिमा है, उसे जानने से वंचित रहेगा, लेकिन आखिर में पाएगा कि काम तो बहुत हुआ, लेकिन पहुंचना कहीं भी नहीं हो गया। यह शैडो, यह छाया हम सबको पकड़े हुए है। आखिर में हम पाएंगे, जब सूरज डूबने लगेगा और जीवन की संध्या आ जाएगी और अंधकार गिरने लगेगा तो हम पाएंगे, छाया ने तो साथ छोड़ दिया, हम अकेले बच रहे हैं।

जब तक जीवन का प्रकाश है तब तक उस प्रकाश में छाया बनती है। कोई बड़ा बनता है, कोई छोटा बनता है, कोई धनी होता है, कोई दरिद्र होता है, कोई बहुत आदर पाता है, कोई अनादर पाता है। लेकिन जब जीवन का प्रकाश सिकुड़ जाएगा और जीवन का सूर्य डूबने लगता है और मृत्यु का अंधकार करीब आने लगता है--तब छाया विलीन हो जाती है। छोटे और बड़े बराबर हो जाते हैं, दरिद्र और समृद्ध समान हो जाते हैं, मित्र और शत्रु सब खो जाते हैं, क्योंकि अंधकार में कोई छाया नहीं रह जाती है, अकेले हम रह जाते हैं।

मृत्यु छाया छीन लेती है। और मनुष्य का जो वास्तविक है, वही शेष रह जाता है। इससे पहले कि मनुष्य की छायाएं छीन ले, जो व्यक्ति अपने छाया के जीवन को समझ लेता है और क्रमशः आत्मा के जीवन को जाग्रत करने में संलग्न हो जाता है और वास्तविक संपदा की खोज में उसके कदम चल पड़ते हैं, वह जीवन के अर्थ को, आनंद को तो उपलब्ध होता ही है, वह जीवन के सत्य को और जीवन के सौंदर्य को जान पाता है। बहुत-बहुत संभावनाएं हैं आनंद की, बहुत संभावनाएं हैं गरिमा के अनुभव की, बहुत संभावनाएं हैं सत्य को, सौंदर्य को उपलब्ध कर लेने की, कृतार्थ और धन्य हो जाने की बहुत संभावनाएं हैं। छोटे से व्यक्ति में बहुत शक्ति है, छोटे से अणु में बहुत शक्ति है, छोटे से मनुष्य में भी बहुत शक्ति है। इस बहुत शक्ति को जाना जा सकता है। इस बहुत आनंद का द्वार खोला जा सकता है। इस बहुत संपदा के जगत में प्रवेश किया जा सकता है। उसके हम अधिकारी हो सकते हैं जिसे धर्मों ने आत्मा कहा, या परमात्मा, या क्राइस्ट ने जिसे किंग्डम ऑफ गॉड कहा। वह जो प्रभु का राज्य है, वह खोजा जा सकता है। बहुत दूर भी नहीं है, लेकिन जो छाया के पीछे दौड़ता हो, उसके लिए बहुत दूर हो जाता है। जो छाया के पीछे ही दौड़ता रहा हो उससे बहुत दूर हो जाता है।

यह दृष्टि में हमें आ जाए कि क्या छाया का जगत है तो हम आत्मा के जगत में प्रवेश पाने के अधिकारी हो सकते हैं। सर्वप्रथम यही जानना जरूरी है कि कौन-कौन सी चीजें केवल छाया है, केवल सपना हैं।

मैंने सुना, किसी आदिवासी समाज में अगर दो व्यक्ति एक-दूसरे की हत्या करते हुए मर जाए तो उन्हें एक ही कब्र में सोना पड़ता है। एक ही कब्र में कम लोग सोते हैं। एक-एक आदमी के लिए कब्र हम देते हैं। लेकिन उस समाज में वैसा नियम है। दो व्यक्ति लड़ रहे थे, छोटी सी जमीन का टुकड़ा था, उस पर लड़ाई थी। किसकी है वह जमीन, इस पर लड़ाई थी। और सारी लड़ाई इसी की है कि किसकी है जमीन। चाहे लोगों की हो, चाहे राष्ट्रों की हो, चाहे धर्मों की हो, चाहे समाजों की हो--लड़ाई इसकी है कि जमीन किसकी है। दोनों लड़े। जमीन का पता भी नहीं चला कि कौन उसका मालिक था, कौन उसका मालिक नहीं था। दोनों लड़े। दोनों की छातियों में एक-दूसरे की तलवार घुस गई। दोनों मर गए। जमीन को पता भी नहीं चला कि कौन लड़ा, कौन मरा। जिस जमीन के लिए वे लड़े थे वही जमीन उनकी कब्र बन गई। उन दोनों को एक ही साथ एक ही कब्र में लिटा दिया। जो जीवन में शत्रु थे, पड़ोस में नहीं रह सकते थे, मृत्यु में उन्हें साथ-साथ सोना पड़ा, पड़ोसी बनना पड़ा और जमीन को कोई पात नहीं चला। जिस जमीन को कोई पता नहीं चलता कि कौन मालिक है, उस जमीन के बहुत मालिक रह चुके हैं और समाप्त हो चुके हैं। उस जमीन के बहुत मालिक रहेंगे और समाप्त हो जाएंगे। लेकिन फिर भी मालिक होने का हमें ख्याल है। मालिक होने का ख्याल जरूर सपना होगा।

एक राजा संन्यासी होकर अपने राज्य को छोड़ कर भाग गया था। दूर जंगल में जाकर ध्यान करने बैठा था। ध्यान से आंख खुली तो उसे दिखाई पड़ा, सामने बहुत चमकदार पत्थर पड़ा है। बहुत कीमती होगा। न मालूम किसका गिर गया। राहगीर का गिर गया होगा। एक क्षण तो उसे ख्याल आया कि उठा लूं, लेकिन फिर उसने सोचा कि मन मेरा कैसा है। सारे राज्य को छोड़ कर आया। वहां बहुत बहुमूल्य पत्थर मेरे पास भी थे, फिर भी मेरा मन उठाने को होता है! वह यह सोचता ही था कि दोनों और से दो सवार आए। दोनों राजपूत थे, नंगी तलवारें उनके साथ लटकी थीं। दोनों की दृष्टि उस हीरे पर पड़ी। दोनों ने तलवारें टेक दीं और कहा कि पहले दृष्टि मेरी पड़ी, इसलिए मालिक मैं हो गया। दोनों ने यह कहा कि दृष्टि पहले मेरी पड़ी, इसलिए मालिक मैं हो गया। हीरा नीचे

पड़ा था, वह साधु दूर बैठा देख रहा था। निपटारा कठिन था। और जब निपटारा कठिन हो तो तलवार के सिवाय और निपटारा नहीं रह जाता और आज तक दुनिया में हमेशा हम ऐसे ही निपटारा करते रहे। जीवन का झगड़ा हम मौत से हल करना चाहते हैं। जब भी जीवन में कोई झगड़ा खड़ा होता है, हम मौत को बीच में ले आते हैं। कि झगड़ा हल हो जाए। मौत झगड़े को हल नहीं करती, झगड़ा करने वालों को समाप्त कर देती है।

तलवारें उठ गई, वे लड़े। तलवारें घुस गईं, वे दोनों गिर गए। हीरा जहां पड़ा था, वहीं पड़ा रहा। थोड़ा सोचें, इनकी मालकियत का ख्याल सपना था या सत्य था? तो सत्य तो वह है कि ये थे और अब नहीं है। हीरा था, हीरा अब भी है। सत्य तो यह है कि हीरा किसी का भी नहीं था और किसी का भी नहीं है। और जिनमें यह ख्याल पैदा हुआ कि हमारा है, मालिक होने का, पजेस करने का जिसमें ख्याल पैदा हुआ वह ख्याल सपना था। वह ख्याल भी मिट जाता है, ख्याल रखने वाले लोग भी मिट जाते हैं। हीरे जहां हैं, वहीं पड़े रह जाते हैं।

कहां-कहां छाया की जीवन हमें पकड़ता है? सोचना जरूरी है कि कहां-कहां मैं सपने देखता हूं और सपनों का अनुगमन करता हूं। जो व्यक्ति सपनों के पीछे चलेगा वह सत्य को कैसे उपलब्ध होगा? जो स्वप्न का अनुगामी हो जाएगा, सत्य तक कैसे पहुंच सकता है? तो थोड़ा अपने मन को परखें और पहचानें। दिखाई पड़ना कठिन नहीं होता है कि हम कहां-कहां सपने देखते हैं। हर आदमी सपना देख रहा है। बहुत से सपने हैं, बहुत बड़े बड़े सपने हैं। और उन सारे सपनों के पीछे हम दौड़ते हैं। पहले मन में दौड़ते हैं, फिर बाहर के जगत में दौड़ते हैं। फिर सारे लोग सपने देख रहे हैं। एक-दूसरे के सपने कटते हैं, एक-दूसरे के सपने एक-दूसरे के विरोध में आते हैं तो फिर तलवारें निकल आती हैंय तो फिर संघर्ष शुरू हो जाता है, हिंसा शुरू हो जाती है। करोड़-करोड़ लोग हैं, उन सबके सपने हैं। और सबके सपने मालिक होने के हैं, सबके सपने संपत्तिशाली होने के हैं, सबके सपने यश पाने के हैं, सबके सपने प्रथम होने के हैं। तो सारी दुनिया दौड़ती है इन सपनों में। ये सपने लड़ते हैं, टकराते हैं। सभी प्रथम होना चाहते हैं संघर्ष और हिंसा, दुख पैदा होता है।

जब तक मनुष्य सपनों को न समझे, और सपनों को समझकर उनका अनुगमन क्षीण न हो जाए, तब तक मनुष्य के जीवन से हिंसा, दुख और संघर्ष नष्ट नहीं हो सकतेय तब तक युद्ध नष्ट नहीं हो सकते। कोई लाख उपाय करे और शांति की बातें करे, लेकिन जब तक लोग सपनों के पीछे पागल रहेंगे, तब तक शांति असंभव है। जब आप अपने पड़ोसी से आगे निकलना चाहते हैं, तभी आप वाले युद्ध की तैयारी शुरू कर रहे हैं। जब एक छोटा बच्चा, अपने, बगल के बच्चे से आगे होना चाहता है, तभी संघर्ष और वैमनस्य की नींव रख दी गई। यह जो प्रतिस्पर्धा और प्रतियोगिता और महत्वाकांक्षा है और सपनों को सिद्ध करने की पागल दौड़ है, यह हमें तो मिटा देगी। और जिन चीजों पर हम मालिक होना चाहते थे वह वहीं पड़ी रह जाएंगी। विचारणीय यह है कि हम मिट जाएंगे सपनों के पीछे दौड़ते-दौड़ते।

और अगर यह दिखाई पड़ना शुरू हो जाए, जैसा क्राइस्ट ने कहा--क्राइस्ट का एक बहुत अदभुत वचन है। वचन है कि धन्य हैं वे लोग जो अंतिम होने को राजी हैं। क्राइस्ट का वचन मैं फिर से दोहराऊंः 'धन्य है वे लोग, जो अंतिम होने को राजी हैं।' अजीब लगेगा। क्योंकि हम तो जानते हैं, धन्य हैं वे लोग जो प्रथम हो जाते हैं। और क्राइस्ट कहते हैं, धन्य हैं वे लोग, जो अंतिम होने को राजी हैं। निश्चित ही वे लोग धन्य हैं जो अंतिम होने को राजी हैं। ये वे ही लोग होंगे, जिनके प्रथम होने का सपना टूट गया और जिन्होंने प्रथम होने की महत्वाकांक्षा की दौड़ छोड़ दी। और जिन्हें यह दिखाई पड़ा कि हम इस दौड़ में कुछ भी नहीं हैं। इस दौड़ में स्वयं के नष्ट हो जाने के सिवाय और कुछ भी नहीं हैं। जिन्हें यह दिखाई पड़ा, वे अंतिम होने को राजी हो जाएंगे। अंतिम खड़े रह जाएंगे। लाओत्सु ने एक अदभुत वचन ऐसा ही कहा है। लाओत्सु ने कहा है धन्य हैं वे लोग, जो हार जाते हैं। धन्य हैं वे लोग, जो हार जाते हैं, क्योंकि उन्हें फिर कोई भी जीत न सकेगा। लेकिन हम तो सारे लोग वे हैं, जो उन्हें धन्य मानते हैं, जो जीत जाते हैं। लेकिन स्मरण रखें, जो जीत जाते हैं, उन्हें हार जाना पड़ता है। हारें चाहे न वे, दिखाई चाहें वे न पड़ें, लेकिन मौत बता देती है कि उनकी सब जीत मिट्टी हो गई और सब हार भी मिट्टी हो गई। जैसे कोई लाश के पत्तों का घर बनाए, हवा का एक झोंका आए और सब मिट जाए।

क्या हमारे सब बनाए हुए घर हवा के झोंकों में इसी भांति नहीं मिट जाते हैं? जैसे कोई कागज की नाव चलाए, समुद्र में तैराए और वह डूब जाए। क्या हम सबकी सपनों की नावें ऐसे ही नहीं डूब जाती है? लेकिन फिर भी कुछ है कि हम कागज की नावें बनाते हैं और तैराते हैं। और कागज की नाव अगर किसी की आगे निकल जाए और अंडा आगे फहराए तो हम बहुत खुश होते हैं और शोर बचाते हैं। लेकिन स्मरण रखें, कागज की नाच चाहे आगे निकल जाए, चाहे पीछे रह जाए, कागज की नाव डूबने को है--आगे जो है वह भी, पीछे जो है वह भी। और चाहे

ताशों का घर बड़ा हो जाए, साठ मंजिल का हो, कि सत्तर मंजिल का हो, या चाहे छोटा झोपड़ा हो, लेकिन लाश का घर गिर जाने को है।

तो एक तो वे लोग हैं जो इस दौड़ में होते हैं कि मेरे लाश का घर बड़ा हो। एक तो वे लोग हैं जो इस दौड़ में होते हैं कि मेरी कागज की नाव आगे निकल जाए। एक वे लोग भी हैं जो यह सोचते हैं कि कागज की नाव चाहे आगे जाए, चाहे पीछे, कागज की नाव डुब जाने को है। फिर उनकी आगे-पीछे की आकांक्षा विलीन हो जाती है। फिर उनके ताश का भवन बनाने का ख्याल विलीन हो जाता है। और जब यह बुद्धि, जब यह आकांक्षा और यह अभीप्सा गिर जाती है तो एक नये जीवन को बनाने का उनम ख्याल पैदा होता है जो कागज का नहीं है। और एक नये भवन के निर्माण में वे लोग है जो ताशों का नहीं है और एक ऐसी नाव को वे खोजते हैं जो डूबती नहीं है। वह नाव ही धर्म की नाव है। वह नाव ही साधना की, सत्य की खोज की है। और तब वे लोग कहीं पहुंचते हैं, कुछ पार कर पाते हैं, कुछ अनुभव कर पाते हैं। कोई संपदा, कोई संपत्ति, कोई शांति, कोई सौंदर्य उन्हें उपलब्ध हो पाता है। न केवल स्वयं के धन्य हो जाते हैं, बल्कि उनके जीवन से और लोगों को भी धन्यता की सुवास उपलब्ध होती है। उनके जीवन का संगीत, और लोगों की हृदय की वीणा को भी जगाता है। उनका जीवन और लोगों के जीवन में भी उस भांति की हूक पैदा करता है, उस भांति का भाव, उस भांति की प्यास पैदा करता है कि वे लोग भी सत्य के सागर की तलाश में निकले हैं।

दो ही तरह के लोग हैं--एक तो नावों को आगे निकालने वाले लोग, और एक वे जो नावों के डूबने या पार करने के सत्य पर विचार करते हैं। ये थोड़ी-सी बातें प्रारंभिक रूप से आज मैं आपसे कह रहा हूं। इन पर आगे दो दिनों में हम गहरे से विचार कर सकेंगे। आज तो इतना ही ख्याल चाहता हूं आपमें आए कि आप अपने भीतर छाया के जीवन को अनुभव कर सकें, देख सकें कि मेरे जीवन में क्या-क्या छाया का जीवन है। क्या-क्या है, जो सपना है? जरूरी है कि सपना पहले दिखाई पड़ जाए तो फिर सत्य की ओर आंख उठनी शुरू होती है। और यह भी स्मरण रखें कि अगर सपना दिखाई पड़ने लगे कि सपना है तो सपने के प्राण निकलने शुरू हो जाते हैं। कोई आदमी जानते हुए कि सपना है, सपना नहीं देख सकता। जब तक हम जानते नहीं तभी तक सपने की पकड़ है। अगर मुझे दिखाई पड़ जाए कि यह दौड़ बिल्कुल सपने की दौड़ है, मेरे पैर रुक जाएंगे। मैं पाऊंगा कि मैं खड़ा हो गया हूं। अगर मुझे दिखाई पड़ जाए कि नाव कागज की है, फिर उस पर बैठना, उस पर सवारी करना मुश्किल हो जाएगा। अगर मुझे दिखाई पड़ जाए कि कागज के पत्तों का भवन है जो बना रहा हूं, तो ठहर जाएंगे।

सपना सपना दिखाई पड़ने लगे, छाया छाया दिखाई पड़ने लगे, असार असार दिखाई पड़ने लगे तो चित्त की गति उन दिशाओं में जानी सहज ही बंद हो जाती है। क्योंकि चित्त सहज ही उस तरफ जाता है जहां सत्य है। जहां से सपना दिखाई पड़ने लगे, वहां से चित्त वापस लौटने लगता है। चित्त उसी तरफ आता है जहां शाश्वत है। और अगर दिखाई पड़ने लगे कि जो है वह अभी गिर जाएगा, यह हवा का झोंका गिरा देगा, चित्त उस तरफ से वापस लौटने लगता है। जब तक हम सपने को सत्य मानते हैं, तभी तक सपने की हमारे ऊपर पकड़ है। जब तक हम सपने को सत्य मानते हैं, तभी तक अपने की हम पर पकड़ है। जब तक असार हमें सार दिखाई पड़ता है, तभी तक। अन्यथा छोड़ देने में, फेंक देने में क्षण की भी देरी नहीं होती।

एक छोटी सी कहानी, और आज की चर्चा को मैं पूरा करूं।

एक बहुत बड़ा जौहरी मर गया। उसकी पत्नी ने बहुत दिनों तक कुछ पत्थरों को कीमती मान कर, समझ कर तिजोरी में छिपा रखा था। जौहरी के मर जाने पर भी वह निश्चित थी अपनी संपत्ति के लिए। बहुत संपत्ति उसके पास थी। लड़का था एक, बड़ा होगा। बहुत संपत्ति उसके पास है। कोई भय का कारण नहीं है। लड़का बड़ा हुआ और एक दिन उसने कहा कि जाओ और किसी जौहरी को दिखाओ। जो पत्थर हमारे पास हैं, बहुमूल्य हैं। थोड़ा-थोड़ा उनमें से बेचें, तुम्हारी शिक्षा और तुम्हारे जीवन के लिए व्यवस्था हो। वह अपने पति के पुराने परिचित जौहरी के पास गया अपनी पोटली लेकर। बहुत सम्हाल कर, जाकर उसने पोटली खोली और कहा कि इनमें से कुछ बेचना शुरू करें और हमें सुविधा हो। उस जौहरी ने देखा, छुआ भी नहीं, कहा पोटली बंद कर लो, अभी बाजार भाव अच्छे नहीं हैं। जब बाजार-भाव अच्छे होंगे तो जरूर बेच देंगे। और एक काम करो, तुम्हारे पति का मेरे ऊपर बहुत ऋण है। उनसे ही मैंने बहुत कुछ सीखा था। तो तुम घंटे को दुकान पर आने लगो और जो कुछ मैं जानता हूं इस जौहरी की कला में तुम सीख लो। उस लड़के ने दूसरे दिन से उस दुकान पर जाना शुरू कर दिया। एक वर्ष बीतने पर अचानक सुबह ही सुबह वह जौहरी के घर आया और उसने कहा कि अब बाजार के भाव अच्छे हैं, तुम अपनी तिजोरी खोलो, अपने पत्थर निकाल लाओ। वह मां और बेटे बड़ी खुशी से तिजोरी खोले, पोटली खोली। उस लड़के ने पोटली के पत्थर देखे, पोटली बांधी और बाहर खोली। उस लड़के ने पोटली के पत्थर देखे, पोटली बांधी और बाहर जाकर कचरे-घर में फेंक आया। मां एकदम पागल हो गई। उसने कहाः तुमने यह क्या किया? उस लड़के ने कहाः वह सब नकली कांच के टुकड़े हैं। लेकिन जब तक वह असली पत्थर थे तो तिजोरी में थे। जब तक सपना सत्य

मालूम होता था तो उस पर ताला था, उसकी सुरक्षा थी और जब ये कांच के टुकड़े हो गए, सत्य न रहे तो उनका निवास घूरे पर, कचरे पर हो गया। लेकिन अगर वर्ष भर पहले उस जौहरी ने कहा होता कि कांच के टुकड़े हैं तो विश्वास न आता। विश्वास कैसे आता? यही ख्याल उठता कि शायद छीन-झपट लेने का इरादा है। कांच के टुकड़े बता कर सस्ते में खरीद ने का विचार है। शायद धोखा है कोई। इसलिए उस जौहरी ने नहीं कहा कि कांच के टुकड़े हैं। कहा कि वर्ष भर आओ, सीखो, समझो।

मैं भी आपसे नहीं कहना चाहता कि जो आपका जीवन है, वह मेरे कहने से आप मान लें कि छाया है और माया है। मैं भी आपसे कहूंगा कि कुछ सीखें, जौहरी की कला सीखें, कुछ परखना सीखें तो पहचानना कठिन नहीं होगा कि कौन से कांच के टुकड़े है और कौन से हीरे हैं। और जिस दिन आपको दिखाई पड़ना शुरू हो जाए कि कांच के टुकड़े क्या हैं, उस दिन तिजोरियों में उनको सम्हाल कर रखने का न कोई सवाल है, न प्रश्न है। उस दिन उनका आवास वहीं घूरे पर, कचरे के ढेर पर होगा। हमारे जीवन में बहुत कुछ है जो कचरे के ढेर पर होने लायक है, लेकिन उसे हम तिजोरी में सम्हाल कर रखे हैं, क्योंकि सपना सत्य मालूम होता है, कांच के टुकड़ों में हीरे होने का भ्रम है। मैं नहीं कहता। बुद्ध कहते हों, महावीर कहते हों, रामकृष्ण कहते हों, किसी के कहने को कभी मत मानना क्योंकि जौहरी धोखा दे सकते हैं। और आपके असली हीरे हो, और कोई कांच के टुकड़े बना कर, बात करफिंकवा दे, इस भ्रम में कभी नहीं पड़ना।

और इसलिए मैं कहता हूं कि नहीं पड़ना तो आप हंसते हैं, हालांकि आप सब होशियार हैं और कभी नहीं पड़ते हैं। किसी के धोखे में आप पड़ते नहीं। राम के, कृष्ण के, बुद्ध के, महावीर के धोखे में अगर आप पड़ गए होते तो इतनी तिजोरियां न होती, इतने ताले न होते, इतने उन पर पहरे न होते। कभी पड़े भी नहीं धोखे में, कोई कभी पड़ता भी नहीं। कभी कोई भूल से न पड़ जाए, इसलिए मैं प्रार्थना भी करता हूं। लेकिन कुछ परखना सीखें। सभी पत्थर हीरे नहीं हैं, बहुत कुछ कांच के टुकड़े हैं। सारा ही जीवन सत्य नहीं हैं, बहुत कुछ उसमें झूठा है और माया है। इसे पहचानें, इसे देखें। इसे देखने का उपाय है। उस उपाय की हम चर्चा करेंगे। खुद देखें, और अब आपका दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा तो पाएंगे कि जीवन में एक क्रांति शुरू हो गई है। एक ऐसी क्रांति जिसके लिए कहीं घर छोड़ कर भागना नहीं होता, वरन जहां आप हैं, वहीं दृष्टि खुलनी शुरू हो जाती है। असार असार दिखाई पड़ने लगता है तो असार छूटना शुरू? हो जाता है और सार्थक की ओर दृष्टि उठनी प्रारंभ हो जाती है।

जीवन में इससे बड़ी और कोई घटना नहीं है कि हम छाया को और आत्मा को भिन्न करने वाली रेखा को देखने में समर्थ हो जाएं। छाया को और आत्मा को भिन्न करने वाली रेखा को देखने में जो समर्थ हो जाता है, उसके जीवन में भाग्य के अभिनव द्वारा खुल जाते हैं। उस रेखा को पहचानने के लिए प्राथमिक कुछ थोड़ी सी बातें कही हैं। दो दिन में हम उनकी चर्चा करेंगे और इसमें जो भी पूछने जैसा आपको लगे उसकी हम सांझ को चर्चा करेंगे।

मेरी बातों को इतने प्रेम से और शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। परमात्मा करे, छाया छूटे और आत्मा उपलब्ध हो, ऐसी ही मेरी प्रार्थना है।

चौथा प्रवचन

सत्य का बोध

सत्य के संबंध में कल थोड़ी सी बातें मैंने विचार कीं। मैंने आपको कहा, जिसे हम जीवन समझते हैं, जीवन मानते हैं, वह वास्तविक न होकर छाया का जीवन है। और जो व्यक्ति छाया का पीछा करेगा, उसकी उपलब्धि क्या होगी? पहली बात यह है कि छाया का हम कितना भी पीछा करें उसे कभी पकड़ नहीं सकेंगे। असंभव है कि हम छाया को पकड़ लें। और छाया को पकड़ भी लें तो भी हमारी मुट्ठी में क्या होगा, हमारे पास क्या होगा?

यह जो छाया का जीवन है, यह जो शैडो एक्झिस्टेंस है, इसके प्रति यदि हम जाग जाए, और यह हमारे बोध में आ सके कि क्या असार है और क्या सार है, वास्तविक है और क्या काल्पनिक है, क्या स्वप्न है और क्या सत्य है तो जीवन में एक नई दिशा का उदघाटन प्रारंभ होता है। उसके संबंध में थोड़ा सा हमने विचार किया।

आज मैं इस संबंध में आपसे बात करना चाहूंगा, यह जो छाया का जीवन है, यह जो स्वप्न का जीवन है, यह जो अवास्तविक, यह जो असार है, यह किन आधारों पर खड़ा है? यह मन के किन मार्गों पर, मन की किन वृत्तियों पर खड़ा है? क्योंकि चाहे हम स्वप्न देखते हों, और चाहे जाग गए हों, दोनों स्थितियों में हमारा मन रचना कर रहा है, कुछ निर्माण कर रहा है। हमारे मन की रचना पर ही हमारी जीवन की वास्तविकता या काल्पनिकता निर्भर करती है। हमारा मन ही बहुत गहरे में हमारा संसार है, हमारा मन ही हमारा जगत है, मन ही हमारा होना है। इस मन को जानना, पहचानना जरूर है। तो ही हम इस छाया के जीवन को समझने में समर्थ हो सकेंगे। कुछ थोड़े से बिंदु मैंने आपसे कहे, आज उनके पूरे आधार पर आपसे विचार करना चाहूंगा।

कौन सी बात है जो हमें स्वप्न में ले जाती है? कौन सी बात है जो हमें असार की ओर प्रेरित करती है? निश्चित ही, बहुत प्राथमिक रूप से एक छोटी सी बात है, जो इस सारे जाल के पीछे आधारभूत है और वह यह है कि जो हम हैं उससे अन्यथा, उससे भिन्न, उससे कुछ और हम होना चाहते हैं।

कल रात्रि मेरे पास कोई व्यक्ति आए और उन्होंने मुझसे कहा कि कोई मार्ग बताइए कि लोभ नष्ट हो जाए। मैं मन में सोचता रहा, क्या लोभ को नष्ट करने की कामना लोभ का ही प्रतीक नहीं है? क्या यह भी बहुत गहरे अर्थों में लोभ नहीं है? रोज कोई आता है जो कहता है, हम शांत होना चाहते हैं। और मैं सोचता हूं, क्या शांत होने-चाहते की यह जो वासना है, यही अशांति का कारण नहीं है? जब हम शांत होना चाहते हैं तो अशांति का प्रारंभ हो गया। जब हम अलोभ को पाना चाहते हैं तो लोभ का प्रारंभ हो गया। हम वस्तुतः जो हैं, उसे छोड़ कर कुछ और होना चाहते हैं। कोई वासना, कोई कामना प्रारंभ हो गई। यात्रा शुरू हो गई। छाया की यात्रा शुरू हो गई।

दुखी व्यक्ति सुखी होना चाहता है। आज दुखी है तो कल सुखी होना चाहता है। कल भी न हो सके तो परलोक में सुखी होना चाहता है। इस जन्म में न हो सके तो अगले जन्म में सुखी होना चाहता है। हम जो हैं, उससे हम तृप्त नहीं हैं। हम जो हैं, उससे हमारी स्वीकृति और सहमति नहीं है। हम कुछ और होना चाहते हैं। छोटे वृक्ष बड़े होना चाहते हैं, छोटी कुर्सियों पर बैठे लोग बड़ी कुर्सियों पर बैठना चाहते हैं। दरिद्र धनी होना चाहते है। कुछ हम होना चाहते हैं। एक बात निश्चित है, जो हम हैं उससे भिन्न हमारे भीतर होने की कामना है। सारे छाया का जीवन इस मूल कामना पर खड़ा होता है, मूल तृष्णा पर कि हम कुछ और होना चाहते हैं। और कुछ होना चाहते हैं, यह स्वाभाविक भी मालूम होता है, क्योंकि जैसा हम अपने को पाते हैं, जैसा हम अपने को अनुभव करते हैं, उसमें न तो कोई आनंद प्रतीत होता है, न कोई शांति प्रतीत होती है, न कोई कृतार्थता और धन्यता का अनुभव होता है। जैसे हम हैं, वह पीड़ादायक है, इसलिए कुछ और हम होना चाहते हैं, कुछ ऐसे होना चाहते हैं, जहां पीड़ा न हो, दुख न हो, चिंता न हो। किसी स्वर्ग में, किसी प्रभु के राज्य में हम जाना चाहते हैं, किसी मोक्ष में। फिर चाहे धन इकट्ठा करके हम जाना चाहते हों या पुण्य इकट्ठा करके जाना चाहते हो, बड़े भवन चाहते हों इस पृथ्वी पर, या व्यवस्था करना चाहते हैं स्वर्ग में भवन की मृत्यु के बाद, लेकिन हमारी कामना जो हम हैं, उससे दूर हमें ले जाना चाहते है। और जो हम हैं वह पीड़ा देने वाला है, जो हम हैं वह चिंता पैदा करने वाला है, जो हम हैं वह एक एंग्जायटी है, एक चिंता है, एक संताप है। स्वाभाविक है कि जो हम हैं, अगर यह संताप है, चिंता है, दुख है, पीड़ा है तो हम कुछ और होना चाहेंगे। इससे ही कामना पैदा होती है, वासना पैदा होती है।

लेकिन क्या हमने ठीक से जाना है कि जो हम हैं, जो हमारा होना है, चिंता है, दुख है--क्या अपने पूरे व्यक्तित्व की गहरी से गहरी पर्तों में प्रवेश किया है? क्या हम अपनी सत्ता से पूरी तरह परिचित हुए हैं और यह

निर्णय लिया है, जो हूं वह दुख है? नहीं, हमने बहुत ऊपर से ही, बहुत परिधि पर जैसे कोई किसी भवन की बाहर की दीवालें देख कर लौट आए, ऐसा कि हम में अपने व्यक्तित्व के बाहर-बाहर की पर्तों को देख कर यह निर्णय ले लिए हैं। कि बहुत चिंता है, बहुत दुख है, बहुत पीड़ा है। हमने अपने व्यक्तित्व के केंद्र को, हमने अपनी सत्ता के केंद्र को भी जाना नहीं है। बाहर से ही हम लौट पड़े हैं और हम खोज में लग गए हैं अपने को बदलने की। बिना अपनी परिपूर्णता को जाने अपने को बदलने की चेष्टा में संलग्न हो गए हैं।

मैं निवेदन करना चाहूंगा, अपने को पूरा जान लेना बहुत दूसरे अनुभवों पर ले जाता है। अपने स्वयं की सत्ता की समग्रता को जान लेना, बदलाहट की तृष्णा की और परिवर्तन की जो एक आकांक्षा है, उससे मुक्ति ले आता है। जो व्यक्ति अपनी सत्ता की, समग्रता की झलक भी पा लेगा उसे स्वयं को बदलने का, किसी और स्वर्ग को खोजने का, कहीं और पहुंचने का सारा भाव विलीन हो जाएगा। तब वह पाएगा, जो वह है वह पूर्ण है, समग्र है। जो वह है वहां शांति है। वहां आनंद है। जिस मोक्ष की खोज थी, वह वहां मौजूद है। सारी वासना स्वयं को न जानने के कारण पैदा होती है। अज्ञान ही, आत्म-ज्ञान ही वासना का मूल है। फिर जब वह वासना दुख देती है, हम दौड़ते हैं पाने को, और उपलब्ध भी कर लेते हैं। उपलब्ध करते ही पाया जाता है कि जो हमने पाया, वह व्यर्थ हो गया। वासना और आगे चली गई। जो हमने पाया, उसका जो सुख था वह केवल कामना में, आशा में और अपेक्षा में था, उपलब्धि में नहीं।

कवि बायरन हुआ। उसके जीवन में मुझे एक घटना बड़ी महत्वपूर्ण मालूम पड़ती है। बहुत मुश्किल से स्त्रियों को प्रेम करने के बाद वह विवाह करने को एक स्त्री से राजी हुआ। जिस संध्या उसका विवाह हुआ चर्च से अभी-अभी विवाही पत्नी का हाथ पकड़ कर वह सीढ़ियां उतर रहा है। अभी चर्च की घंटियां बज रही हैं, जो उसके विवाह की खुशी में बजीं। और मोमबत्तियां अभी बुझी नहीं हैं, जो कि विवाह के लिए जलाई गई हैं। अपनी पत्नी का हाथ हाथ में लिए है। कल तक पागल था उसे पाने को। चूक जाता तो जीवन भर दुखी होता, पीड़ित होता। आज उसका हाथ उसके हाथ में है, लेकिन उसकी आंख उस पर नहीं है। उसकी आंख सड़क पर जाती एक दूसरी स्त्री की तरफ है। उसे हाथ का सहारा देकर उसने गाड़ी में बिठाया और उसने कहाः कैसा आश्चर्य है! कल तक मेरी दृष्टि तुम पर थी और मैं तुम्हें पाने को पागल था और आज मेरी दृष्टि किसी और पर लग गई है और मेरा मन उसे पाने को पागल है। और जब कि तुम मुझे उपलब्ध हो गई हो, उपलब्ध होने के साथ ही व्यर्थ भी हो गई हो।

शायद ही किसी पति ने पत्नी से पहले ये शब्द कहे होंगे। लेकिन जो इस संबंध में सत्य है, हमारी और सारी उपलब्धियों के बाबत सत्य है। जैसे ही हम पा लेते हैं, जो पा लिया वह व्यर्थ हो जाता है। और पाने की आकांक्षा आगे बढ़ जाती है। यह होगा ही। यह होगा इसलिए कि पाने की कामना में, आशा में, संभावना में, अपेक्षा में सुख है। आशा है कि कुछ मिल जाएगा तो सब मिल जाएगा। लेकिन जैसे ही पाया जाता है, ज्ञात होता है कि हम ठीक वैसे ही दरिद्र, वैसे ही हीन हैं, जैसे पाने के पहले थे। इसलिए दुनिया की कोई संपत्ति, कोई पद, कोई यश, कोई गौरव तृप्ति नहीं देता। जैसे ही हम पहुंचते हैं, पाते हैं, व्यर्थ हो गया।

जैसे कोई क्षितिज की ओर बढ़ना चाहे, जहां आकाश जमीन को छूता हुआ मालूम पड़ता है, तो जितना आगे बढ़ता जाए, उतना ही क्षितिज आगे बढ़ जाता है। वैसे ही तृष्णा दुष्पूर है। जितने हम आगे बढ़ते जाए, पाया जाता है कि तृष्णा और आगे बढ़ गई। तृष्णा कभी पूरी नहीं होती हैय नहीं हो सकती है। नहीं हो सकता है इसलिए थक हम छाया के इंद्रधनुष का पीछा कर रहे हैं। इसलिए व्यक्ति कितना ही दौड़े, कितना ही दूसरों को दिखाई पड़े कि उसने कुछ पा लिया है, उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता कि मैंने क्या पा लिया है। जो पा लेता है, वह व्यर्थ हो जाता है और जो न पाया हुआ है वह उसकी आंखों को, उसकी कामना को पकड़े रहता है। अभाव रहता है, और जिसकी सत्ता निकट आ जाती है वह भूल जाता है। वह आंख से ओझल हो जाता है। जो हमारे निकट है, वह भूल जाता है और जो दूर है, वह हमारे मन को पकड़े रहता है। आकर्षण दूर का है। ढोल सुहावने दूर के हैं, निकट आते ही व्यर्थ हो जाते हैं।

तो ऐसे तृष्णा का या वासना का, इच्छा का जो भी फैलाव है वह अंत में निरंतर दौड़ कर और असफल होकर मनुष्य को ज्ञात होता है कि वही उसकी चिंता, वही उसका दुख, वही उसकी पीड़ा है। कोशिश करते हैं, पाते हैं, और फिर पाते हैं कि कुछ भी नहीं पाया। हर बार यही असफलता, मन डूबता चला जाता है और विषाद से भरता चला जाता है। इस विषाद में, इस चिंता में और जोर से पाने की कोशिश में लगते हैं, लेकिन इस बात को नहीं देख पाते कि पाने की यह कोशिश ही सारे दुख को और सारी पीड़ा को पैदा कर रही है। और इस पाने की दौड़ के पीछे जैसा मैंने आपको कहा, स्वयं को न जानने की स्थिति है। यदि हम जान सकें तो तृष्णा विलीन हो जाएगी, क्योंकि तब जो हम होंगे, जो हमारा वास्तविक होना है, जो हमारा ऑथेंटिक बीइंग है वह हमारी परम तृप्ति और परम शांति होगी।

छाया का जीवन यदि व्यर्थ दिखाई पड़े, यह दौड़ अगर व्यर्थ दिखाई पड़े तो कुछ क्रांति संभव हो सकती है। लेकिन अधिक लोगों को यह दिखाई नहीं पड़ता। जिन थोड़े से लोगों को इसकी थोड़ी सी अनुभूति शुरू होती है वे कुएं से बेचते हैं और खाई में गिर जाते हैं। वे इच्छा के विरोध में चलना शुरू कर देते हैं, तृष्णा के विरोध में चलना शुरू कर देते हैं। एक तो वे लोग हैं जो कुछ पाने के लिए दौड़ रहे हैं, फिर दूसरे वे लोग पैदा हो जाते हैं जो कुछ खोने के लिए, त्यागने के लिए, कुछ छोड़ने के लिए दौड़ने लगते हैं। ये दोनों ही तृष्णा के दो पहलू हैं। भोग और त्याग तृष्णा के ही दो अंग हैं। गृहस्थ और संन्यासी तृष्णा के ही दो सिक्के हैं। एक तरफ हम पाने को दौड़ते हैं। फिर ज्ञात होता है कि कुछ उपलब्ध नहीं होताय दुख पीड़ा, असफलता और विषाद, तो हम सोचते हैं, छोड़े। तब हम छोड़ने को दौड़ने लगते हैं। यह वासना की ही प्रतिध्वनि है। यह भी छाया का जीवन है। वासना छाया का जीवन है। जिसे हम कहते हैं, त्याग, जिसे हम कहते हैं विरक्ति, जिसे हम कहते हैं छोड़ना, वह भी वासना की ही प्रतिध्वनि है। और दोनों तरफ से वासना मन को पकड़े रहती है। एक आदमी धन इकट्ठा करने के लिए पागल है, फिर दूसरा आदमी धन छोड़ने के लिए पागल हो जाता है। वासना ने विपरीत और विकृत रूप ले लिया। वासना को हमने पीछे हटा दिया लेकिन वासना ने पीछे से हमें पकड़ लिया।

एक छोटी सी कहानी मैं पढ़ता था। किसी घर में रात को देर तक, वह जो गृहिणी है उसमें और जो गृहपति हैं, बहुत विवाद हुआ, बहुत झगड़ा हुआ। घर था मध्यवर्गीय और पत्नी एक बहुत महंगी साड़ी खरीद लाई थी। वह उनकी हैसियत के बाहर थी। पति उसे लौट कर सांझ को ही देख कर घबड़ा गया और उसने कहाः यह तुमने क्या किया? उस स्त्री ने कहाः मैंने भी अपने को बहुत समझाया, बट दि डेविल टेम्पटेड मी। लेकिन शैतान था कि वह मुझे उत्प्रेरित करने लगा कि खरीद लो। मैंने बहुत इनकार किया, लेकिन शैतान पीछे पड़ गया और कहने लगा, खरीद लो। तो पति ने कहाः तुमने क्यों न कहा शैतान से कि पीछे हट जा? जैसा कि क्राइस्ट ने शैतान से कहा था कि पीछे हट जाओ, साधु-संत कहते रहे हैं शैतान से कि पीछे हट जाओ। तुझे जोर से कहना था कि शैतान, पीछे हट जाओ। पत्नी ने कहाः यही तो मुसीबत हो गई। यही कह कर तो मैं मुश्किल में पड़ गई। मैंने शैतान से कहाः शैतान, पीछे हट। शैतान पीछे हट गया, लेकिन उसने पीछे से मेरे कंधे पर हाथ रखा और उसने कहाः प्रिय पीछे से तो साड़ी बहुत अच्छी लगती है। यही तो मुसीबत हो गई कि मैंने शैतान से कहा कि पीछे हट जाओ। सामने से तो लड़ना भी संभव था, पीछे से लड़ना भी मुश्किल हो गया। सामने से तो मैं भी साड़ी को देखती थी, पीछे से मुझे देखना भी संभव नहीं था। और तब मैं टेम्पटेशन में पड़ गई और तब मुझे यह साड़ी खरीदनी पड़ी।

बहुत से लोग शैतान को कहते हैं, पीछे हट जाओ, लेकिन शैतान पीछे से और आसानी से पकड़ लेता है। बहुत से लोग वासना से कहते हैं, पीछे हट जाओ और तब वासना पीछे से और भी आसानी से पकड़ लेती है। लेकिन सामने से वासना देखी भी जा सकती है, पीछे से दिखाई भी नहीं पड़ती है। कुएं से बचते हैं और खाई में गिर जाते हैं। एक आदमी धन को पाने के लिए दौड़ता रहता है, धन इकट्ठा करता रहता है। करते-करते उसे अनुभव में आता है, ख्याल में आता है कि यह तो दौड़ व्यर्थ है, कुछ भी पाया नहीं। वह धन छोड़ने की दौड़ में पड़ जाता है, तब वह धन छोड़ने लगता है। और वह सोचता है कि मैं कुछ बड़ी महत्वपूर्ण उपलब्धि कर रहा हूं।

थोड़ा विचार करिए, अगर धन को पाने से कुछ नहीं मिला तो धन को छोड़ने से कुछ कैसे मिल जाएगा। धन को पाने से भी जब नहीं मिलता तो धन को छोड़ने से कैसे मिल जाएगा? जिसके पाने में कुछ नहीं मिलता उसके छोड़ने में तो और भी कुछ नहीं मिलेगा। लेकिन यहां शैतान पीछे हो जाता है और खतरनाक हो जाता है। धन हमारे पास हम इकट्ठा करते जाते हैं और अनुभव करते हैं, कुछ भी नहीं मिलता। लेकिन धन हम छोड़ने लगते हैं तो ऐसा लगता है कि त्याग हो रहा है, पुण्य हो रहा है, परमात्मा प्रसन्न हो रहा है। और अहंकार की बहुत सूक्ष्म तृप्ति और संतृप्ति होनी शुरू हो जाती है। अहंकार का पोषण होना शुरू हो जाता है--मैंने छोड़ा, मैंने त्याग किया। इसलिए सामान्यता गृहस्थ से भी संन्यासी का अहंकार गहरा, प्रगाढ़, बहुत पुष्ट, बहुत पैना हो जाता है। बहुत सूक्ष्म हो जाता है, लेकिन बहुत पैना। उससे छुटकारा कठिन हो जाता है। संन्यासी हूं, मैंने त्यागा है, यह भाव पकड़ने लगता है। थोड़ा विचार करने के लिए जरूरी है, अगर धन का, अगर तृष्णा का कोई मूल्य नहीं तो तृष्णा के त्याग का तो और भी कोई मूल्य नहीं होगा। इसलिए मैं आपसे कह रहा हूं कि अगर वासना की भूल दिखाई पड़ती है तो हम वासना को छोड़ने की भूल में पड़ जाते हैं।

और मनुष्य का मन एक एक्सट्रीम से दूसरी एक्सट्रीम पर, एक अति से दूसरी अति पर बहुत जल्दी चला जाता है। भोगी बहुत जल्दी त्यागी हो जाता है। हिंसक बहुत जल्दी अहिंसक हो जाता है, अधार्मिक बहुत जल्दी धार्मिक हो जाता है, पापी बहुत जल्दी पुण्यात्मा हो जाता है। इसमें बहुत कठिनाई नहीं है। जैसे घड़ी को पेंडुलम एक कोने से ठीक दूसरे कोने में चला जाता है, बीच में नहीं रुकता, दूसरे कोने से फिर ठीक पहले कोने में चला जाता है। पेंडुलम की भांति मनुष्य का मन अतियों में डोलता है। जो आदमी अति भोजनप्रिय है वह किसी दिन अति उपवासा हो सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। ये एक ही चीज की दो अतियां हैं। जो आदमी स्त्रियों के पीछे

पागल होकर दौड़ रहा है, वह स्त्रियों को छोड़ने के पीछे पागल हो सकता है। लेकिन दोनों बातें एक ही चीज के अंग हैं, एक ही तृष्णा के हिस्से हैं। यह समझ लेना बहुत आवश्यक है कि ये दोनों एक ही वासना के दो हिस्से हैं। भोग और त्याग पृथक बातें नहीं हैं, भोग की छाया त्याग है।

सारे जगत में अधिकतर दो ही तरह के लोग हैं, दो ही तरह की चित्त की अवस्थाएं हैं--या तो भोगवादी है, या त्यागवादी है। मेरी दृष्टि में दोनों ही रुग्ण, दोनों ही बीमार हैं। स्वस्थ मनुष्य न तो भोगवादी होता है, न त्यागवादी होता है। स्वस्थ मनुष्य न तो इस ख्याल से पीड़ित होता है, इस वासना से कि धन या यश अगर मैं कम लूं तो कुछ मिल जाएगा, न दूसरी वासना से पीड़ित होता है कि इन्हें अगर छोड़ दूं तो कुछ मिल जाएगा। उसे एक नये और तीसरे बिंदु का अनुभव शुरू होता है। त्याग और भोग दोनों से पृथक एक तीसरे सत्य के प्रति उसका जागरण शुरू होता हूं।

उस तीसरे सत्य के प्रति तो मैं कल आपसे चर्चा करूंगा। आज मैं इन दो अतियों के बाबत स्पष्ट रूप से आपसे कुछ और कहना चाहूंगा। जो भोग में पड़ा है, उसे त्याग आदरणीय मालूम होगा। स्वाभाविक है। उसे लगेगा कि मैं तो दुख और संसार में उलझा हूं। जो लोग संसार को छोड़ कर भाग रहे हैं, वे धन्य हैं। लेकिन उसे पता नहीं कि वे मेरे ही जैसे लोग हैं--मेरे ही जैसे मन के, मेरी ही जैसी वासनाओं के, केवल मुझसे विपरीत दिशा में उन्होंने चलना शुरू कर दिया है। उनके अतः केंद्र पर कोई क्रांति नहीं हुई है, केवल उनकी दिशाएं बदल गई हैं। एक आदमी संसार की ओर भागा जा रहा है, और एक आदमी संसार छोड़ कर भागा जा रहा है--दोनों संसार से बंधे हुए हैं, दोनों के लिए संसार अर्थपूर्ण है, दोनों के जीवन का अतः संसार है। एक छोटी सी कहानी से शायद आपकी समझ में आए।

एक सुबह एक जंगल से एक व्यक्ति लकड़ियां काट कर अपने घर की ओर लौट रहा है। बहुत सज्जन है, बहुत साधुमना है, बहुत जीवन में त्याग को प्रतिष्ठा दी है, संपत्ति के मोह को छोड़ा है, परमात्मा के ही स्मरण में सारे जीवन को लगाया है। लेकिन इधर चार-पांच दिनों से वर्षा थी, और वह लकड़ियां नहीं काट सका, लकड़ियां काटता, बचता और भोजन करता। न भिक्षा मांगता था, न संपत्ति पास में रखता था इसलिए पीछे पांच-सात दिन भूखे रहना पड़ा। पांच-सात दिन की भूख के बाद लकड़ियां काट कर थका-मांदा, कमजोर, लकड़ियों के बोझ को लिए हुए जंगल से वापस लौट रहा है। राह के बिल्कुल किनारे उसे थैली पड़ी हुई दिखाई पड़ती है। कुछ मुद्राएं बाहर पड़ी हैं, कुछ थैली के भीतर हैं। एकदम से उसके मन को लगता है, मैंने तो स्वर्ण पर विजय पा ली है। मेरी पत्नी पीछे आ रही है, कहीं उसका मन न डोल जाए। भूख, गरीबी, दरिद्रता--कहीं एक क्षण उसने मन में ख्याल न आ जाए। जल्दी से उसे गड्ढे में डाल कर उस थैली को मिट्टी से पूर दिया। पूर भी नहीं पाया है कि पत्नी पीछे आ गई और उसने पूछा कि आप क्या करते हैं? असत्य न बोलने का नियम था, उसे कहना पड़ा कि स्वर्ण की कुछ मुद्राएं थीं, उन्हें देख कर मेरे मन को हुआ कि मैंने तो स्वर्ण को जीत लिया है लेकिन कहीं तुम्हारे मन में कोई आकांक्षा पैदा न हो जाए, कोई वासना पैदा न हो जाए मुद्राओं को उठाने की। इसलिए मैंने उन्हें गड्ढे में डाल कर पूर दिया। उसकी पत्नी ने कहाः मुझे आश्चर्य है कि तुम्हें अभी स्वर्ण दिखाई पड़ता है। और मुझे आश्चर्य है कि तुम मिट्टी के ऊपर मिट्टी डालने में थोड़ी भी शर्म अनुभव नहीं कर रहे थे।

ये दो अलग स्थितियां हैं। एक है स्वर्ण के त्याग की, लेकिन स्वर्ण दिखाई पड़ता रहेगा। क्योंकि बहुत गहरे में स्वर्ण की कामना शेष बनी रहेगी। ऊपर से छूट जाएगा, भीतर आकांक्षा बनी रहेगी। ऊपर से छूट जाएगा, भीतर आकांक्षा बनी रहेगी। ऊपर से जबरदस्ती छोड़ा जाएगा इसलिए भीतर आकांक्षा और बलवती हो जाएगी। ऊपर से दमन किया जाएगा, वासना को जबरदस्ती तोड़ा जाएगा। जैसे कोई कच्चे पत्तों को उखाड़ ले। जबरदस्ती की जाएगी मन के साथ, इसलिए मन उसके विरोध में निरंतर सक्रिय और असंलग्न रहेगा। स्वर्ण का विरोध बनाए रखना पड़ेगा। स्वर्ण को गाली देनी पड़ेगी। कामिनी कांचन की निरंतर गाली देनी पड़ेगी, निरंतर दमन करना पड़ेगा। निरंतर मन को समझाना पड़ेगा कि बुरा है, पाप है, बचो। निरंतर सावधानी बरतनी पड़ेगी। फिर भी, मन के भीतर बहुत गहरे में रस कायम रहेगा। दमन से, विरोध से, त्याग से वस्तुएं छूट सकती हैं, रस विलीन नहीं होताय नहीं हो सकता है। रस के विलीन करने का यह नियम भी नहीं है। बल्कि जितना भी दमन तीव्र होगा उतना ही ज्यादा रस गहरा, सूक्ष्म और प्राणों के बहुत अंतस्तलों में प्रविष्ट हो जाएगा।

तो जिन कामनाओं से साधारण जन ऊपर-ऊपर व्यथित और पीड़ित होता है, उन्हीं कामनाओं से तथाकथित संन्यासी बहुत गहरे में पीड़ित और व्यथित रहने लगता है। दमन इतना तीव्र भी हो सकता है कि उसका अचेतन मन, उसका कांशस माइंड उसको जानने में भी असमर्थ हो जाए। वह इतना तीव्र दमन हो सकता है कि बहुत गहरे अचेतन में ही उसे खुद भी बोध न रहे। उसकी वासनाएं सरकने लगें, कभी सपनों में उनकी झलकी मिल जाए, या कभी नशा कर ले तो उनका पता चले, लेकिन सामान्यतः उनका पता चलना बंद हो जाए। और इसीलिए साधु नींद से डरने लगते हैं, क्योंकि नींद में जो दबाया है वह सपनों प्रकट होने लगता है। साधु डरने लगता है नींद से--कम

नींद हो, कम से कम नींद हो। क्योंकि दिन भर तो वह उसके सचेत मन में, उसके चेतन में उसे पता नहीं चलता कि वासनाएं हैं। लेकिन जब रात शिथिल होकर सो जाता है। शिथिल होते ही मन का नियंत्रण ढीला होते ही, वासनाओं के वेग उठने शुरू हो जाते हैं। तो जो पाप सामान्य मनुष्य दिन में करता है, वही पाप दमन किया हुआ व्यक्ति रात के अंधेरे में सपनों में कर लेता है। लेकिन पाप करने में कोई भेद नहीं है। जो बुराइयां और कामनाएं और वासनाएं दिन में घेरती हैं वे उसे रात सपने में घेर लेती हैं। मन का काम पूरा हो जाता है। मन के काम में कोई भेद नहीं पड़ता।

यह जो दमन की, तथाकथित त्याग की, रिनन्सिएशन की, छोड़ कर भाग जाने की जो वृत्ति है, यह वासना का ही दूसरा रूप है। और एक ओर से बचकर अगर हम दूसरी ओर गिर जाएं तो कोई क्रांति, कोई परिवर्तन नहीं होता, बल्कि हमने केवल कंधे बदल लिए हैं। जैसे लोग मुर्दे को मरघट ले जाते हैं, एक कंधा थक जाता है तो दूसरे कंधे पर बांस को रख लेते हैं। फिर दूसरों थक जाता है तो दूसरे पर बदल लेते हैं। कंधे बदल लेने से वजन समाप्त नहीं होता। थोड़ी देर हल्का मालूम हो सकता है। कंधा बदलना है। अगर जबरदस्ती हम वासनाओं के विरोध में खड़े हो जाएं--वासना की असफलता वासना के विरोध में ले जाए तो बात व्यर्थ हो गई।

फिर क्या हो? दो ही बातें सामने दिखाई पड़ती हैं--या तो भोग दिखाई पड़ता है, या त्याग। दो ही विकल्प मालूम होते हैं--या तो अहंकार दिखाई पड़ता है, विनम्रता। अहंकार बुरा है, ऐसा अनुभव में आता है तो हम विनम्र होने में लग जाते हैं। कोशिश करते हैं कि विनम्र हो जाए, विनीत हो जाए, लेकिन क्या विनीत मनुष्य के अहंकार से आप परिचित हैं? क्या जो बहुत विनीत हो गया मनुष्य है, उसके भीतर आपको अहंकार के दर्शन नहीं होते? क्या जो कहता है कि मैं बिल्कुल विनम्र हूं, उसके भीतर अहंकार मौजूद नहीं है? अहंकार व्यर्थ मालूम होता है तो विनम्रता का आरोपण हम शुरू कर देते हैं। अहंकार असफल मालूम पड़ता है, पीड़ा देता मालूम होता है तो सोचते है, अहंकार से विपरीत कोई बात पकड़ लें। हिंसा पीड़ा देती है तो अहिंसा को पकड़ लें, घृणा पीड़ा देती है तो प्रेम को पकड़ लें। लेकिन जो मन घृणा से भरा हुआ है, वह प्रेम कैसे कर सकेगा। और अगर प्रेम की चेष्टा करेगा तो वह चेष्टा झूठी होगी, आरोपित होगी, ऊपर से लादी गई होगी।

कल मैंने थोड़ा सा रात्रि में इस संबंध में कहा कि चेष्टित प्रेम झूठा हो जाएगा, अभिनय हो जाएगा। चेष्टित विनम्रता भी झूठी हो जाएगी। चेष्टित त्याग भी झूठा हो जाएगा। और तब यह त्याग भी वासना का ही छिपा हुआ रूप होगा और यह शैतान पीछे से पकड़ लेगा। सामने से पकड़ने में फिर भी लड़ाई आसान थी। पीछे से पकड़ने में लड़ाई बहुत कठिन और मुश्किल हो जाएगी। इसीलिए जो त्यागी हैं, तथाकथित त्याग से परिचित हैं, वे सारे लोग उस त्याग के पुरस्कार में भोग की ही कोई कामना करते रहते हैं। बैकुंठ में, स्वर्ग में, बहिश्त में भोग की ही कामना करते रहते हैं। वहां कल्पवृक्षों का निर्माण करते रहते हैं। वहां अप्सराओं, हूरों की व्यवस्था करते रहते हैं। वहां शराब के झरने बहाते रहते हैं। वहां अनंत यौवन, अनंत सुख की कल्पना करते रहते हैं। वे लोग जो यहां त्यागी मालूम पड़ते हैं, अंत में उस त्याग के पुरस्कार में भोग की ही आकांक्षा करते हैं। तो यह त्याग जरूर छिपा हुआ भोग होगा।

बोधिधर्म नाम का एक भिक्षु भारत से कोई चौदह सौ वर्ष पहले चीज गया। वहां वू नाम के सम्राट ने उसका स्वागत किया। राज्य की सीमा पर आकर बोधिधर्म के स्वागत में उसने बड़ा समारोह किया। समारोह के बाद निपट जाने पर संध्या को विश्राम के समय वह बोधिधर्म के चरणों में बैठा। उसने पूछाः मैंने इतने विहार बनवाए, इतनी भगवान की मूर्तियां निर्मित करवाई, इतने भिक्षुओं को भोजन देता हूं, इतने धर्मग्रंथ प्रकाशित करवाए, इस सब पुण्य का फल क्या होगा? सभी पुण्यात्मा यही पूछ रहे हैं कि इस पुण्य का फल क्या होगा?

मैं गंगा के किनारे पीछे गया था एक यज्ञ में, वहां एक बड़े साधु लोगों को समझा रहे थे कि यहां गंगा के किनारे जो एक रुपया दान करता है, भगवान उसे हजार रुपये देना है। लोग दान भी कर रहे थे। एक रुपये के बदले में हजार रुपये मिलते होंगे तो कोई नासमझ होगा, जो दान नहीं करेगा? सारे धर्म यह समझाते रहे हैं कि जो यहां त्याग करता है, वहां उपलब्ध करता है। तो जो पागल होंगे, जो यहां, त्याग न करें वहां उपलब्ध न कर लें। जिनके मन में लोभ गहरा है वह जरूर त्यागी बन जाएंगे क्योंकि लोभ, पुरस्कार, संभावना, सुरक्षा वह सब उनके मन को पकड़ लेगी।

बोधिधर्म से उस राजा ने कहाः क्या फल होगा? बोधिधर्म बोलाः कुछ भी नहीं। राजा हैरान हुआ होगा। संन्यासी ऐसी बात कभी नहीं बोलते हैं। फल बहुत बढ़ाकर बताते हैं कि क्या फल होगा, क्योंकि उसी के बल पर संन्यासी जीते हैं। आपके त्याग के बल पर वे जीते हैं आप भोग के लिए त्याग करते हैं। लेकिन बोधिधर्म ने कहाः कुछ भी नहीं। विपरीत तुम्हें यह ख्याल पैदा हुआ तो पाप हो गया और हानि हो गई।

वू बहुत परेशान हुआ, राजा बहुत परेशान हुआ। उसने कहाः आप यह कहते क्या हैं? तो मैंने यह सब किया, बेकार गया? बोधिधर्म ने कहाः बिल्कुल मिट्टी में गया, पानी में गया, सब बेकार गया। और नुकसान यह हो गया कि तुम्हें ख्याल पैदा हो गया कि मैंने कुछ किया है। मैंने कुछ धर्म किया है।

वह जो आदमी सुबह मंदिर हो आता है, वापस आ जाता है, सोचता है, मैंने धर्म किया है। पच्चीस कदम गए, पच्चीस कदम लौटे, एक दफा सिर नीचे पत्थर पर पटका और तय हो गया कि मैंने धर्म किया है। एक आदमी सुबह से एक किताब को खोल कर बैठ जाता है, वह पांच पंक्तियां पढ़ लेता है, नमस्कार कर लेता है, सोचता है, मैंने धर्म किया है। एक आदमी जनेऊ डाल लेता है, कान में लगा लेता है, सोचता है मैंने धर्म किया है, एक आदमी कुछ और राम-राम का नाम ले लेता है, सुबह से उठ कर सोचता है, मैंने धर्म किया है।

बहुत रास्ते में धार्मिक होने का मजा ले लिया जाता है और अहंकार की तृप्ति हो जाती है। एक आदमी कुछ थोड़ा छोड़ देता है, दान कर देता है, या बहुत ज्यादा, सोचता है कि मैं धार्मिक हो गया। इस सबके पीछे आकांक्षा है। इसलिए धर्मग्रंथों को आप पढ़ेंगे तो उनमें त्याग का भी वर्णन है और साथ में क्या-क्या पुरस्कार मिलेगा, उसका भी। पुरस्कार की बहुत बढ़ा-चढ़ा कर व्यवस्था की गई है। और जो त्याग न करेंगे, उनको दंड क्या मिलेगा, उसका वर्णन है। और जो भी करेंगे, उनके लिए क्या दंड मिलेगा, उसका भी वर्णन है। उनके लिए भी नरकों की व्यवस्था है और उनके लिए जो पुण्य करेंगे, त्याग करेंगे, स्वर्ग की व्यवस्था है। क्या इसके कारण हमारा लोभ मन प्रभावित नहीं हो जाता होगा? और क्या उस लोभ के पीछे ही हम मंदिर धर्मशालाएं बनाते हैं? क्या उस लोभ के पीछे ही हम दान भी करते हैं। लेकिन यह कोई मन की क्रांति नहीं है। यह वही भोग है जो नये रूप में खड़ा हो गया है। यह वही भोग है। यह भोग की ही दूसरी परिणति है। यह भोग का ही दूसरा रूपांतरण है।

भोग और त्याग दोनों ही मार्ग नहीं हैं। भोग भी बंधन है और त्याग भी बंधन हैय क्योंकि दोनों में ही वासना, सूक्ष्म वासना काम कर रही है, कुछ और होने की वासना काम कर रही है। अभी एक संन्यासी मुझे मिले। वे मुझसे कहने लगे, कुछ भी हो जाए, इसी जीवन में मुक्त होना है। मैंने उनसे पूछाः ऐसी जल्दी भी क्या है? और आखिर आपको मुक्त होना ही चाहिए, इसकी जरूरत भी क्या है? और इसी जन्म में क्यों? और क्या कभी आप सोचते हैं कि यह वही मन है जो कहता है कि करोड़ रुपए होने चाहिएय जो कहता है, बड़ा भवन होना चाहिएय जो कहता है, बहुत गाड़ियां होनी चाहिएय जो कहता है, बहुत बड़ा पद होना चाहिएय प्रधानमंत्री हो जाऊं कि राष्ट्रपति हो जाऊं कि कुछ और हो जाऊं जो यह कहता है, क्या यह वही मन नहीं है, जो कहता है कि मोक्ष पा लूं, भगवान को पा लूं, बैकुंठ में स्थान बना लूं, सिद्धशिला पर विराजमान हो जाऊं--क्या यह वही मन नहीं है? क्या वही ठीक चित्त की दशा नहीं है? यह कोई क्रांति न हुई। यहां के पद छूटते हैं तो वहां मोक्ष के पद शुरू हो जाते हैं। यह वही मन का रूप है जो चाहता है कि मैं कुछ हो जाऊं। और यह छोटा लोभ नहीं है। इसलिए मैंने कहाः कुएं से बच कर खाई में गिर जाना है। क्योंकि जो आदमी कहता है कि मैं बड़े पद पर हो जाऊं, मिनिस्टर हो जाऊं, राष्ट्रपति हो जाऊं, इसका लोभ फिर भी सीमित है। क्योंकि कितने दिन राष्ट्रपति रहेगा? वर्ष, दो वर्ष, पचास वर्ष, फिर? फिर मौत सब मिटा देगी। लेकिन लोभी का जब मन बहुत बहरा हो जाता है तो वह ऐसा मोक्ष पाता है जो अनंत हो, फिर जिसका कभी अंत ही न आए। ऐसा पद चाहता है, परम पद कि फिर उसका कोई अंत न हो, फिर वह सदा सुख में और सदा शांति में विराजमान रहे। अमर आत्मा हो, शाश्वत अनंत मोक्ष हो। उसमें प्रतिष्ठित होना चाहता है, उसमें प्रवेश पाना चाहता है। यह वही आदमी है, लाभ बड़ा हो गया। यह वही गृहस्थ है संन्यास के नाम से। इसका लोभ, अहंकार अनंत हो गए, बहुत अनेक गुण बड़े हो गए। यह कोई क्रांति मन की नहीं है।

लोभ और अलोभ, और यह भोग और त्याग भिन्न बातें नहीं हैं, ये विरोधी बात नहीं हैं। विरोधी दिखती हैं, लेकिन एक ही बात है। भिन्न नहीं हैं क्योंकि दोनों के भीतर एक ही चित्त काम करता है। यह देखना, अनुभव करना, विचार करना, विश्लेषण करना जरूरी है। नहीं तो बहुत स्वाभाविक है, तृष्णा व्यर्थ मालूम पड़े तो हम तृष्णा के विरोध के मार्ग पर चले जाए। बहुत स्वाभाविक है। बहुत स्वाभाविक। कामना व्यर्थ मालूम पड़े तो तुम अकाम होने की चेष्टा में लग जाए। सेक्स दुखद और पीड़ित मालूम पड़े तो हम ब्रह्मचर्य को थोपने की कोशिश में संलग्न हो जाए। लेकिन ऐसे ब्रह्मचर्य के भीतर भी सेक्सुअलिटी, कामुकता कायम रहेगी, यह हमें दिखाई नहीं पड़ता। यह तथाकथित जो भेद है, गहरा नहीं है, बहुत ऊपरी है।

मैं एक साध्वी के पास था। समुद्र की हवा चलती थी। मेरा चादर उड़ता था और साध्वी को छूता था। उनके प्राण कंप गए। उनके चेहरे पर मुझे लगा कि वे बातें तो आत्मा की कर रही हैं लेकिन चद्दर मेरा उन्हें बहुत तकलीफ दे रहा है। लेकिन मैंने कहा, हवाएं चलती हैं, चलने दो। हवाएं चद्दर को उड़ाती है, उड़ाने दो, अपना क्या वश है? चादर उन्हें छूता गया। फिर मेरे पास कोई जानकार थे, पंडित थे, उन्होंने मेरा चादर रोका और कहा कि आपको इतना भी ख्याल नहीं है? पुरुष का चद्दर साध्वी को छू रहा है, उन्हें बड़ा पाप लग रहा है। उन्हें बड़ी मुश्किल हो रही है। मैंने उन साध्वी को पूछा कि आप आत्मा की बातें कर रही है और आप कह रही कि हम शरीर नहीं हैं, लेकिन मेरा चद्दर, चूंकि मैं ओढ़े हुए हूं इसलिए वह चद्दर भी पुरुष हो गया? वह चद्दर भी! उसमें भी सेक्स प्रविष्ट

हो गया, वह भी पुरुष और स्त्री हो गया! और मेरा चद्दर चूंकि आपको छू रहा है, आपके चेहरे हर घबड़ाहट और बेचौनी है। यह घबड़ाहट और बेचौनी भीतर छिपी हुई कामुकता का प्रतीक नहीं है? क्या भीतर बहुत गहरे में सेक्सुअलिटी नहीं बैठी है? सेक्सुअलिटी जब बहुत गहरे में बैठ जाए तो पुरुष का हाथ छूने की जरूरत नहीं है। पुरुष का चद्दर भी छुए तो भीतर वासना लहरें लेना शुरू कर देगी। कामना उठना शुरू कर देगी। जब बहुत गहरे में, ऊपर से दबा लिया जाए और कामुकता बहुत गहरे में बैठ जाए तो पुरुष का स्पर्श मात्र या स्त्री का स्पर्श मात्र बहुत वासना को जगाने लगेगा।

आत्मा की बातें हैं, शरीर हम नहीं हैं, इसका विचार है, और चद्दर भी परेशान कर देती है तो फिर इसमें कोई संगति दिखती है? इन सारे चिंतनों में कोई अर्थ दिखता है? यह तथाकथित ब्रह्मचर्य, थोपा हुआ ब्रह्मचर्य सेक्सुअलिटी का ही, उसकी ही विकृत रूप हैय उसका ही दबाया हुआ रूप है। इसलिए घबड़ाहट, इसलिए बेचौनी और परेशानी है। इसलिए सारी परेशानी है, इसलिए सारी दिक्कत है।

एक बुद्ध के जीवन में उल्लेख है। वे एक पहाड़ के किनारे, वृक्ष के नीचे बैठ कर सुबह-सुबह के ध्यान के बाद उठे थे। सूरज उगा हुआ था। कोई भागता हुआ उनके सामने से निकला। पीछे से कुछ लोग और भागते हुए आए। गांव के कुछ युवक एक वेश्या को पकड़ कर ले आए थे जंगल में। वेश्या भाग गई थी और युवक उसे खोजने निकले। देखा, एक भिक्षु बैठा है। उससे पूछा कि क्या आपने यहां से किसी वेश्या को जाते देखा? बुद्ध ने कहाः वेश्या को? कोई निकला जरूर, वेश्या थी या नहीं, कहना कठिन है। उन्होंने पूछाः किसी स्त्री को जाते देखा? बुद्ध ने कहाः कोई निकला जरूर, स्त्री थी कि पुरुष था, कहना कठिन है। तो उन्होंने कहाः करते क्या हैं यहां बैठे? सभी कुछ कठिन है। तो बुद्ध ने कहा, जब तक मैं पुरुष था तब तक बाहर स्त्री दिखाई पड़ती थी। जब तक मैं पुरुष था तब तक बाहर स्त्री दिखाई पड़ती थी। वह मेरी कामना थी, जो स्त्री को दिखाती थी। अब तो लोग दिखाई पड़ते हैं, स्त्री और पुरुष नहीं। और जब मैं गौर से देखता हूं तो मुझे हड्डियां दिखाई पड़ती हैं, मांस दिखाई पड़ता है, और तो वहां कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। तो हड्डियां का एक ढेर यहां से गया। और बुद्ध ने कहाः मित्रों, क्या उचित न होगा कि तुम उसकी खोज में जाओ, उससे ज्यादा उचित न होगा कि तुम अपनी खोज करो? क्या यह उचित है कि तुम उसकी खोज में जाओ या कि यह कि तुम अपनी खोज करो? तुम इतने चिंतित हो गए हो कि कोई तुम जिसे लाए थे, भाग गया। और तुम इसके लिए जरा भी चिंतित नहीं हो कि तुम्हारा खुद, तुम्हारी खुद की सत्ता तुमसे भागी हुई है और तुम्हें उसका कोई पता नहीं है।

हम सारी दुनिया में किसी और को खोजने में लगे हैं और अपनी खोज में नहीं हैं। और जब यह खोज बदलती भी है तो जिसे हम खोजने में लगे थे उससे हम भागने में लग जाते हैं। इलूजन, वह भ्रम कायम रहता है। जिसे हम खोजने जा रहे थे--समझ लें कि ये युवक थे, बुद्ध ने कहाः उचित है कि तुम अपने को खोजो वेश्या को खोजने से, उस स्त्री को खोजने से, या जिसको भी तुम खोजने निकले हो, उसको पता लगाने से क्या प्रयोजन है? तो युवक कहें कि बात तो ठीक है, जिस वेश्या को हम खोजने निकले थे, अब उचित होगा कि उससे दूर भागने में लग जाए। अब हम भागें और पता लगाए कि वेश्या कहां नहीं है, उन्हीं दिशाओं में जाए। तो हम इनको कहेंगे, ये पागल हैं। वेश्या को खोजते थे तो पागल थे, अब पागलपन ने दूसरा रूप ले लिया कि अब जहां-जहां से वेश्या हो, वहां-वहां से भागना है। अब यह दूसरा पागलपन, यह दूसरी इनसेनिटी, दूसरी मैडनेस शुरू हुए। एक पागलपन था कि जहां-जहां वेश्या हैं, वहां-वहां जाना है और अब एक पागलपन शुरू हुआ है कि जहां-जहां वेश्या न हो, वहां-वहां जाना है। संसार छोड़ना है, हिमालय की तराइयों में जाना है। अब भागना है वहां जहां पाप की कोई संभावना, कोई आधार, कोई आलंबन न हो। पहले था कि जहां पाप हो वही जाना है, जहां बुराई हो, जहां कामना हो। यह दूसरी स्थिति भी पागलपन की है।

नहीं, न तो धन के पीछे भागने में अर्थ है, न धन से दूर भागने में अर्थ है। न तो शैतान को सामने रखने में अर्थ है, न शैतान को पीछे हटा देने में अर्थ। खोजना उसे है, जो हम है। न तो कुछ और खोजना है, न कुछ और त्यागना है। न तो कुछ और भी पीछे जाना है, न किसी और से भागना है। खोजना उसे है जो इस सारी खोज के भीतर हैय वह जो खोजी होय वह जो सब खोज रहा है। जो त्याग खोज रहा है, भोग खोज रहा है, उसे खोजना है। जो उसे खोजता है वह छाया के जीवन से मुक्त होकर वास्तविक जीवन की दिशा में प्रविष्ट होता है।

कैसे हम उसे खोज सकेंगे जो सब खोज के पीछे खड़ा है, उकसे संबंध में हम कल सुबह चर्चा करेंगे।

मेरी इन बातों का इतनी प्रीति और शांति से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं।

पांचवां प्रवचन

प्रश्न-शून्य चित्त

बहुत प्रश्न इकट्ठे हो गए हैं। यह प्रश्नों की जो भीड़ है, यह हमारे मन की भीड़ की सूचना है। जैसे वृक्षों के पत्ते लगते हैं, वैसे बीमार मन में प्रश्न लगते हैं। रुग्ण चित्त हो, अवस्था चित्त हो तो बहुत प्रश्न पैदा होता तो हैं। जैसे-जैसे चित्त स्वस्थ होता जाता है वैसे-वैसे प्रश्न गिरते जाते हैं। स्वस्थ चित्त का लक्षण निष्प्रश्न हो जाना है। मन में बहुत सी बातें उठती हैं, उनमें से कुछ आपने पूछी हैं। जो बहुत आधारभूत प्रश्न हैं, जिनसे जीवन का संबंध है, उन पर थोड़ी सी अंतिम बात आज आपसे कहूंगा।

प्रश्न दो प्रकार के होते हैं--थोड़ा इस संबंध में आपसे कहूं, फिर आपके प्रश्नों को लूं। एक तो वे प्रश्न हैं जो शास्त्रों द्वारा पैदा हो जाते हैं और एक वे प्रश्न हैं जो जीवन से पैदा होते हैं। शास्त्रों से जो प्रश्न पैदा होते हैं उन्हें हल करने में जो लगा है, वह अपने समय को व्यर्थ खो रहा है। लेकिन जीवन से जो प्रश्न पैदा होते हैं उन्हें हल करने की दिशा में जो संलग्न होता है वह जरूर किसी सार्थक समाधान को उपलब्ध हो जाता है। और वैसा व्यक्ति, जो अपने जीवन की समस्याओं का समाधान खोज लेता है, वह सारे शास्त्रों में उठाए गए प्रश्नों का समाधान अनायास पा जाता है। उसे खोजने अलग से नहीं जाना होता है। लेकिन जो शास्त्रों के प्रश्न खोजने जाता है वह शास्त्रों के प्रश्नों के उत्तर तो कभी उपलब्ध नहीं करता, जीवन का जो समाधान मिल सकता था, वह उस समय को भी व्यर्थ खो देता है। बहुत विचारणीय है, क्या हम खोजें? कौन सी हमारी समस्या केंद्रीय है जिसे हम पकड़े, सुलझाए और उससे मुक्त हों?

बुद्ध के जीवन में एक घटना है। एक गांव में गए थे। फिर उस घटना को वे जीवन भर दोहराते रहे; बहुत लोगों को उस घटना के संबंध में कहते रहे। जब भी कोई उनसे प्रश्न पूछता था तो वह उस घटना को जरूर वापस दोहरा देते थे। एक गांव में गए थे। एक आदमी को तीर लग गया था। उस आदमी से लोगों ने कहा कि हम तीर को निकाल दें? वह आदमी बोला, पहले मुझे इसका पता लग जाए थक तीर किसने मारा। पहले मुझे इसका पता चल जाए कि शत्रु ने, कि मित्र ने, कि भूल से। यह भी मुझे पता चल जाए कि तीर विषबुझा है या बिना विषबुझा; तीर किस धातु का बना है। तो जो मित्र इकट्ठे थे उन्होंने कहाः अगर हम तुम्हारे इन सब प्रश्नों का पता लगाने जाए तो शायद सब बातों का पता चल जाए, लेकिन तब तक तुम जीवित नहीं रहोगी। तो उचित है, प्रश्न बाद में पूछना, पहले तीर निकाल लेने दो। और तीर निकल आए, फिर तुम खुद ही खोज लेना कि तीर किसने मारा--मित्र ने कि शत्रु ने, कि विषबुझा है कि नहीं, किस धातु का बना है। तुम खुद ही खोज लेना। बुद्ध लोगों से कहते, हम सब भी तीर से बिंधे पड़े हैं। और हम पूछते क्या हैं?

हम बहुत से प्रश्न पूछते हैं, शायद एक बुनियादी प्रश्न को छोड़ कर कि यह जो दुख का तीर हमारे भीतर लगा है, यह कैसे दूर हो? बहुत से प्रश्न हैं। कोई प्रश्न है, सृष्टि परमात्मा ने बनाई या हीं बनाई? आप को तीर लगा पड़ा है, और आप पूछ रहे हैं कि तीर किस लोहार ने बनाई? लोहार ने बनाया या नहीं? हाथ का बना हुआ है या तख्ती का बना हुआ है? और इसका पता भी चल जाए कि किस लोहार ने बनाया तो भी तीर का छिदा होना इससे समाप्त नहीं होगा। यह पता भी चल जाए कि परमात्मा ने सृष्टि बनाई तो क्या होगा? यह भी पता चल जाए कि परमात्मा ने सृष्टि नहीं बनाई तो क्या होगा?

जीवन की जो पीड़ा है, जीवन का जो संकट है, जो संत है, वह मात्र इस तरह के बौद्धिक विचारों से ऊहापोह से समाप्त नहीं होती है। फिर इसी तरह के बहुत से प्रश्न हैं, उन्हें मैं जीवन के प्रश्न नहीं मानता हूं, वे हमारी बौद्धिक खुजलाहटें हैं। जैसे खाली हो जाए, उसे खुजलाने से बहुत सुख मिलता मालूम होता है, लेकिन बाद में पता चलता है, खुजाने का सुख हितकर नहीं था। उससे घाव बड़े हो गए हैं। ठीक वैसे ही बुद्धि बहुत सी बातों को खुजलाने में सुख लेती है। खाज को खुजलाने जैसी है, बड़ी रुग्ण आदत है, उसमें बहुत अर्थ नहीं है। अर्थ है जीवन की समस्याओं को पकड़ने का, पहचानने का। ठीक-ठीक समस्या को पकड़ने और पहचानने का। उस समस्या को अगर आप पकड़ लेते हैं तो समझ लीजिए, आधा समाधान तो हो गया। ठीक समस्या को पकड़ लेना, ठीक रोग का निदान कर लेना आधी चिकित्सा है। शायद आधी से भी ज्यादा चिकित्सा है।

तो जो मुझे जीवन के प्रश्न मालूम होते हैं उन पर मैं आज अंतिम दिन थोड़ी सी बात आपसे कहूंगा।

एक बहुत महत्वपूर्ण बात पूछी है--पूछा हैः मैंने कहा कि आप सब विचारों से मुक्त हो जाएं, सब शास्त्रों से मुक्त हो जाएं, सब शब्दों से मुक्त हो जाएं, तो चित्त स्वतंत्र होगा। तो पूछा हैः फिर तो हम आपके शब्दों के प्रभाव में आ जाएंगे। आपके शब्द हमारे भीतर बैठ जाएंगे, आपके विचार का सहारा हो जाएगा। तो क्या यह भी बंधन है?

निश्चित ही, यह भी बंधन है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि दूसरों के विचार तो बंधन हैं और मेरे विचार मुक्ति हैं। विचार मात्र बंधन हैं। वह चाहे किसी के हों; मेरे हों, या किसी और के हों। जब भी विचार बाहर से आता है तो बंधन हो जाता है। तो मेरी बातों को अगर आप याद कर लें, और मेरी बात पर श्रद्धा कर लें और मेरी बात को पकड़ लें तो आप गलती में हो गए। गुलामी कायम रहेगी मन की, इससे छुटकारा नहीं होगा। नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मेरी बात को आप मान लें।

एक आदमी रास्ते पर जाता है, पैर में काटा लग जाता है। तो क्या करता है? एक दूसरा कांटा उठता है और पहले कांटे को निकाल देता है। लेकिन क्या दूसरे कांटे को घाव में रख ले तो है? नहीं, पहला निकल गया, दूसरा भी फेंक देता है। तो मैं कह रहा हूं, आपके मन में विचारों का जो लगा कांटा है, अगर मेरे विचार दूसरे कांटे की तरह उसे निकाल लें तो आप बड़ी कृपा करेंगे, इस दूसरे कांटे को बहुत जल्दी फेंक देता; इसे रखने का डर है। यह रख लिया जाए तो कांटा कांटा है, कोई फर्क न हीं पड़ता। फिर बेकार की मेहनत हुई। पहले ही कांटा लगा रहता तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर तो पुराना ही कांटा बेहतर है। कम से कम उसकी चुभन कम हो जाती है। नया कांटा और भी ज्यादा चुभन देगा।

तो मेरे विचार को पकड़ नहीं लेना है। मेरा विचार कोई संप्रदाय नहीं बना लेना है मन में। मेरा विचार कोई पंथ नहीं है, कोई पक्ष नहीं है। मैं आपको कोई विचार नहीं दे रहा हूं, मैं केवल आपसे कह रहा हूं कि यह बोध अगर आप ठीक से अपने मन में समझेंगे तो आपको ख्याल में आएगा, जो मुझे दिखाई पड़ रहा है, वह मैं आपसे बात कर रहा हूं। कोई उपदेश नहीं दे रहा हूं। मुझे दिखाई पड़ता है कि जो विचार बाहर से आते हैं वे चित्त को घेर लेते हैं। चित्त उनमें बंध जाता है। तो हम क्या करें? क्या उचित न होगा कि इन सारे विचारों को क्षीण होने दें? और चित्त को मुक्त होने दें? चित्त हमारा है, विचार दूसरे के हैं। फिर चित्त बंधा हुआ हो तो वह यात्रा नहीं कर सकता।

पहाड़ पर चढ़ना होता है किसी को तो सारे बोझ को नीचे छोड़ देना होता है। जितने ऊपर चढ़ने लगता है, उतने बोझ को छोड़ देना होता है। जितनी ऊंचाई पर जाना हो उतना निर्भार होना जरूरी है। बोझ, वजन कम होना जरूरी है। आखिरी गौरीशंकर की चोटी चढ़नी हो तो सब बोझ छोड़कर नीचे जाना होता है। सत्य की चोटी पर चढ़ने की जिनके मन में प्यास है, परमात्मा के रहस्य को जानने की जिनके मन में अभीप्सा जगी है, उन्हें सारे भार को छोड़ देना मन का। और मन से बिल्कुल निर्भार हो जाना पड़ेगा। जब मन बिल्कुल निर्भार होता है तो उसकी गति ऊपर-ऊपर उठनी शुरू हो जाती है। इस निर्भार होने के लिए मेरे विचारों को आप रख लेंगे तो निर्भार नहीं होंगे; फिर भारग्रस्त हो जाएंगे। मेरी बात छोड़ देनी है। जिस दृष्टि की मैं बात कर रहा हूं उस दृष्टि पर ख्याल रखना है।

मैं चांद की बताऊं उंगली से तो दो रास्ते हैं--या तो आप मेरी अंगुली पकड़ लें कि बड़ी आपने कृपा की जो चांद दिखलाया, हम आपकी अंगुली की पूजा करेंगे। ऐसा ही हुआ है। महावीर की अंगुली पकड़े हुए लोग जैन कहलाते हैं, मोहम्मद की अंगुली पकड़े हुए लोग मुसलमान कहलाते हैं, बुद्ध की अगुली पकड़े हुए लोग बौद्ध कहलाते हैं, राम की अंगुली पकड़े हुए लोग हिंदू कहलाते हैं। चांद को कोई नहीं देखता। अंगुलियां पकड़ ली हैं, अंगुलियों की पूजा चल रही है। नहीं, अंगुलियां छोड़ देने जैसी हैं, चांद देखने जैसा है। अंगुलियों का क्या प्रयोजन है? अंगुलियां छोड़ दें। अंगुली पकड़ लेंगे, चांद देखना मुश्किल हो जाएगा। अंगुली की सार्थकता यही है कि उसे छोड़ दें और चांद को देखें।

तो मैं जिस तरफ इशारा कर रहा हूं, उस तरफ। मैं जो कहा रहा हूं, वह नहीं। मैं जिससे इशारा कर रहा हूं, जिन शब्दों से, वह नहीं, बल्कि जिस मौन और निशब्द की ओर इशारा कर रहा हूं, वह। और वह मेरा नहीं है। वह किसी का भी नहीं है। मौन, वह परम शांति, वह चित्त की समाधि दशा, वह सत्य का द्वार किसी का भी नहीं है। चांद किसी का भी नहीं है, अंगुलियां हम सबके पास हैं। अंगुलियां हम बताए चांद को तो भी चांद हमारा नहीं हो जाता है। अंगुलियां छोड़ दें और चांद को... । इशारे छोड़ दें, शब्द छोड़ दें, तो मेरे शब्द हों या किसी और के सब बाधाएं हैं। उनका कोई भी मूल्य नहीं है।

इसी संदर्भ में एक प्रश्न और पूछा है कि मैं जो कह रहा हूं, यह शब्द-जाल है, इससे हित होने वाला नहीं है; ऐसा एक प्रश्न पूछा है।

क्योंकि मन तो मौन होता ही नहीं है। लेकिन कभी अगर थोड़ा भी प्रयोग किया होता जानने का तो ऐसी गात नहीं कहीं जा सकती थी। जब आप सोच रहे होते हैं, तब भी तो शब्दों के बीच में गैप होता है या नहीं? जैसे मैंने कहा, राम आया, तो राम और आया के बीच में खाली जगह है या नहीं? जब आप मन में सोचते हैं तो शब्दों के बीच में निशब्द जगह होती है या नहीं? अगर बीच में खाली जगह न हो तो एक शब्द दूसरे पर चढ़ जाएगा और आप पागल हो जाएंगे। समझ में नहीं आ सकेगा कि क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है। यहां इतने लोग हम बैठे हैं। हम इतने लोग यहां इसलिए बैठ सके कि यहां खाली जगह है और हम कितने ही बैठ गए हों, फिर भी हमारे बीच में खाली जगह पड़ी हुई है।

तो मन में कितनी ही शब्द बैठ जाए और कितने ही विचार, वे सब खाली मन में प्रवेश पा गए हैं। स्पेस है वहां। उसमें ही तो बैठ गए; नहीं तो बैठते कहां? अगर मन में मौन न होता शब्द प्रवेश कहा से करते? आप यहां आ सके क्योंकि यह भवन खाली है। अगर यह भवन ठोस होता, पत्थर से भरा होता तो आप कैसे प्रवेश करते? मन में शब्द जाते हैं, इस बात की सूचना है कि मन में स्वयं निःशब्द है, मन खाली है, मन भरा हुआ नहीं है। फिर शब्द कितने ही इकट्ठे हो जाए, हर दो शब्द के बीच में खाली जगह बनी हुई है। विचार कितने ही इकट्ठे हो जाएं, बीच-बीच में निर्विचार का इंटरवल, गैप, अंतराल है। शब्द बाहर से आए हैं, यह अंतराल कहां से आया? यह खाली जगह कहां से आई? यह तो वहां है। तो खाली जगह, यह एंप्टीनेस, यह मन के भीतर स्पेस जो है, अवकाश जो है, रिक्त स्थान जो है, यह तो आपका स्वभाव है। और विचार और शब्द जो आए हैं, ये स्वभाव नहीं हैं, ये विजातीय हैं, ये फॉरेन हैं, ये मेहमान हैं आपके। इन मेहमानों में अगर आप भूल जाए उसको, जिसके ये मेहमान हैं तो गड़बड़ हो जाएगी, मुश्किल हो जाएगी। वही हुआ है। घर में कोई मेहमान आए और धीरे-धीरे होश तो भूल जाए और गेस्ट ही स्मरण में रह जाए, थोड़े दिनों में गेस्ट मालिक हो जाए और होस्ट घर के बाहर हो जाए, वैसी हालत है--जो मेहमान हैं, वह मालिक हो गए हैं और जिसके मेहमान हैं, वह इन मेहमानों की भीड़ में बिल्कुल ही खो गया है; उसका कोई पता नहीं चलता।

इसलिए आप कहते हैं कि निशब्द तो मन में होता नहीं, साइलेंस तो वहां होता नहीं। वहां तो शब्द ही शब्द होते हैं। तो मैं जो यह कह रहा हूं, शून्य हो जाए, शांत हो जाए, स्वतंत्र हो जाए, शब्द से मुक्त हो जाए, यह कैसे हो सकेगा? यह बिल्कुल हो सकेगा। यही हमारा स्वभाव है, यही हमारा निसर्ग है। और क्यों मैं यह कह रहा हूं कि निशब्द हो जाए? निःशब्द होकर ही हम प्रकृति के निकट होंगे। और प्राकृतिक के प्रकृति निकट हो जाना परमात्मा के निकट हो जाना है। जो हमारा स्वभाव है, जो हमारा एसेंसियल नेचर है, जो विजातीय नहीं है, जो बाहर से आया नहीं है, उसको खोज लेना है--उस एसेंसियल को, उस सारभूत को, जो प्रामाणिक रूप से हमारा स्वभाव है। अगर हम अपने इस स्वभाव को खोज सकें तो हम सत्य को खोज लेंगे, क्योंकि स्वभाव ही, स्वरूप ही सत्य है। वही है परमात्मा। वही है परमात्मा का मंदिर। यह जो निःशब्द का जो मैं कह रहा हूं, मौन होने का, शांत होने का, ध्यान का, साधना का, शून्य होने का, यह असंभव नहीं है। प्रतिक्षण हमारे भीतर निःशब्द भी मौजूद है लेकिन हम शब्द में उलझ गए हैं, इसलिए उसका ख्याल नहीं आता। अगर ध्यान उस तरफ ले जाएंगे। तो बराबर के नीचे निःशब्द, वाणी के नीचे मौन, ध्वनि के नीचे शून्य, साउंड के नीचे साइलेंस अनुभव में आएगी।

एक पहाड़ के किनारे जाए, आवाज करें--मैं यहां बोल रहा हूं, चुप हो जाऊं, थोड़ी देर आवाज गूंजेगी और सन्नाटा छा जाएगा। जब आवाज नहीं थी, तब भी सन्नाटा था, थोड़ी देर बाद आवाज नहीं हो जाएगी, सन्नाटा हो जाएगा। सन्नाटा शाश्वत है, आवाज गूंजती है और विलीन हो जाती है। ध्वनि शून्य से ही पैदा होती है, फिर क्रमशः शून्य में ही विलीन हो जाती है। शून्य शाश्वत है, ध्वनि सामयिक है; आती है और चली जाती है। आकाश में बादल आते हैं, घिरते हैं, फिर विलीन हो जाते हैं। कोरा आकाश सदा से है। बादल आते हैं और चले जाते हैं। बादल कितने ही घिर जाए, आकाश कितना की ढंक जाए तो भी आकाश नष्ट नहीं होता वैसा ही आकाश हम सब के भीतर है। उसी आकाश का नाम आत्मा है। उस पर शब्द के बादल, विचार के बाद इकट्ठे हैं, आते हैं, चले जाते हैं। जब वे घिरे रहते हैं तब भी वह शुद्ध, निर्विकार, शांत, हमारे भीतर मौजूद हैं। वे हट जाते हैं तब भी मौजूद हैं। बुद्ध और महावीर जिसे जानते हैं, राम और कृष्ण और क्राइस्ट जिसे पहचानते हैं वह सबके भीतर मौजूद है। वह हम सबके साथ खड़ा हुआ है। लेकिन हम बादलों को देख रहे हैं, वे आकाश को देखना शुरू कर देते हैं। हम बादलों को देखते हैं वे आकाश को देखना शुरू कर देते हैं। बादल के बाबत मैंने चर्चा की इन तीन दिनों में। वह जो असार है, वह जो

छाया का जीवन है, वह बादल है और जो सारभूत है, वह जो आधारभूत है, वह जो शाश्वत है, नित्य है, वह आकाश है। वह वास्तविक अमृत का, जीवन का, सत्य का द्वार है। प्रत्येक की संभावना है, प्रत्येक के भीतर मौजूद है।

पूछा है कि और ने कि आप जो बात करते हैं, क्या यह सबके लिए संभव होगी? क्या सभी लोग समान होते हैं? क्या सभी लोगों में एक से गुण, प्रतिभा, टैलेंट होती है?

निश्चित ही, ऐसा तो दिखाई नहीं पड़ता। कोई बांसुरी बाजती है तो सभी बांसुरी नहीं बजा सकते। कोई दौड़ता है तो सभी उसके बराबर नहीं दौड़ सकते। कोई कुछ और करता है, कोई वैज्ञानिक है, कोई कवि है, कोई लोहार है, कोई चमार है। सभी तो सब नहीं हो सकते। निश्चित दिखाई पड़ता है कि यह तो कैसे संभव है कि आप जो कहते हैं, यह सभी को संभव हो जाए मेरी समझ में आती है बात। लोहार लोहार है, कवि कवि है, साहित्यकार है, वैज्ञानिक है, ये सब अलग-अलग हैं। सबके गुण सबकी क्षमताएं, सबकी विशेषताएं अलग हैं। लेकिन क्या आप सोचते हैं, सबका निसर्ग भी भिन्न है? क्या कुछ लोग ऐसे हैं जो बिना श्वास के जीते हों। और बाकी लोग श्वास से जीते हों? कुछ लोग श्वास लेते हों, और कुछ लोग श्वास न लेते हों? या कुछ लोगों को विशेष सुविधा मिली हो श्वास की, कुछ को न मिली हो? किसी का हृदय धड़कता हो और किसी का न धड़कता हो? किसी को चोट पहुंचाए तो पीड़ा पहुंचती हो और किसी को न पहुंचती हो?

नहीं, जैसे-जैसे केंद्र की तरफ चलेंगे, पाएंगे कि समानता प्रकट होनी शुरू हो गई है। एक ख्याल से समझें; हम इतने लोग यहां इकट्ठे हैं। अगर हम सबको दौड़ाया जाए तो कोई आगे होगा, कोई पीछे होगा, कोई बहुत तेज होगा, कोई बहुत धीमा होगा, तो आप कहेंगे, ये सब समान कहां है? लेकिन सब लोग दौड़ रहे हों और एकदम से आज्ञा दी जाए कि ठहर जाओ, तो क्या ठहराने में भी सबकी क्षमता अलग-अलग होगी? दौड़ने में अलग हो सकती है, ठहरने में? ठहरने में तो समान होगी। दौड़ने में बस की क्षमता अलग हो सकती है, लेकिन ठहरने में? ठहरने में तो समान होगी। धर्म दौड़ना नहीं है, ठहर जाना है। तो संसार में भिन्नता हो सकती है, धर्म में भिन्नता नहीं होगी। चित्त दौड़ता है तो किसी का ज्यादा दौड़ सकता है, किसी का कम। लेकिन चित्त ठहर जाए तो सबका चित्त समान रूप से ठहर सकता है। किसी के चित्त में बहुत शब्द हो सकते हैं, किसी के चित्त में थोड़े शब्द, लेकिन दोनों अगर निःशब्द हो जाए, दोनों मौन हो जाएं, दोनों में कोई शब्द न हो तो क्या भेद होगा?

हम यहां इतने लोग बैठे हैं--कोई हिंदू होगा, कोई मुसलमान, कोई किसी कैद का बंदी होगा, किसी दूसरे पिंजरे का होगा, कोई कहीं का होगा कोई कहीं का होगा। अगर हम सारे लोग बैठ कर यहां सोचते रहें तो कोई कुरान सोचेगा, कोई बाइबिल सोचेगा, कोई कुछ सोचेगा, कोई कुछ सोचेगा। सब भिन्न होंगे, अगर सोचेंगे तो। लेकिन हम यहां इतने लोग बैठे हैं, अगर सबका सोचना बंद हो और सब बिना सोचे रह जाए तो कोई भिन्नता रह जाएगी? विचार भिन्न हो सकता है, निर्विचार कैसे भिन्न होगा? विचार में भिन्नता हो सकती है, शब्द में भिन्नता हो सकती है, लेकिन शून्य में? शून्य में कोई भिन्नता नहीं होगी। शून्य ही अकेला अभिन्न है, अभेद है, अद्वैत है--अकेला शून्य। अकेला शून्य ही ब्रह्म है। वहीं हम समान है, और एक निसर्ग के करीब हैं। एक केंद्र पर पहुंच गए हैं। फिर यह सबकी क्षमता है--दरिद्र की, धनी की, भूखे की, प्यासे की, महल में रहने वाले की, सड़क पर सोने वाले की। यह मौन होने की क्षमता प्रत्येक के पास है। अर्थ यह कि परमात्मा को पाने में न तो कोई टैलेंटेड है, न तो कोई विशेष रूप से गुणी है, न कोई विशेष रूप से अवगुणी है। अगर परमात्मा को पाने का ख्याल हो, ठहर जाने का, रुक जाने का, मन के मौन हो जाने का, चुप हो जाने का, शांत हो जाने का तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक सी ही क्षमता है--एक सी ही। और इसे हर व्यक्ति पा भी सकता है। यह भी एक प्रश्न पूछा है कि आप जो कहते हैं, ये बातें कुछ थोड़े से लोगों के लिए ठीक होंगी, सबके लिए तो कतई ठीक नहीं हैं।

हमेशा से हमारे मन में ऐसा रहा है--क्लासेस बनाने का ख्याल, वर्ग बनाने का ख्याल। कुछ अमीर हैं, कुछ गरीब है; कुछ बुद्धिमान हैं, कुछ मूर्ख हैं। मनुष्य को एक साथ लेने की हमारी दृष्टि नहीं रही। बहुत दिन के वर्ग-विभाजन के कारण, बहुत दिन क्लासेस रहने के कारण हर चीज में, परमात्मा के जगत में भी हमारे क्लासेस हैं। वहां भी कोई ऊपर है, चूजन फ्यू--गुरु, तीर्थंकर अवतार; फिर उनसे छोटे, उनसे छोटे शिष्य छोटे मूढ़े पर बैठे हैं, फिर उनसे नीचे जमीन पर बैठे लोग हैं, फिर फोर्थ क्लास भी है, सब वर्ग है।

परमात्मा के जगत में कोई वर्ग नहीं है। सब वर्ग मनुष्य की कल्पित ईजाद है। मनुष्य के शोषण के सारे के सारे आधार और ढंग हैं। शांत होने में कोई वर्ग नहीं है। कोई भी शांत हो सकता है। प्रत्येक की संपदा है। साधारण से

साधारण जन, जिसे दुनिया साधारण कहती हो... पैदा न होगा, पदवी न होगी, शिक्षा न होगी, सर्टिफिकेट न होंगे, साधारण हैं। पैसा होगा, पदवी होगी, सर्टिफिकेट होगा, असाधारण हैं, विशेष हैं। यह हमारे अहंकार ने सारे विभाजन किए हैं। मनुष्य है। और सब जगह क्लासेस बनाइएगा। कृपा करिए, कम से कम परमात्मा के जगत में कोई क्लासेस मत बनाएगा। वहां कोई क्लासेस, कोई वर्ग नहीं है।

यह वर्गविहीन, मौन, शांति और सत्य का जगत है, मेरी दृष्टि में व्यक्ति अधिकारी है--चाहे वह लंगड़ा हो, चाहे लूला हो, चाहे बीमार हो चाहे स्वस्थ हो, कोई भी हो। एक बार अगर वह सम्यकरूपेण, स्वयं की सत्ता के प्रति जगना शुरू हो, कूड़े-करकट को अलग करना शुरू करे तो निश्चित ही कोई भी कारण नहीं है, कोई भी कारण नहीं है कि वह वहां न पहुंच जाए जहां हम स्वरूपतः सारे लोग हैं। मैं कोई यह भेद नहीं करता। ये सब भेद शोषण की तरकीबें हैं।

प्रश्न का मतलब यह है कि आप कुछ थोड़े से लोगों से कहें, लेकिन बाकी लोगों को तो मंदिर जाने दें। बाकी लोगों को तो पूजा करने दें, बाकी लोगों को तो माला फेरने दें, बाकी लोगों को तो सत्यनारायण की कथा करने दें। कुछ थोड़े से लोगों से आप कहें, यह बाकी लोगों को तो परेशान न करें। ये तो सामान्य जन हैं हालांकि मुझे मुल्क में इधर लाखों लोगों से मिलने का मौका आया। मैं खोजता हूं कि कौन आदमी सामान्य है। अभी तक मुझे मिला नहीं; क्योंकि जो मिलता है, वह अपने को तो समझता है, शेष को सामान्य समझता है। तो मैं सामान्य आदमी को खोजता घूमता हूं। अभी तक मुझे दर्शन भी नहीं हुए। कब होंगे, कहना कठिन है। असल में कोई सामान्य है ही नहीं, इसलिए मिलना बहुत कठिन है। अभी अपने को विशेष समझते हैं। दूसरों पर दया करके वे कहते हैं, इन पर जरा कृपा करें, इन बेचारों को वहीं पुराने रास्ते पर चलने दें। हम तो समझ गए, लेकिन इनका क्या होगा? अभी तक एक भी आदमी मुझे ऐसा नहीं मिला जो यह कहे कि मेरा क्या होगा? वह तो खुद चूजन फ्यू में से है, वह तो चुने हुए कुछ चुनिंदा लोगों में से है, बाकी साधारण लोगों की बड़ी मुसीबत है। आप फिकर छोड़ दें, कोई आदमी साधारण नहीं है। हर श्वास के भीतर परमात्मा है तो कोई आदमी साधारण कैसे हो जाएगा? हर पत्ते में परमात्मा है तो कोई पता साधारण कैसे हो जाएगा? हर पत्थर में वही है तो कोई पत्थर साधारण कैसे हो जाएगा? क्या आप केवल इस कारण से... कि एक छोटा सा कंकड़ पड़ा है, जिस लोग जूतों से ठुकराए चले जाते हैं, क्योंकि उसका कोई मूल्य नहीं है जौहरी के बाजार में। और एक दूसरा पत्थर है जिसे लोग मुकुट पर लगाते हैं और लाखों रुपए खर्च करते हैं। तो आप सोचते हैं मुकुट में लगा हुआ पत्थर असाधारण है, सड़क पर पड़ा हुआ, द्वार पर जूते की ठोकर खाता पत्थर असाधारण है। लेकिन कभी आपने सोचा है, यह साधारण और असाधारण का भेद है, अगर दुनिया में कोई मनुष्य न हो? दोनों पत्थर समान है--हीरा भी, कंकड़ भी। यह मनुष्य का भेद है। यह कोहिनूर और सड़क पर पड़ा हुआ पत्थर मनुष्य का फासला है। प्रकृति में कोई फांसना नहीं है, दोनों पत्थर हैं, दोनों समान हैं।

एक दरख्त को हम बड़ा कहते हैं, एक को छोटा। मनुष्य को हटा दें, सब दरख्त समान हैं--छोटा भी, बड़ा भी। एक फूल को हम सुंदर कहते हैं, एक फूल को सुंदर नहीं कहते। मनुष्य को हटा दें। दोनों फूल हैं। न कोई सुंदर है, न कोई असुंदर है। सारे विभाजन मनुष्य की बुद्धि से पैदा होते हैं, विचार से पैदा होते हैं सारे विभाजन। मनुष्य को हटा दें, दुनिया बस है; वहां कोई विभाजन नहीं है। वहां अपवित्र नदियां नहीं हैं, वहां अपवित्र गंगा नहीं हैं। वहां पानी है, बस पानी। वहां पवित्र पर्वत नहीं है, वहां अपवित्र पर्वत नहीं है। वहां कोई भूमि तीर्थ नहीं है, वहां कोई भूमि अपवित्र नहीं है। वहां कोई हिंदुस्तान नहीं है वहां कोई पाकिस्तान नहीं है। वहां कोई काले और गौर के फासले नहीं हैं, वहां जस्ट एक्झिस्टेंस है। मनुष्य को जरा हटा कर देखें, प्रकृति में सब है, और कोई फासला नहीं है। कोई नीचे नहीं है, कोई ऊपर नहीं है। सब विभाजन मनुष्य के मन का है। उसकी अहंता के कारण सारी कैटेग्रीज हैं।

मैंने सुना है, एक आदमी मजिस्ट्रेट था। कुछ झक्की रहा होगा, जैसे आमतौर से सभी लोग होते हैं। वह अपनी अदालत में कोई कुर्सी नहीं रखता था, अकेले ही बैठता था। जब कोई आता था तो उसकी हैसियत से कुर्सी उसके पास कई थीं, कई नंबर की थीं, एक से लेकर सात नंबर की थीं, एक से लेकर सात नंबर तक की। वह पीछे के कमरे में रखी होती थीं। चपरासी से वह कहता, नंबर एक ले आओ तो चपरासी नंबर एक ले आता। नंबर एक छोटा सा स्टूल था। देख लेता आदमी की हैसियत कैसी है। अगर हैसियत बिल्कुल ही न होती तो कुर्सी की कोई जरूरत न पड़ती, बिना नंबर के ही काम चलाना पड़ता था। जरा हैसियत होती, कुछ खाता-पीता, मध्यवर्गीय आदमी होता तो वह कहता, नंबर एक ले आओ। कुछ और जरा कपड़े-लत्तों पर कलफ होता, सफेदी होती, वह कहता, नंबर दो ले आओ। कुछ और जरा आंखों में रौनक होती, रीढ़ जरा होती, जूते पर जरा पॉलिश होती, वह कहता नंबर तीन ले आओ। ऐसा नंबर चलता था। आदमी के चलने और घुसने से पहचान जाता था कि किस नंबर की कुर्सी वाला आदमी है।

एक दिन ऐसा हुआ, एक बिल्कुल ही दरिद्र, एक बूढ़ा सा लकड़ी टेकता हुआ आदमी आया। चश्मा भी था तो रस्सी बंधी थी। वह अंदर घुसा, देखा कि बिन नंबर का आदमी है। थोड़ी देर ऐसे ही रहा। पूछाः कौन हो? तो उसने कहाः मैं फलां-फलां गांव का रहने वाला हूं। मालगुजार हूं। वह एकदम चौंका कि भूल हो गई, ऊपर वाला आदमी है। उसने जल्दी से कहा कि नंबर एक ले आओ। चपरासी भीतर से लेकर जब तक लौटता था, तब तक उस आदमी ने बूढ़ा आदमी था, धीरे-धीरे खांसता था, बोला कि रायबहादुर हूं, वह वहीं से चिल्लाया कि ठहर, नंबर दो लाना। फिर वह रखने गया, दो लेने गया। तब तब उसने बताया कि मैंने वार फंड में पच्चीस हजार रुपये दान दिए हैं, उसने कहा कि नंबर तीन ला। वह बूढ़ा बोलाः एक लाख और देने का विचार है। उसने कहाः भाई ठहर--अभी बूढ़ा खड़ा ही है और नंबर की बदली होती जाती है तो नंबर चार ला। उस बूढ़े ने कहाः क्यों फिजूल परेशान कर रहे हैं? आप आखिरी नंबर बुलावा लें, क्योंकि लाख देने का विचार है, लेकिन मेरा बच्चा-बच्चा कोई भी नहीं, बड़ी जायदाद है, आखिर क्या करूंगा? सोचता हूं, सरकार को ही दे दूं। उसने कहाः आखिरी नंबर बुलवा लें, व्यर्थ क्यों परेशान कर रहे हैं? मैं बूढ़ा आदमी हूं, मैं कब तक खड़ा रहूं?

यह हमारा पागलपन है या बुद्धि? ऐसे हम कैटेग्रीज बनाए हुए हैं, वर्ग बनाए हुए हैं। यह हमारा अहंकार है, जिसने यह सब पैदा किया परमात्मा के जगत में नंबर एक से नंबर सात तक की कोई कुर्सियां नहीं है। और अगर वहां भी हों तो ऐसे परमात्मा की हत्या करनी पड़ेगी। ऐसे परमात्मा को जिंदा नहीं रहने दिया जा सकता। अगर ऐसा कोई मोक्ष हो जहां कि ये कुर्सियां हों तो मोक्ष में आग लगा देनी पड़ेगी। ऐसे मोक्ष को बरदाश्त नहीं किया जा सकता। ऐसा परमात्मा और ऐसा मोक्ष इसी वर्ग-विभाजित मन की कल्पना है। यही जो हमारा माइंड है, यह जो नंबर एक से नंबर सात तक सोचता है। यह इसी की कल्पना है, अगर ऐसा कोई मोक्ष और ऐसा कोई परमात्मा हो। नहीं, वहां सब समान हैं। वहां एक अदभुत समानता है। चाहे प्रकृति को देखें, वहीं दिखाई पड़ जाएगा। वहां एक अदभुत समानता है। वहां एक अदभुत व्याप्ति है। वहां एक अदभुत सन्नाटा और एक अदभुत साम्य है। वहां कोई विभाजन नहीं है। लेकिन हम विभाजन करते हैं। विभाजन करने वाला मन है। जहां मन नहीं है, वहां विभाजन समाप्त हो जाते हैं। थोड़ा मन से दूर हट कर देखें तो आप पाएंगे, कोई विभाजन न दिखाई पड़ेगा। पत्थर में और पहाड़ में, पौधे में और पक्षी में वही एक सत्ता अभिव्यक्त होनी दिखाई पड़ेगी--वह एक ही। कोई भेद नहीं है वहां। भेद मनुष्यकृत है, अभेद परमात्मा का है, भेद प्रकृति का है।

इसलिए मुझे कुछ दिखाई नहीं पड़ता कि कोई सामान्यजन है, सामान्य का नाम लेकर शोषण जारी रखने की कोशिश न करें। सामान्य का बहुत शोषण हो चुका, बहुत शोषण हो चुका--जारी है जारी है। रहेगा, ऐसा मालूम पड़ता है; क्योंकि हम छोड़ने का साहस करने में समर्थ नहीं मालूम होते हैं। मुझे कोई भेद नहीं दिखाई पड़ता। कोई भेद है नहीं। और जहां-जहां भेद है वहीं-वहीं मन है। तो मैं तो मन को छोड़ने को कह रहा हूं। भेद का जगत ही छोड़ने को कह रहा हूं। भेद का जगत ही मन है। मैं तो मन को ही छोड़ने को कह रहा हूं। वहीं तो हम परमात्मा में प्रवेश करेंगे। वहां भेद कैसे ले जाएंगे? वहां आपकी राष्ट्रीय रेखाएं, समाज की रेखाएं, और जाति और उपाधि की रेखाएं कैसे ले जाएंगे? वहां कोई रास्ता नहीं है, सारे भेद यही छोड़ देने पड़ेंगे।

तो यह बहाना न खोजें, यह बहाना ठीक नहीं है। इस संबंध में और भी बहुत से प्रश्न हैं, पर मैं समझता हूं, इससे उनके संबंध में आपको ख्याल होगा। आज का प्रचलित धर्म, उसमें कुछ दोषों के होते हुए भी समाज के लिए उपयोगी साबित हुआ है। इसी धर्म-व्यवस्था के कारण तप, पाप, पुण्य की कल्पना के कारण लोगों ने अस्पताल, स्कूल, अनाथगृह आदि में कुछ दान दिया है। यह तो बात ठीक है, यानी मतलब यह हुआ कि लोगों को धोखा दे रहे हैं। पाप और पुण्य के नाम पर उनसे दान मिल रहा है। तो कहा है, मैं तो दान वगैरह की कोई बात नहीं करता, तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।

पहली तो बात यह है कि धर्म का मूलतः कोई संबंध समाज से नहीं होता। धर्म अत्यंत वैयक्ति घटना है। धर्म का समूह और समाज से कोई संबंध नहीं हाता। जैसे ही धर्म सामाजिक बनता है, वैसे ही धर्म न रह कर संप्रदाय हो जाता है। जैसे ही समूह बनता है, संस्था बनती है, आर्गनाइजेशन बनता है, वैसे ही धर्म तो विलीन हो जाता है, राजनीति शुरू हो जाती है। राजनीति का संबंध समाज से है और धर्म का संबंध व्यक्ति से है। इतने ये जो धर्म दिखाई पड़ते हैं, ये कोई भी धर्म नहीं हैं, धर्म के नाम पर झूठे संगठन हैं, आर्गनाइजेशन हैं। और यही कारण है कि नाम तो धर्म का है लेकिन काम सब राजनीति के हैं। दो हजार, तीन हजार वर्ष का इतिहास क्या है? क्या यह धार्मिक, राजनीतिज्ञों के उपद्रव का इतिहास नहीं है? यह धर्म के नाम पर संगठन-धर्म का भी शोषण है और लोक-जन का भी शोषण है। धर्म का कोई संगठन हो ही कैसे सकता है? धर्म तो वैयक्तिक घटना है। मेरे और परमात्मा के बीच, मेरे और परम सत्य के बीच मेरा और आपका धर्म में कहां संबंध आता है? अगर कोई संबंध भी आता है आपसे मेरा

तो वह परमात्मा के द्वारा आता है। आपसे मेरा कोई सीधा संबंध नहीं आता। धर्म सामूहिक संबंध नहीं है, धर्म वैयक्तिक प्राण का समष्टिगत प्राण से संबंध है। वह निवेदन व्यक्ति का समष्टि से है, व्यक्ति से नहीं।

अगर कोई काम करना हो तो समूह की जरूरत है। लेकिन अगर विश्राम करना हो तो? वहां भी संगठन बनाइएगा? संगठन की वहां कौन सी जरूरत है? और संगठन होगा, दफ्तर होगा, काम-धाम चलेगा, तो नींद न आने देंगे, विश्राम न करने देंगे, वे लोग। आपको कोई झगड़ा झांसा खड़ा करना हो तो संगठन की जरूरत है, क्योंकि बिना संगठन के शक्ति नहीं आती। हिंसा के लिए संगठन की जरूरत है, लेकिन अहिंसा के लिए संगठन की कौन सी जरूरत है? प्रेम के लिए संगठन की कौन सी जरूरत है? इसलिए जब भी कोई चीज संगठित होती है तो घृणा के आधार पर होती है।

मैं अभी पीछे राजधानी में था। उन दिनों भारत और पाक के बीच नासमझी चलती थी। तो मुझे लोगों ने कहाः यह तो बड़ा हितकर है। मुल्क संगठित हो गया। जरूर ही अगर पाक से या चीन से कोई झगड़ा चले तो मुल्क संगठित हो जाएगा क्योंकि घृणा संगठन से आती है। घृणा की शक्ति संगठन करवा देती है। लेकिन कभी प्रेम के संगठन देखे हैं? घृणा के संगठन दुनिया में हैं, जो राष्ट्र हैं, नेशंस हैं, ये सब घृणा के संगठन हैं। दूसरे का डर, दूसरे से घृणा संगठन खड़ा किए हुए हैं, फौजें खड़े किए हुए हैं, एटम बम बना रहे हैं। ये सब घृणा के संगठन हैं इसलिए इन घृणाओं से हिंसा होती है, हिंसा से युद्ध पैदा होता है। सब संगठन युद्ध लाते हैं अंत में। सब संगठन कलह और झगड़ा और युद्ध लाते हैं। सब संगठन हिंसा लाते हैं। धर्म का संगठन कैसे होगा?

अगर हम ध्यान करने बैठे हों, प्रार्थना करने बैठे हों, मौन होने बैठे हो तो संगठन कहां है? अगर हम इतने लोग भी अभी ध्यान करने बैठे तो जैसे-जैसे ध्यान गहरा होगा, मन मौन होगा, बाकी लोग मिटते जाएंगे। थोड़ी देर में आप अकेले रह जाएंगे। यहां इतने लोग बैठे हैं, हजार लोग होंगे, अगर हम सारे लोग आंख बंद करके शांत हो जाए, थोड़ी देर में आप पाएंगे, आप अकेले हैं, बाकी नौ सौ निन्यानबे यहां हैं ही नहीं। हर आदमी यहीं पाएगा कि अकेला है। धर्म तो अकेले का अकेले में प्रवेश है। ए फ्लाइट ऑफ द अलोन टु द अलोन। वह तो अकेले से अकेले की तरफ उड़ान है। वहां कौन सी भीड़ कौन सा संगठन है? इसलिए आप जिस मंदिर में भीड़ इकट्ठी हो जाती है वहां जाते हैं। तो मैं मानता हूं कि आप धर्म में थोड़ी जा रहे हैं, कोई सामूहिक जलसा है, वहां जा रहे हैं। धर्म मैं जाने के लिए तो अकेले में प्रवेश करना होगा।

एक इकहार्ट नाम का फकीर था जर्मनी में। एक पहाड़ की छोटी सी झाड़ी के पास बैठा हुआ था। उसके मित्र आए थे, गांव से पिकनिक करने आए थे, उन्होंने देखा इकहार्ट अकेला है। वह गए। सोचा कि चलो कंपनी दें, साथ दें, बेचारा अकेले बैठे-बैठे घबड़ा गया होगा। सारे लोग अकेले बैठे-बैठे घबड़ा गए हैं इसलिए तो सारी दुनिया में एक-दूसरे को साथ देने की कोशिश चल रही है, एक-दूसरे के साथ होने की कोशिश चल रही है। सब आदमी अकेले-अकेले में घबड़ा गए हैं। यह अकेला बैठा है, घबड़ा गया होगा। वे गए, उन्होंने उसकी पीठ हिलाई। वह आदमी आंख बंद किए मौन था। उन्होंने कहाः दिखता है, घबड़ा गया बैठे-बैठे, इतना ज्यादा कि सो गया। हिलाया, इकहार्ट ने आंख खोली, पूछा, क्या बात है? उन्होंने कहाः सोचा, आए हैं, तुम अकेले बैठे हो, ऊब गए हों, चलो तुम्हें साथ दें। इकहार्ट बोला कि मुश्किल हो गई, इतनी देर तक हम अपने साथ थे, तुमने आकर फिर गड़बड़ कर दी। इकहार्ट ने कहाः इतनी देर तक हम अपने साथ थे, तुमने आकर फिर अकेला कर दिया। आप कृपा करो, अपनी कंपनी को कहीं और ले जाओ। इतनी देर हम अपने साथ थे। और जब आप अपने साथ होते हैं तभी आप परमात्मा के साथ होने की क्षमता उपलब्ध करते हैं।

धर्म स्वयं के साथ होना है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि धर्म के सामूहिक परिणाम न होंगे। धर्म सामूहिक घटना नहीं है, लेकिन धर्म के सामूहिक परिणाम होंगे। अगर एक व्यक्ति शांत हो जाए, परमात्मा के प्रकाश से भर जाए तो उसका जीवन और उसका आचरण सब परिवर्तित हो जाएंगे। आचरण का संबंध दूसरों से है। इसलिए उसके आचरण से दूसरे भी प्रभावित होंगे, आकर्षित होंगे, आकर्षित होंगे। दूसरों के जीवन में भी आनंद की झलक और प्रेम की झलक पहुंचेगी। धर्म का कोई संबंध दूसरे से नहीं है। लेकिन धर्म के द्वारा जो आचरण पैदा होता है, वह सामूहिक घटना है। धर्म वैयक्तिक है, धर्म का केंद्र वैयक्तिक है, धर्म की आत्मा वैयक्तिक है। उसका प्रभाव, उसका आचरण--वह सामूहिक है, सार्वजनिक है। लेकिन धर्म सामूहिक घटना नहीं है। और जब भी धर्म सामूहिक घटना बनाने की कोशिश चलती है, तभी धर्म तो मर जाता है, लाश हाथ में रह जाती है। हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई, ये धर्म के मरे हुए शरीर हैं। धर्म तो वैयक्तिक है। महावीर को होता होगा, बुद्ध को होता होगा, क्राइस्ट को होता होगा। लेकिन फिर हम उनके आस-पास जो संगठन खड़ा करते हैं, बस वही संगठन सब प्राण ले लेता है।

तो मुझे दिखाई नहीं पड़ता कि धर्म सामूहिक होने से कोई हित हुआ है। अहित हुआ है, अहित हो रहा है। वह वैयक्तिक है, वैयक्तिक ऊर्जा है। और कभी देखें, जो भी श्रेष्ठ है जीवन में, चाहे सत्य, चाहे सौंदर्य, चाहे प्रेम, सब

वैयक्तिक घटना है। कभी समूह ने सत्य को जन्म दिया है? कभी समूह ने सौंदर्य को अनुभव किया है? कभी समूह ने प्रेम किया है? जीवन में जो श्रेष्ठतम है वह व्यक्ति की निजता में, अकेले में, उसकी लोनलीनेस में, उसके एकांत में फलित और पुष्पित होता है। जो भी श्रेष्ठ है, जो भी श्रेष्ठ हुआ है कभी, वह सब व्यक्ति की निजता में, अकेलेपन में उसकी अपनी चेतना के भीतर पुष्पित और पल्लवित होता है। भीड़ में, भीड़ के नाम पर कोई अच्छे कामों का लेखा-जोखा नहीं है। समाज के नाम पर सारे अपराध लिए, हुए हैं। समाज, भीड़--वह जो क्राउड है, वही सारे उपद्रव की जड़ है। धर्म सामूहिक साधना नहीं है, संगठन नहीं है, आर्गनाइजेशन नहीं है। वैयक्तिक अनुभूति है प्रेम जैसी। प्रेम के संगठन नहीं हैं, तो धर्म के कैसे होंगे, प्रार्थना के कैसे होंगे?

तो समाज को सामूहिक धर्म से कोई हित नहीं हुआ। धर्म से हुआ है। धर्म से सदा होगा। जितना समूह से धर्म मुक्त होगा, संगठन से मुक्त होगा, उतना ही ज्यादा--उतना ही ज्यादा धर्म सत्य होता है, शुद्ध होता है।

फिर यह कहा है, दान धर्म के नाम से लोग देते हैं। मेरी बातें सुनेंगे तो दान कैसे देंगे?

कभी यह भी सोचा कि धर्म के नाम से वे शोषण करते हैं, और फिर धर्म के ही नाम से दान देते हैं। अजीब बेईमानी है, अजीब धोखा। धनपति कहता है, मेरे पिछले जन्मों के कर्मों का फल है कि इतना धन मेरे पास है। तुम दरिद्र हो, पिछले जन्मों का पाप तुम्हारे पीछे है।

छठवां प्रवचन

स्वतंत्रता, सरलता, शून्यता

कल दो दिनों में थोड़ी बातें मैंने आपसे की हैं। पहले दिन--मनुष्य का जीवन असार में, स्वप्न में छाया में नष्ट हो सकता है; अधिक लोगों का नष्ट हो जाता है। उस संबंध में थोड़े से विचार आपसे कहे थे। दूसरे दिन--कौन सा जीवन छाया का और असार जीवन है, वासना का, तृष्णा का, कुछ होने की दौड़ का, उसके संबंध में, उस आधार के संबंध में हमने सोचा। आज मैं आपसे कहना चाहूंगा, किस मार्ग से, किस क्रांति से असार जीवन की तरफ दौड़ती हुई हमारी चेतना धारा सार्थक, सत्य और सारी की ओर उन्मुख हो सकती है। इसके पहले कि मैं उसकी चर्चा करूं, एक छोटी सी कहानी आपसे कहना चाहूंगा।

एक राजा वृद्ध हो गया था। उसकी मृत्यु करीब आ गई। लगा कुछ ही दिन का और मेहमान है। दो उसके पुत्र थे। विचार में पड़ा, किसको राज्य का भार दे जाऊं? दोनों जुड़वां थे, कोई छोटा-बड़ा न था। कोई बड़ा-छोटा होता तो निपटारा कठिन न था। दोनों ही बराबर थे, दोनों ही कुशल थे, दोनों ही योग्य थे, दोनों ही प्रतिभाशाली थे, निर्णय बहुत कठिन था। कैसे निर्णय करें, कि पर जिम्मा छोड़ दे, कौन अंततः सार्थक सिद्ध होगा? तो गांव में, गांव के बाहर झोपड़े में एक फकीर रहता था। जब गांव में मुश्किल में कोई पड़ता तो उससे पूछने जाते थे। राजा भी गया। उसने जाकर उसी फकीर को पूछा, ऐसी-ऐसी उलझन है, क्या करूं? उस फकीर ने कहा, एक काम करो। अपने दोनों लड़कों को थोड़े-थोड़े रुपये दे दो। दोनों लड़कों को, दोनों के, दोनों राजकुमारों के अपने महल थे। और दोनों से कहना कि इन थोड़े से रुपयों में कुछ ऐसी चीज लाओ कि पुरा महल भर जाए, पुरा महल भर जाए। बहुत थोड़े रुपये दिए और कहा कि पूरा महल भर जाए, ऐसी कुछ चीजें लाओ।

अब आपसे ही कोई कहता, मुझसे ही कोई कहता तो हम क्या करते? पूरा महल भर जाए, बड़े महल थे। बहुत चिंता पैदा हुई। बड़े लड़के ने, पहले-पहले ने, सोच विचार के तय कर लिया। वह कुछ चीजें ले आया और सारे महल को भर दिया। रुपये थे थोड़े महल था बड़ा सिवाय कूड़ा-करकट के और कुछ भी लाया नहीं जा सकता था। तो गांव के बाहर से उसने गाड़ियों में जहां कचरा था, वह ढुलवाया। रुपये तो कचरा ढोने में लग गए। कचरा तो मुक्त मिलता है। स्मरण रखें, कचरा मुक्त मिलता है, सिर्फ ढोने में शक्ति व्यय होती है। वह गया, उसने गांव से, बाहर से, जिस कचरे को लोग बाहर फेंक आए थे और बाहर फेंकने में पैसे खर्च किए थे, उसी कचरे को वह पैसा खर्च करके वापस महल में ले आया। सारे घर में कूड़ा-करकट भर दिया। और कोई रास्ता न था। पैसे थे कम, महल था बड़ा भरना था पूरा। सिवाय कूड़े-करकट के और भरने का कोई मार्ग नहीं था। दूर-दूर तक दुर्गंध फैलने लगी। परीक्षा का दिन निकट आएगा तब तक वह कचरे को भरता गया, भरता गया। जमीन से लेकर छप्पर तक उसने सारे महल को कचरे से भर दिया। फिर भी पैसे थोड़े पड़ गए, क्योंकि कचरा ढोना भी कोई आसान बात तो नहीं है। फिर दुर्गंध से वह खुद भी घबड़ा गया। लेकिन परीक्षा के दिन तक तो कम से कम दुर्गंध सहनी ही थी।

दूसरा लड़का भी चिंतित था, विचार में था। परीक्षा का दिन करीब आने लगा, लेकिन उसका महल सूना था। वह कोई निर्णय न ले पाया। उसने बहुत सोचा, कि मैं भी कचरा भर दूं, लेकिन उसने कहा, कचरे से भी भरना कोई भरना है? इससे तो खाली रहना बेहतर है। और कचरे से भरना, अगर भर के जीत भी गया और राज्य भी मिल गया तो भी क्या करेंगे? उससे तो हार जाना बेहतर और खाली रह जाना बेहतर है। कचरे को भरकर जीत जाने में भी कोई सार नहीं है। कचरा भर कर हार जाने में भी सारे है, ऐसे उसे लगा। बहुत चिंता में था। वह भी खोजता-ढूंढता उस फकीर के पास गया जिसने यह सलाह दी थी। सुबह का वक्त था, उसने जाकर फकीर को पूछा, मैं क्या करूं? बहुत उलझन में हूं। पूरा भवन भरना है, पैसे बहुत थोड़े हैं।

फकीर ने कहाः मुझसे क्या पूछते हो? बाहर जाओ, आंख खोल कर देखो, रास्ता मिल जाएगा। दुनिया में जो जानते रहे हैं, उन्होंने सभी ने यही कहा है, आंख खोल कर देखो, रास्त मिल जाएगा। वह बाहर आया, उसने आंख खोल कर देखा, रास्ता मिल गया, वापस लौटा, सांझ को परीक्षा की घड़ी आ गई, तब तक उसका महल खाली था। अमावस की रात उतर आई। महल खाली था।

राजा, राजा के मंत्री निर्णायक सब आए। एक घर में तो इतना कचरा, इतनी गंध थी कि निर्णायक भीतर भी नहीं जा सके। उन्होंने कहाः मान लिया कि भर गया है, लेकिन भीतर कौन जाए? वे सब चिंतित थे, दूसरा महल खाली था अभी भी, अब द्वार बंद थे। पहला राजकुमार भी हैरान था कि दूसरे राजकुमार ने क्या किया? क्या वह प्रतियोगिता से हट गया? क्या उसने प्रतिस्पर्धा छोड़ दी? क्या राज्य लेने का उसका ख्याल नहीं रहा? क्या उसने

हार स्वीकार कर ली? क्योंकि न तो कोई सामान लाता हुआ देखा गया, न कोई बैलगाड़ियां आईं, न कोई मजदूर आए, न कोई भीतर आया, न कोई बाहर गया। फिर सारे निर्णायक और राजा उसके द्वार पर पहुंचे। द्वार खोले गए, राजा भी हैरान हुआ, उसने पूछाः यह तो भवन खाली है। राजकुमार ने कहाः आंखें खोलिए और देखिए, भवन भरा हुआ है। और वे सब दूंगा रह गए, भवन जरूर भरा था। राजकुमार ने बहुत से दीये जला दिए थे और प्रकाश से भवन भरा हुआ था। बहुत पैसे बच गए थे, थोड़े में ही काम हो गया था। और कुछ भी न लाना पड़ा था, दीये भी भवन में थे, तेल भी भवन में था, बाती भी भवन में थी। आगे भी भवन में थी। केवल उन सबको जोड़ देना था। अमावस की रात थी, वह भवन प्रकाश से भरा हुआ था। उसका कोना-कोना प्रकाश से भरा हुआ था। और भवन जब प्रकाश से भरता है तो खुद ही नहीं भरता, द्वार, झरोखों से, खिड़कियों से प्रकाश बाहर जाने लगता है। कचरा भरता है तो गंध बाहर पहुंचती है, प्रकाश भरता है तो आलोक बाहर पहुंचता है। वह जीत गया। लेकिन उसने राज्य लेने से इनकार कर दिया। उसने कहा, मेरे दूसरे भाई को दे दें, क्योंकि अब मुझे दिखाई पड़ता है कि राज्य भी एक कचरा है, उससे अपने जीवन को क्यों भरूं? जब प्रकाश में भवन को भरा है तो प्रकाश से स्वयं को भी भरने की प्यास पैदा हो गई है।

दो ही तरह के लोग हैं--कचरे से जीवन को भर लेने वाले और तब उनके जीवन में अगर दुर्गंध फैलने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं है। और प्रकाश से जीवन को भर लेने वाले और तब उनसे दूसरों के दीए भी जल जाए और दूसरे के अंधेरे कक्षों तक भी प्रकाश पहुंच जाए तो भी कोई आश्चर्य नहीं है। और हमेशा यही निर्णय कर लेने का है। जीवन की संपदा है थोड़ी, रुपए मिले हैं, थोड़े, समय है अल्प और पूरे जीवन को भरना है तो जल्दी में कचरा ही दिखाई पड़ता है। जल्दी से उसी से भरने में हम लग जाते हैं। लेकिन थोड़ा ठहरें, थोड़ा विचार करें, कचरे से भर कर जीत भी गए तो वह भी जीत नहीं है। उससे तो बेहतर है, खाली रह कर हार जाना। लेकिन ऐसा भी उपाय है कि भवन भी खाली हो और भर भी जाए। प्रकाश ऐसी ही भरावट है। भवन खाली भी होता है और भर भी जाता हैं। जीवन को भी प्रकाश से भरा जा सकता है।

कैसे? इन दो दिनों में थोड़ी सी मैंने भूमिका की बात की है। आज आपसे कहूं, कैसे जीवन को प्रकाश से भरा जा सकता है? क्या है बाती? क्या है तेल? क्या है दिया और कैसे इसे जलाया जा सकता है? मनुष्य के भीतर सब कुछ मौजूद है। बुद्ध के भीतर जो मौजूद होगा, राम के, या कृष्ण के या क्राइस्ट के या महावीर के भीतर जो मौजूद होगा वह हम सबके भीतर मौजूद है। लेकिन अगर बाती अलग पड़ी रहे, तेल अलग और आग अलग, तो दीया नहीं जलता और प्रकाश नहीं फैलता। इन सबका ठीक संयोग हो जाए तो जीवन आलोक से भर जाता है। इस संयोग का नाम ही धर्म है। सारी शक्तियां हमारे भीतर हैं, उन्हें ठीक संयोग का नाम ही योग है। उनके ठीक से संयोग का नाम ही धर्म है। धर्म जीवन को आलोक से भरने का उपाय है।

यह धर्म कैसे उपलब्ध होगा, उसके तीन सूत्रों पर मैं आपसे चर्चा करना चाहूंगा।

पहली बात है, चित्त की स्वतंत्रता; दूसरी बात है, चित्त की सरलता; तीसरी बात है, चित्त की शून्यता। ये तीन सूत्र यदि जीवन में फलित हों तो दीए से तेल जुड़ता है, तेल से बाती, बाती से आग और जीवन आलोक से भर जाता है।

चित्त की स्वतंत्रता--लेकिन हम सबके चित्त तो परतंत्र हैं। हम तो अपने चित्तों में, हम तो अपने मनों में दूसरों के दास और गुलाम बने हुए हैं। और मन की गुलामी बहुत गहरी है। मन की गुलामी और दासता से और कड़ी कोई गुलामी नहीं है। हम सोचते ही नहीं, सोच ही नहीं सकते, क्योंकि शास्त्रों से, शब्दों से, सिद्धांतों से, संप्रदायों से हमारे मन कैद है, आबद्ध हैं हम जब भी सोचते हैं तो जीवन से हमारा चिंतन शुरू नहीं होता, चिंतन हमारा शब्दों और सिद्धांतों से शुरू होता है। ऐसे सिद्धांतों से, ऐसे शास्त्रों से जिन्हें हम अज्ञान में ज्ञान समझ लिया है, जिन्होंने हमने अज्ञान में ज्ञान समझ लिया है, जिन्हें हम ज्ञान मान कर बैठ गए हैं, जिन्हें पकड़ कर हम रुक गए हैं; जिनके आधार पर हम सोचते हैं, विचार करते हैं। जब भी किसी सोच-विचार में कोई पूर्वपक्ष होता है, कोई प्रिज्युडिस होती है, तभी चिंतन परतंत्र हो जाता है, तब सोच-विचार बंद हो जाता है, विश्वास शुरू हो जाता है। धर्म को लोग विश्वास से, फेथ से जोड़े हुए हैं जब कि वास्तविक धर्म का संबंध विश्वास से, फेथ से रचना मात्र भी नहीं। फेथ से रंचमात्र भी नहीं है। अंधविश्वास का संबंध फेथ से है, विश्वास से है, बिलीफ से है, श्रद्धा से है। वास्तविक धर्म का संबंध विचार से है, विवेक से है, मौलिक चिंतन से है।

कैसे मौलिक चिंतन की ऊर्जा हममें प्रकट हो? कैसे चित्त स्वतंत्र हो, मुक्त हो बंधन से, उन सबसे जो हमारे मन को बांधे हुए हैं? कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई जैन है। ये सब गुलामियों के नाम हैं, ये सब स्लेबरीज हैं, ये सब दासताएं हैं। और जब तक इनसे हम बंधे हैं, तब तक चिंतन मुक्त नहीं हो सकता। और जो मुक्त नहीं है वह सत्य को पाने में कैसे समर्थ होगा? सत्य को पाने के लिए मुक्त होना आवश्यक है। ये सारी जंजीरें

तोड़ देना जरूरी हैं। जो हिंदू और जैन और मुसलमान और ईसाई और बौद्ध इन जंजीरों से मुक्त हो जाता है उसे धर्म की स्वतंत्रता उपलब्ध होती है। और जो इनसे बंधा रहता है वह संप्रदायों के घेरों में मर जाता है, सड़ जाता है, विलीन हो जाता है। लेकिन धर्म का आलोक, धर्म की मुक्ति उसे उपलब्ध नहीं हो पाती। चित्त इन संस्कारों से बहुत गहरा घिरा है। हम सोचें, हम देखें, हम थोड़ा जागें तो हमें ज्ञात होगा, हम बहुत सी बातें माने हुए बैठे हैं, बहुत सी मान्यताएं पकड़े हुए बैठे हैं। हम बहुत से सिद्धांतों को अपने मन में जमाए बैठे हैं। ऐसी परतंत्र स्थिति में, ऐसे अज्ञान में पकड़े गए विश्वासों में विवेक कैसे उठेगा? कैसे विवेक मुक्त होगा, कैसे विवेक को पर मिलेंगे, कैसे वह आकाश में उड़ सकेगा? जैसे हमने किसी पक्षी को पिंजड़े में बंद कर दिया हो, उसके प्राण छटपटाते हों, वैसे ही हम सबके विवेक की शक्ति पिंजड़े में बंद है और छटपटाती है और छूट पाती। और फिर बड़ा मजा है... और यह स्मरण रखे योग्य है कि अगर कोई पक्षी बहुत दिन तक पिंजड़े में बंद रह जाए तो पिंजड़े से प्रेम करना शुरू कर देता है। फिर अगर कोई उसका पिंजड़ा तोड़ने आए तो वह उसे दुश्मन मालूम होता है। अगर मैं आपका पिंजड़ा तोड़ने आऊं तो दुश्मन मालूम होऊंगा।

बैस्तील के किले में फ्रांस की क्रांति के समय बहुत से कैदी बंद थे। पुराने कैदी--लंबी जिनको सजा हुई ऐसे कैदी, आजीवन जिनको कैद हुई ऐसे कैदी--कोई बीस साल से बंद था, कोई तीस साल से। ऐसे कैदी भी थे जो पचास और पचपन साल से अपनी कालकोठिरयों में बंद थे। इन पचास सालों में उनके हाथों में मोटी जंजीरें रही थीं, पैरों में जंजीरें रही थीं, अंधेरा रहा था, आंखें उनकी मंदी हो गई थीं। रोज रोटी मिल जानी और अपनी सीलन भरी कोठरी में पड़े रहना। फ्रांस में क्रांति हुई, क्रांतिकारियों ने सोचा जाए और बैस्तील के किले को तोड़ कर कैदियों को मुक्त कर दें। कितना उन्हें आनंद नहीं होगा! वे गए उन्होंने द्वार तोड़े और कैदियों को कहाः तुम स्वतंत्र हो। लेकिन कैदी बाहर आए, उनकी आंखें रोशनी को देखते ही चौंधिया गईं। वह घबड़ा गए। उनमें से उनके कहने लगे, हमें हमारी कोठरियां में रहने दें, हम पर कृपा करें, हम बहुत मजे में हैं। फिर भी उन्होंने धक्के देकर जबरदस्ती उन्हें बाहर निकाल दिया। लेकिन जबरदस्ती कोई किसी को मुक्त कर सकता है? जबरदस्ती परतंत्र तो कर सकता है, लेकिन स्वतंत्र नहीं कर सकता। जबरदस्ती बांध तो सकता है, लेकिन छुड़ा नहीं सकता। कैदियों को उन्होंने जबरदस्ती धक्के देकर बाहर निकाल दिया। क्या आप कल्पना करेंगे, सांझ होते-होते बहुत से कैदी वापस आ गए और उन्होंने कहाः बड़ी दया होगी, हम कहीं भी नहीं जाना चाहते। अब हम यहीं रहना चाहते हैं। बिना हथकड़ियों के हाथ हाथ ही नहीं मालूम होते। पचास साल तक हथकड़ी पर थी, अब उसके बिना ऐसा लगता है, हाथ हाथ नहीं हैं।

जैसे आप अपने कड़े छोड़ कर नंगे खड़े हो जाए तो आपको लगे कि यह क्या हो गया? यह कपड़ा ही नहीं है, यह शरीर का हिस्सा हो गया है। इसे छोड़ कर आपको ऐसा लगेगा, मैं कुछ अधूरा हूं, कुछ कम हूं। हलका लगेगा, भार अलग हो जाएगा, अपरिचित मालूम होंगे, अपने से ही अपरिचित मालूम होंगे। हथकड़ियां उनके जीवन का हिस्सा हो गई थीं, उनके शरीर का अंग हो गई थे। गुलामी मन का हिस्सा हो जाती है और तब उसे तोड़ना बड़ा कठिन हो जाता है। और हजारों साल तक अगर गुलामी की शिक्षा दी जाए। और लोगों से कहा जाए विश्वास करो शास्त्रों पर, गुरुओं पर धर्मग्रंथों पर, सिद्धांतों पर, संप्रदायों पर। और जो विश्वास नहीं करेगा वह कष्ट पाएगा, दुख पाएगा, पाप होगा। अगर हजारों वर्ष यह बात कही गई हो, यह हमारे मन के बहुत गहरे में जंजीरें बैठ जाती है। इनको लेकर हम पैदा होते हैं और तब फिर इनको तोड़ना बड़ा मुश्किल मालूम होता है। बुत मुश्किल मालूम होता है। ये हमारे खून और हड्डी के हिस्सा हो जाते हैं। लेकिन बिन इन्हें तोड़े, बिना स्वतंत्र हुए, बिना मुक्त हुए कोई मार्ग नहीं है।

तोड़ना ही होगा, चाहे कितनी ही पीड़ा हो। जंजीरें तोड़नी ही होंगी, चाहे कितनी ही पीड़ा हो। क्योंकि यह संभव नहीं है कि मैं जंजीरों को भी बचा लूं और परमात्मा की ओर गति भी कर लूं। यह संभव नहीं है कि नाव किनारे से भी बंधी रहे और सागर की यात्रा भी हो जाए। यह संभव नहीं है, यह कभी संभव नहीं हुआ है, न कभी संभव हो सकता है।

चित्त स्वतंत्र होना चाहिए। हमने परतंत्र किया है, इसलिए हम स्वतंत्र कर सकते हैं। हमारा सहयोग है परतंत्र करने में। इसलिए अगर हम जागें और समझें कि यह हमने बांधा हुआ है इसे तोड़ देना कठिन तो है, असंभव नहीं है। और अगर सम्यक रूप से हम अपने मन के भीतर प्रवेश करें और वहां बैठी हुई जंजीरों को पहचान लें--जो जंजीरों को पहचान लेने में एक खूबी है। अगर जंजीरें दिखाई पड़नी शुरू हो जाए तो उनके साथ जीना कठिन हो जाता है। अगर अनुभव में आना शुरू हो जाए कि मैं बंधा हूं तो छूटने की आकांक्षा शुरू हो जाती है। अनुभव ही हमें नहीं है।

एक जादूगर के संबंध में मैंने सुना है, उसके पास जो भेड़ें थीं, उन सबको हिप्नोटाइज करके, उन सारी भेड़ों को सम्मोहित करके उस जादूगर ने कह रखा था, तुम भेड़ नहीं हो, तुम तो शेर हो, सिंह हो। सारी भेड़ें मानती थीं हम शेर हैं, हम सिंह हैं इसलिए मजे से जीती थीं। दूसरी भेड़ें तो भेड़ें दिखाई पड़ती थीं, खुद सिंह मालूम होती थीं। जब एक भेड़ को काट कर जादूगर खा जाता था तो दूसरी भेड़ें कोई फिकर नहीं करती थीं, क्योंकि उनको तो ख्याल

था, हम सिंह है। दूसरी भेड़ें कटती जाती और मरती जातीं और हर भेड़ का नंबर धीरे-धीरे आता जाता। जादूगर से किसी ने पूछा कि तुम्हारी भेड़ें भागती नहीं, हमारी भेड़ें तो भागती हैं। जादूगर ने कहा, इनको हमने समझा दिया है, इनके बहुत गहरे मन में बिठा दिया है कि तुम तो सिंह हो, तुमको कौन मार सकता है? और यह समझ इन्हें हमसे बांधे रहते है।

हम सबको सिखाया गया है, आप तो स्वतंत्र हैं, जब कि आप बहुत गहरे में गुलाम हैं। इसलिए स्वतंत्रता का मजा हम लेते रहते हैं, बगैर इस बात को जाने हुए कि हमारे पूरे प्राण गुलाम हैं। और हम थोथी आजादियां तो खोजते रहते हैं कि एक मुल्क से दूसरा मुल्क आजाद हो जाए, एक जाति से दूसरी जाति आजाद हो जाए; लेकिन बहुत गहरे में हमारा चित्त, हमारा मन, हमारी चेतना मुक्त हो, स्वतंत्र हो, यह न हम खोजते हैं, न हमें ख्याल आता है, क्योंकि हमें सिखलाया ही यह गया है कि मन तो मुक्त है ही, स्वतंत्र है ही। मन तो गुलाम है ही नहीं, मन तो राजा है। झूठी है यह बात। मन बिल्कुल ही गुलाम है। और जब तक यह दिखाई न पड़े--भेड़ को अगर यह अनुभव न आ जाए कि मैं भेड़ हूं, तो फिर उस जादूगर से भयभीत हो जाएगी क्योंकि तब वह हत्यारा दिखाई पड़ेगा। अगर आपको दिखाई पड़ जाए कि जिन मंदिरों में आज सिर झुका रहे हैं, जिन पुजारियों, धर्म पुरोहितों, संन्यासियों के पैर छू रहे हैं, जिन धर्मग्रंथों को सिर पर लेकर घूम रहे हैं, अगर आपको ख्याल आ जाए थक इसी सबमें आपके चित्त का बंधन छिपा हुआ है तो बहुत स्थिति बदल जाएगी। आपको दिखाई पड़ेगा, यह तो कड़ियां हैं, जो मुझे बांधे हुए हैं। और हम इन कड़ियां को चूम रहे हैं और नमस्कार कर रहे हैं। नहीं, जिन लोगों ने भी--महावीर ने या बुद्ध ने या क्राइस्ट ने सत्य को पाया होगा, उन्होंने किन्हीं कड़ियों में बंधे रह कर नहीं पाया है, बल्कि सारी कड़ियां तोड़ कर पाया है। लेकिन हम उनको ही अपनी कड़ी बना लगते हैं। जो स्वतंत्र हुए हैं, वही उनके बंधन होने का कारण बना लेते हैं।

महावीर का एक शिष्य था गौतम। बहुत वर्ष तक महावीर के पास था। प्रमुख था, बहुत से शास्त्र महावीर के पीछे जो लिखे गए, उनके गौतम का हाथ है। वह उसी ने लिखवाए, उसी ने लिखे ने उनको याद रखा। लेकिन महावीर के मरते तक उसको सत्य के कोई दर्शन नहीं हुए थे। महावीर को उसने पूछा कि क्या कारण है कि मैं घर छोड़ कर आ गया, पत्नी, बच्चे, धन, संपत्ति सब छोड़ दिए, अब मेरे पास छोड़ने को क्या है? लेकिन सत्य का अनुभव क्यों नहीं होता? महावीर ने कहा, तूने सब छोड़ा, लेकिन मुझे पकड़ लिया है। संसार छोड़ा, बच्चे, पत्नी, घर-द्वार, लेकिन मुझे पकड़ लिया। बच्चे और पत्नी छोड़ देना कठिन नहीं है। वह चित्त की बहुत गहरे में गुलामी नहीं है। चित्त के गहरे में गुलामी और भी ज्यादा दूसरी है। महावीर ने कहा, तूने मुझे पकड़ लिया। मैं तेरी गुलामी हो गया हूं। मुझे भी छोड़। लेकिन महावीर को छोड़ना बड़ा कठिन है। बुद्ध को छोड़ना, मोहम्मद को, क्राइस्ट को, राम को छोड़ना बड़ा कठिन है। इनसे तुम्हारे प्राण बंध गए हैं। वह सब मिलकर भी आपके सामने आकर कहें कि कृपा करो, हमको छोड़ दो तो उनके कहने के बाद आप उनको धन्यवाद दोगे और उनके पैर पड़ोगे कि आपने बहुत अच्छी शिक्षा दी, और सदा-सदा हमको इसी भांति सम्हाले रहना। और आपकी कृपा ही तो भवसागर जरूर पार हो जाएगा।

बुद्ध ने लोगों से कहा कि मेरी मूर्तियां मत बनाना। लेकिन इस समय बुद्ध की जितनी मूर्तियां हैं जमीन पर, और किसी की नहीं हैं। पर्सियन और उर्दू में तो बुत शब्द है। बुत, वह बुद्ध का ही रूपांतर है। बुत का मतलब ही मूर्ति हो गया। इतनी मूर्तियां हैं बुद्ध की, बुद्ध शब्द का अर्थ ही बुत, मूर्ति हो गया। और बुद्ध ने कहा था, मेरी मूर्ति मत बनाना। क्योंकि मूर्ति बांध लेती है और पकड़े लेती है और जकड़ लेती है। लेकिन बुद्ध को जो मानते हैं, उनकी मूर्ति के नीचे सिर रखे बैठे हैं और पूछ रहे हैं कि तुम भगवान हो।

महावीर ने लोगों से कहाः कोई भगवान नहीं है, किसी की पूजा मत करो, अपने को बदलो। लोगों ने कहाः भगवान आ गया, भगवान का अवतार आ गया। महावीर के पैर पकड़ लिए और हजारों साल से उनको भगवान महावीर कहे जा रहे हैं। एक जगह मैं इन महावीर भगवान के पागलों के बीच में बोलने गया था, तो मैंने कहाः महावीर, तो एक ने मुझसे कहाः कृपा करें, कम से कम भगवान तो जोड़ें! अकेला महावीर कह देते है तो हमको बड़ा दुख होता है। तो मैंने कहाः तुम्हें शायद पता भी न हो, महावीर ने कहा है, कोई भगवान नहीं है। जिसकी तुम प्रार्थना करो और पूजा करो, जो तुम्हें मुक्त कर दे। तुम्हीं हो भगवान अगर तुम खोजोगे तो उपलब्ध कर लोगे। लेकिन इस बात को सुन कर तुमने महावीर को भगवान बना लिया, और तुम महावीर को भगवान मान कर पकड़ कर बैठ गए। पुराना भगवान हटा, महावीर का मंदिर खड़ा हो गया। विष्णु की, राम की पूजा हटी तो महावीर का मंदिर खड़ा हो गया। विष्णु की, राम की पूजा हटी तो महावीर की पूजा शुरू हो गई।

हम कुछ ऐसे लोग हैं कि एक दासता छोड़ते हैं, तत्क्षण दूसरी पकड़ लेते हैं। जब दूसरी पकड़ने का रास्ता पूरा तैयार हो जाता है तभी हम पहली छोड़ते हैं। दासताएं बदलती जाती हैं आदमी का मन नहीं बदलता। वह मन वही

का वही है। कम्युनिस्ट हैं, उन्होंने सब छोड़ दिया। कहा कि धर्म है अफीम का नशा और यह सब है पाखंड। इसलिए राम को छोड़ो, कृष्ण को छोड़ो, क्राइस्ट को छोड़ो, उन्होंने सब मंदिर खाली करवा दिए, और उन्हें पता भी न रहा कि मंदिर, इधर से उन्होंने मूर्तियां खाली कीं। पीछे से मार्क्स की, एंजिल्स की, लेनिन की, स्टैलिन की मूर्तियां आ गईं। यहां उन्होंने पुरानी कब्रें उखाड़ीं और क्रेमलिन के पास लेनिन की कब्र बना दी और उस पर हर साल पूजा करते हैं और फूल चढ़ाते हैं और सलामी देते हैं। मंदिर बदल जाते हैं, मूर्तियां बदल जाती हैं लेकिन भगवान कायम रहता है क्योंकि हमारी गुलामी नहीं बदलती। तो कम्युनिस्ट राम से छुड़ा देते हैं, कृष्ण से क्राइस्ट से तो फिर लेनिन और मार्क्स। बाइबिल, गीता और कुरान को कह देते हैं। कचरा तो फिर दास कैपिटल को लिए सिर पर घुसते हैं। तो फर्क नहीं पड़ता।

तो फिर अगर बहुत हिम्मत की तो दास कैपिटल को भी जोड़ देते हैं राम, कृष्ण सब छुट जाते हैं तो फिर साइंस का सुपरस्टीशन पैदा होता है। आइंस्टीन जो कहता है, वह सत्य। न्यूटन जो कहता है, वह सत्य। चाहे आइंस्टीन ही चिल्लाकर कहता रहे कि हमें सत्य का कोई पता नहीं, हम तो सत्य के आस-पास थोड़ा बहुत सोचते हैं, विचारते हैं, काम चल जाता है। सत्य का हमें कोई पता नहीं। लेकिन फिर विज्ञान का धर्म पैदा होना शुरू हुआ। पुराने मनीषी और ऋषि हटे तो वैज्ञानिक उनकी जगह बैठने शुरू हो गए। लेकिन हमारा चित्त गुलामी नहीं छोड़ता। मालिक बदल लेता है, लेकिन गुलामी नहीं छोड़ता। मैं आपसे कहना चाहता हूं, मालिक बदलने में अर्थ नहीं है, गुलामी तोड़ देने में अर्थ है। चित्त को मुक्त करिए, सत्य कोई भी आपको नहीं दे सकता। सत्य किसी ग्रंथ से और गुरु से नहीं मिल सकता। और सत्य किसी संप्रदाय की बपौती नहीं है। और परमात्मा किसी मंदिर में कैद नहीं है। जीवन है सत्य, जीवन है, शास्त्र, जीवन है परमात्मा। इस पढ़िए, इसे देखिए; नहीं तो बड़ी भूल हो जाती है। रवींद्रनाथ एक बजरे पर थे रात में और सौंदर्य शास्त्र पर एक ग्रंथ पढ़ते थे, एस्थेटिक्स पर एक ग्रंथ पढ़ते थे। सौंदर्य के प्रेमी थे तो सौंदर्य का ग्रंथ पढ़ते थे। रात देर तक दो बज गए होंगे। जलाए हुए दीये को नाव में अपने बजरे के झोपड़े में बैठे हुए सौंदर्य शास्त्र का ग्रंथ पढ़ते रहे। फिर किताब बंद की, थक गए, दीया बुझाया। दीया बुझाते ही चौंक गए। ग्रंथ पढ़ने में लगे थे, बाहर पूर्णिमा का चांद झोपड़े के बाहर खड़ा था। नदी की लहरों पर उसकी चांदनी बिखर रही थीं। आकाश सन्नाटे और मौन में था। छोटी सी बदलियां आकाश में तैर रही थीं। खिड़की पर जाकर खड़े हुए और माथा ठोक लिया और कहा कि मैं सौंदर्य शास्त्र को पढ़ने में समय गंवाता रहा और सौंदर्य द्वार पर खड़ा हुआ है। सौंदर्य द्वार पर खड़ा हुआ है, हम सौंदर्य शास्त्र पढ़ रहे हैं। परमात्मा भगवान के बाहर दस्तक दे रहा है, हम रामायण पढ़ रहे हैं।

जीवन है छोटे-छोटे पौधों में, पक्षियों में, इस चारों तरफ व्याप्त जगत में सारा रहस्य प्रकट हो रहा है। हम आंखें फोड़ रहे हैं, कंदील जलाकर धुआं ले रहे हैं उसका और किताबें पढ़ रहे हैं।

नहीं, किताबों में नहीं है, न शब्दों में है। सत्य है बहुत विराट। कोई किताब उसे अपने में नहीं छिपा सकती। सत्य है बहुत अनंत। कोई शब्द उसे अपने में नहीं समा सकता। सत्य के बहुत विराट; क्षुद्र वाणी उसे प्रकट नहीं कर सकती। लेकिन प्रकट हो रहा है अनंत-अनंत रूपों में। चारों तरफ आंख खोल कर देखने की बात है। लेकिन अब आपको भगवान का ख्याल आता है तो आप मंदिर में भागे हुए जाते हैं। अब भगवान का ख्याल आए तो दीवालों से बाहर आए, दीवालों के भीतर न जाए क्योंकि दीवालें बांधती हैं, दीवालें रोकती हैं। दीवालें तोड़ दें और मुक्त हों। चित्त पर सारी दीवालें तोड़ देनी जरूरी हैं। और जब चित्त पर कोई दीवाल न रह जाए, किसी ग्रंथ की, किसी शब्द की, किसी सिद्धांत की तो एक अभूतपर्व क्रांति घटित होती है--चित्त स्वतंत्र होता है। चेतना जागती है और मुक्त होती है उसके बंधन और कड़ियां गिरती हैं और उसमें पौरुष और गरिमा जाती है। उसे स्मरण आता है अपने होने का। मैं हूं, उसका बोध जगता है।

लेकिन हम यदि बंध रहें, यह बोध कभी पैदा नहीं होगा। हम अगर जमीन पर घिसटते रहें, तो यह बोध कभी पैदा नहीं होगा। यह बोध पैदा करने के लिए साहस की, विचार की जरूरत है।

इन तीन दिनों में बहुत सी बातें मैंने कहीं हैं, बहुत सी चोटें की हैं, सिर्फ इसी ख्याल से कि यदि आपको अपनी जंजीरें मालूम हों, उन्हें तोड़ने का बोध पैदा हो तो आपको दिखाई पड़ेगा कि चित्त के सारे के संसार, चित्त की सारी कंडीशनिंग, चित्त में बैठे हुए सारे विचार आपको परतंत्र किए हुए हैं। क्या कभी आपने यह ख्याल किया कि जो भी विचार आपके भीतर बैठे हैं, वे आइडियालॉजी, उनमें कोई भी आपकी अपनी नहीं है, किसी और ने आपको दी हैं, उधार हैं, दूसरे से आई हैं? कभी आपने ख्याल किया है कि उनमें से कुछ भी आपसे पैदा नहीं हुआ है? सब दूसरों का है, उधार है, सब संग्रह है, हमने बाहर से इकट्ठा कर लिया है। विचार तैर रहे हैं हवाओं में, हम उन्हें इकट्ठा किए जा रहे हैं। फिर हम कहते हैं, मेरा संप्रदाय, मेरा शास्त्र। आपका इसमें कुछ भी नहीं है। सब आपने औरों का गिन लिया।

बुद्ध कहा करते थे, मेरे गांव में एक ऐसा युवक था, नदी के किनारे बैठ कर दूसरों की गाय-भैंसे बिना करता था। अहीर था, उसके पास कोई गाय-भैंस नहीं थी तो वह दूसरों की गाय-भैंस निकलती थीं, उनकी गिनती किया करता था कि गांव में किसकी कितनी भैंस हैं, किसकी कितनी गाय, किसके कितने बैल! तो लोगों ने उससे कहा कि तू अपना जीव व्यर्थ गंवा रहा है। दूसरों की गाय-भैंस गिनने से क्या होगा? तो अपनी भी कोई गाय-भैंस है?

हमसे कोई पूछे, हमारा अपना कोई अनुभूतिजन्य विचार है? या कि हम दूसरों के विचार गिन रहे हैं, दूसरों की गाय-भैंस गिर रहे हैं? राम ने क्या कहा, बुद्ध ने क्या कहा, महावीर ने क्या कहा, क्राइस्ट ने क्या कहा, इसको गिन रहे हैं कि हमारा भी कोई अपना विचार जन्मा है? अपने विचारों को पकड़ें और परखें, आप पाएंगे सब पराए हैं। और जो पराए का है, वह शक्ति नहीं बन सकता। जो पराए का है, उसकी आपके भीतर जड़ें ही नहीं हैं। वे तो कागज का फूल हैं जो हम बाजार से खरीद लाए हैं और घर में लटका लिए हैं। न इनमें गंध हैं, न इनमें प्राण है। अपने फूल पैदा करने हो तो पौधे लगाने पड़ते हैं, बीज बोने पड़ते हैं, बगीचा सम्हालना पड़ता है। उनकी जड़ों को पानी देना पड़ता है। सुरक्षा करनी पड़ती है, तब अपने पौधे लगते हैं और उनमें बीज अंकुरित होता है, फूल बनता है, सुगंध आती है। वह फिर जीवित फूल होता है। जीवित विचार और बात है। मृत विचारों को संकलित कर लेना, डैड थॉटस को इकट्ठा कर लेना और बात है। चित्र परतंत्र हो जाता है अगर मृत विचार संगृहीत हो जाए। और चित्त मुक्त होता है अगर इन मृत विचारों से छुटकारा पा लें।

पहले तो बहुत दरिद्रता मालूम होगी। लगेगा, मैं तो सब खो बैठा जब कोई भी विचार मेरा नहीं है तो मैं तो अज्ञानी हो गया। लेकिन यह अज्ञान बहुत डिवाइन है। यह अज्ञान बहुत डिवाइन इग्नोरेंस है, यह बहुत दिव्य है, भागवत है। क्योंकि साफ होगी, उधार फूल अलग होंगे, कागज के फूल फेंक दिए जाएंगे। भूमि साफ होगी तो अपने बीज बोए जा सकते हैं।

एक माली बगीचा तैयार करता है। घास को उखाड़ता है, फिजूल झपड़ों को अलग करता है, घास को अलग करता है, जमीन को खोदता है, कंकड़-पत्थर अलग करता है, फिर सुरक्षा करता है, फिर बागुड़ लगता है। फिर बीज बोता है, फिर पानी सींचता है, श्रम करता है। फिर प्रतीक्षा करता है, प्रेम करता है, प्रतीक्षा करता है, तब पौधे जन्मते है। फिर बढ़ते हैं और तब उनमें फूल आते हैं। स्वयं का विचार भी ऐसे ऊपर से नहीं थोपा जाता। वह भी सब घास-पात उखाड़ कर फेंक देनी पड़ती है। यह सब घास-पात है जो हमने बाहर से इकट्ठा कर ली है। इसे लगाना नहीं पड़ता है, इसके बीज हवा में उड़ते रहे हैं। आप अपने घर को थोड़े दिन के लिए खाली छोड़ दें, उसमें घास-झंखाड़ आपने आप पैदा हो जाएगा। उसे लगाना नहीं पड़ता, उसे उखाड़ना पड़ता है। लेकिन अगर सुंदर फूल आपको लगाने हो तो लगाने पड़ते हैं, जमाने पड़ते हैं। अगर अपने विचार को जगाना हो तो लगाना पड़ता है। अगर दूसरों के विचारों से काम चलाना हो तो आप कुछ न करें, वह अपने आप उनके बीज हवाओं में उड़ रहे हैं। वह आपमें बैठ जाएंगे और घास उगा देंगे और आपके भवन को कचरे से भर देंगे। गाड़ियां ले जाकर बाहर से लाना भी नहीं पड़ेगा। लेकिन, प्रकाश का कुछ और रास्ता है। गंध का, फूल का कुछ और रास्ता है।

पहली शर्त है, चित्त स्वतंत्र हो। विचार के जन्म की, विवेक के जन्म की पहली भूमिका है, चित्त मुक्त हो समस्त संप्रदायों से, समस्त शास्त्रों से। सोचते होंगे, मैं बड़ा संप्रदाय और शास्त्र-विरोधी हूं। सोचते होंगे, मैं बड़े धर्म की विरोध की बात कह रहा हूं। नहीं, धर्म का जन्म ही इसी भांति होता है। धर्म का जन्म और किसी भांति होता ही नहीं। जो भी मनुष्य बाहर से इकट्ठा मन में कर लेता है उससे छूट कर ही धर्म की ऊर्जा प्रकट होती है। पहली बात।

दूसरी बात है, चित्त सरल हो, स्वतंत्र हो, सरल हो। सरलता का क्या अर्थ है। क्या अर्थ है कि आप हाथ का कता हुआ कपड़ा पहनने लगें तो आप सरल हो जाएंगे? या एक बार भोजन करने लगें तो सरल हो जाएंगे? या लंगोटी लगा लें तो सरल हो जाएंगे? या साग-सब्जी या घास-पात खाने लगें तो सरल हो जाएंगे? नहीं, सरलता ऐसी सस्ती बात नहीं है। और न सरलता इतनी सरल बात है। ये सब जिसको हम सरलता कहते हैं, यह बहुत कांप्लेक्स और जटिल चित्त का लक्षण है। एक आदमी को सरल होना है, पहले बहुत अच्छे कपड़े पहनता था, उसने एक लंगोटी लगा ली और कहने लगे, कितना सीधा है, कितना सरल, कितना साधु है! सब कपड़े छोड़ दिए, एक लंगोटी लगाता है। पहले बहुत अच्छा खाना खाता था, अब उपवास करने लगा, व्रत रखने लगा। लोग कहने लगे, कैसा परिवर्तन हो गया! कितना सीधा और कितना सरल हो गया। पहले अकड़ कर चलता था। अब जिससे भी मिलता है, झुक कर नमस्कार करता है और कहता है, मैं तो बहुत विनम्र आदमी हूं, मैं कुछ नहीं हूं, मैं तो ना-कुछ हूं। तो हम कहते हैं, कितना विनम्र और कितना सरल आदमी है! बहुत समझेंगे, देखेंगे, इस तरह की विनम्रता के पीछे, अहंकार छिपा बैठा होता है। क्योंकि जो आदमी यह कहता है कि मैं बहुत विनम्र हूं उसे अभी मैं भूला नहीं है। जो कहता है, मैं बहुत विनम्र हूं, उसे अभी मैं भूला नहीं है। जो कहता है, मैं बहुत विनम्र हूं, उसे अभी मैं, ईगो, अहंकार अभी भूला नहीं है। अहंकार ने नई शक्ल ले ली है। अब वह विनम्र हो गया है। अब उसने विनम्रता को ओढ़ लिया है।

जो आदमी कहता है कि मैं तो बहुत सीधा-सादा जीवन पसंद करता हूं, खादी पहन ली, रूखा-सुखा खा लिया, इस आदमी का मन सीधा-सादा नहीं है।

बहुत हैरान होंगे आप, एक गांव में ऐसा हुआ, एक फकीर का आगमन हुआ, बड़ा संन्यासी था, दूर तक उसकी ख्याति थी, नग्न रहता था। गांव के राजा ने स्वागत द्वार बनवाए, गांव के राजा ने रास्ते पर कालीन बिछवाए, उस फकीर के स्वागत को रास्ते पर। गांव के बाहर गया, सारा राजदरबार गया। खुद रानी गई। फकीर का बचपन का मित्र था। दोनों एक ही पाठशाला में साथ-साथ पढ़े थे। जब फकीर आया, आने के एक दिन पहले ही लोगों ने उसे खबर दी कि वह जो राजा है, जिसकी राजधानी में तुम जा रहे हो, अपना दंभ दिखलाने के लिए कि मैं कुछ हूं, सारी राजधानी को साफ करवा रहा है, द्वार बनवा रहा है, रास्तों पर बहुमूल्य कालीन बिछवा रहा है, वह तुम्हें हीन करना चाहता है, वह तुम्हें नीचा दिखाना चाहता है। फकीर हंसा। और बहुत से फकीर हंसते है, बहुत से लोग हंसते हैं, और हम सोचते होंगे, हंसने में बड़ी सरलता है, लेकिन हंसने में बड़ा गहरा दंभ हैं। बड़ी चोट, बड़ी हिंसा भी हो सकती है। फकीर हंसा। उसने कहा, देख लेंगे। हम मस्तों को क्या फिकर?

जिस दिन स्वागत हुआ--नंगा फकीर था--जिस दिन वह राजमहल के द्वार पर आया, बहुमूल्य कालीनों पर चला तो सारे लोग दंग हुए। घुटने तक उसके पैर कीचड़ से भरे थे। सब लोग हैरान हुए, वर्षा के दिन न थे, सूखा था, गर्मी के दिन थे, रास्ते सूखे पड़े थे। इतने पैर कीचड़ में कैसे भिड़ गए? राजा ने महल में पहुंचकर निश्चित होने पर जब उसे बहुमूल्य सिंहासन पर बिठाया तो वह अपने कीचड़ भरे पैरों को पालथी मार कर बैठ गया। राजा ने निश्चित हो जाने पर पूछा कि कृपया क्षमा करेंगे, पूछना मुझे नहीं चाहिए, लेकिन मार्ग में कोई कष्ट हुआ क्या? पानी गिरा क्या? कीचड़ थी क्या? ये घुटने तक आपके पैर कीचड़ में कैसे भिड़ गए? मौसम सूखा है, गर्मी के दिन हैं, पानी का पता नहीं है, पानी को लोग तरस रहे हैं, इतनी कीचड़ सड़क पर कैसे मिल गई? उस फकीर ने कहाः तुम क्या समझते हो? तुम अगर बहुमूल्य कालीन बिछा कर अपनी शान-शौकत दिखा सकते हो तो हम भी फकीर हैं, हम कीचड़ भरे पैरों से कालीनों पर चल सकते हैं।

यह विनम्रता और नग्नता के भीतर भी अहंकार बैठा हुआ है। यह खूब नये रूपों में बैठा है, पहचानना कठिन है। एक आदमी मंदिर जाता है, सीधा-सरल आदमी है, रोज मंदिर जाता है। लेकिन वह देखता हुआ जाता है कि कौन-कौन देख रहे हैं कि मैं मंदिर जा रहा हूं। वह मंदिर में पूजा भी करता जाता है, वह पीछे झांक कर देखता जाता है कि जिनको दिखाना था वह आ गए कि नहीं। वह लौटता है, वह मन में दंभ लेकर लौटता है कि मैं धार्मिक हूं।

मोहम्मद ने कहा है, उनके परिचित का एक लड़का एक दिन सुबह उनके साथ नमाज पढ़ने को मस्जिद में गया। पहले दिन गया। रोज तो सोया रहता था। मोहम्मद कभी उसको कहने नहीं कि चलो। एक दिन सुबह-सुबह जागा हुआ था, मोहम्मद नमाज को जाते थे। उन्होंने कहाः चल, तू भी चल। वह मोहम्मद के साथ गया। नमाज की, लौटा। जब लौट रहा था तो उसने मोहम्मद से कहा कि लोग भी कैसे पापी और अज्ञानी हैं, अभी तक सो रहे हैं। मोहम्मद वहीं रुक गए। उन्होंने परमात्मा से कहा कि हे परमात्मा, मुझसे भूल हो गई जो इसको मस्जिद ले गया। कम से कम रोज सोया रहता था तो यह दंभ तो न था कि मैं मस्जिद गया और दूसरे पापी अभी तक सो रहे हैं।

धार्मिक आदमी को देखिए थोड़ा वह चारों तरफ अधार्मिक लोगों में बड़ा रस ले रहा है। यह सारी दुनिया अधार्मिक देख कर उसको बड़ा मजा आ रहा है, उसके अहंकार की तृप्ति हो रही है। जहां भी मौका उसे मिल जाए किसी को अधार्मिक सिद्ध करने का, वह चूकेगा नहीं। और तिलक नहीं लगाया है तो वह समझता है कि अधार्मिक है। अगर मंदिर नहीं गए हैं तो समझता है, अधार्मिक हैं। अगर जनेऊ नहीं बांधा है तो वह समझता है, सब संस्कृति और धर्म नष्ट हो गया। कैसी-कैसी मूर्खता की बातें हैं! कोई तिलक लगाने से, कोई मंदिर जाने से, कोई जनेऊ पहनने से कोई धर्म होता है? और अगर इनसे धर्म होता है तो ऐसे धर्म से भगवान जितने जल्दी छुटकारा दिला दें दुनिया का, उतना बेहतर है। धर्म कुछ और बड़ी बात है। धर्म इन क्षुद्रतम बातों में नहीं है। इन क्षुद्रतम बातों में हमारी क्षुद्र बुद्धि प्रकट होती है, धर्म नहीं। इन बातों को हम निर्मित करते हैं--क्षुद्र लोग। और हमारा यह छोटा सा मिडियाकर माइंड, यह छोटा सा दिमाग, यह इन सारी चीजों को निर्मित करता है, बांधना और बनाता है। और फिर इनको घेर कर, इन सबको घेर कर कोई खड़ा हो जाए तो उसे आप सरल आदमी मत समझ लेना। या आप खुद ऐसे हो जाए तो सरल मत समझ लेना आप अपने को। सरलता, ह्युमिलिटी बड़ी और बात है। सिंप्लिसिटी बड़ी और बात है। बहुत और बात है। सीखी नहीं जाती सरलता, थोपी नहीं जाती। भोजन और कपड़ों से उसका संबंध नहीं है। फिर किस बात से संबंध है? संबंध है सरलता का इस बात से--मैं जानूं, कितना मैं जानता हूं। सोचूं, कितना मेरा ज्ञान है।

साक्रेटीज था। उसके गांव में एक आदमी को देवी आती थी। उस देवी से किसी ने पूछा कि इस गांव में, एथेंस में सबसे ज्यादा ज्ञानी कौन है? उस देवी ने कहा साक्रेटीज। तो लोग भागे हुए साक्रेटीज के पास गए और कहाः देवी ने कहा है, तुम्हीं इस गांव में सबसे बड़े ज्ञानी हो। साक्रेटीज ने कहाः जरूर कोई भूल हो गई। मैं जितना जानता हूं इतना ही मुझे ज्ञात होता है कि मैं अज्ञानी हूं। जितना मेरा ज्ञान की खोज बढ़ती है उतना मुझे अपने अज्ञान का पता चलता है। जाओ, कुछ भूल हो गई। मेरे से एथेंस में मुझसे बड़ा अज्ञानी कोई भी नहीं है।

ज्ञान को पहचानें, सरलता पैदा होगी। ज्ञात होगा, मैं कुछ भी नहीं जानता। अपनी शक्ति को पहचानें तो ज्ञात होगा, क्या मेरी शक्ति? सूखे पत्ते की भांति उड़ा जाता हूं और समझता हूं, मैं कुछ हूं।

एक महल के पास कुछ बच्चे खेलते थे। पत्थर का एक ढेर था एक बच्चे ने एक पत्थर उठाया और ऊपर फेंका। जब पत्थर ऊपर उठने लगा, जब उसने देखा, मैं ऊपर उठ रहा हूं, उसने नीचे पड़े पत्थर के ढेर में, बहुत पत्थर पड़े थे, उसने कहाः मित्रो, मैं जरा यात्रा पर जा रहा हूं। पत्थर चौंक गए। निश्चित ही कोई झूठ की तो बात न थी। वह यात्रा को जा ही रहा था, ऊपर उठा जा रहा था। वे चौंके हुए देखते रहे। उनके तो पंख न थे। कैसा शक्तिशाली पत्थर है जो ऊपर जा रहा है! फिर वह महल की खिड़की से जाकर टकराया। कांच चकनाचूर हो गया। उसने कहाः कितनी बार मैंने नहीं कहा कि मेरे रास्ते में कोई न आए, नहीं तो चकनाचूर हो जाएगा। खिड़की फूट गई थी। वह भीतर गया, फर्श पर गिर पड़ा। गिरते ही उसने कहाः काफी लंबी यात्रा हुई, थोड़ा विश्राम कर लें। भवन के नौकरों को पता चला। आवाज हुई, खटका हुआ, भागे गए पत्थर को उठाया और वापस फेंका। जब पत्थर वापस गिरने लगा, उसने कहाः काफी यात्रा की, एक शत्रु का नाश किया, अब आपस लौट चलें। जा के जब अपने ढेर में वापस गिरा तो उसने लोगों से कहा, बहुत लंबी यात्रा करे आया हूं, बहुत थक गया हूं, अब विश्राम करूंगा।

क्या इस पत्थर की जिंदगी में और हमारी जिंदगी में कोई फर्क है? जहां-जहां हम मैं को डालते हैं, वहां-वहां हम इस पत्थर की बुद्धि से ही काम नहीं कर रहे हैं? जो मेरे रास्ते में आएगा, चकनाचूर हो जाएगा--यह इस पत्थर की बुद्धि नहीं है, यह हमारी भी बुद्धि है, हमारी राजनीतिज्ञों की भी बुद्धि है। यह हम सबका दिमाग है। आप पैदा हुए हैं, अगर अपने पैदा होने पर यदि विचार करें तो आपका मन ह्युमिलिटी से भर जाएगा। आप एक दिन मर जाएंगे। जन्म है और मृत्यु है, अगर इस पर विचार करें तो आप एकदम विनम्र हो जाएंगे, एकदम सरल हो जाएंगे। अगर यह आपको दिखाई पड़े। ज्ञात कुछ भी नहीं है, एक अज्ञात, एक बिल्कुल अननोन जगत में हम खड़े हैं। सामर्थ्य कुछ भी नहीं है फिर भी अहंकार को पोषित किए जा रहे हैं कि मैं हूं, और मैं हूं।

एक चक्रवर्ती हुआ--पुराने दिनों में होते थे। कहानियों में लिखा है, पता नहीं होते थे या नहीं होते थे--चक्रवर्ती हुआ, उसने सारे जगत को जीत लिया। कथाएं कहती है कि जो आदमी चक्रवर्ती हो जाता था, मेरु पर्वत पर उसे जाकर हस्ताक्षर करने पड़ते थे। यह सबसे बड़ा गौरव था। यह सिर्फ चक्रवर्तियों को उपलब्ध होता था कि वह जाए और मेरु पर्वत पर हस्ताक्षर कर दें। अडिग चट्टानों पर अपने हस्ताक्षर कर दें। एक राजा चक्रवर्ती हुआ, वह बहुत प्रसन्न हुआ। मेरु पर्वत पर हस्ताक्षर करने की बात थी। इससे बड़ा कोई गौरव नहीं था। वह बड़ी फौज-फांटे को लेकर मेरु पर्वत की ओर चला। गर्व से चूर हुआ जाता था। पैर जमीन पर न पड़ते थे, आंखें आकाश में न टिकती थीं, वैसा गौरव था। कारण भी था। सब जीत कर लौटा था। यह मौका मुश्किल से किसी को मिलता था। हजारों-हजारों वर्षों में कोई चक्रवर्ती होता था। वह चक्रवर्ती हो गए। द्वार पर द्वारपाल ने कहाः और सब तो यहीं रुक जाएंगे, अकेले ही आपको जाना पड़ेगा, क्योंकि सामान्यजन तो मेरु पर्वत के दर्शन भी नहीं कर सकते। अप अकेले जाए, साथ में प्रहरी जाएगा, आपके दस्तखत करवा देगा।

राजा भीतर गया, छैनी-हथौड़ी साथ लेकर प्रहरी गया। बड़ा विशाल पर्वत था। एक छोर से दूसरे छोर तक जाना असंभव था। दिन पर दिन बीतने लगे लेकिन जगह न मिलती थी, जहां राजा हस्ताक्षर करे। पूरा पहाड़ पहले से ही से भरा हुआ था। हस्ताक्षरों पूरा पहाड़ पहले ही से भरा हुआ था। जगह न मिलती थी कहां हस्ताक्षर करे। दिन पर दिन, माह पर माह बीतने लगे। दंभ, अहंकार गिरने लगा। क्षीण होने लगा। सोचा था बड़ा काम करने जा रहा हूं, यहां तो पूरे पहाड़ पर पहले से लोग हस्ताक्षर कर चुके थे, बहुत चक्रवर्ती हो चुके थे। पहरेदार से उसने कहाः कब तक यह चलेगा? जगह तो मिलती नहीं। उस पहरेदार ने कहाः मैंने अपने बाप से सुना है, उन्होंने भी अपने बाप से सुना था और उन्होंने भी, और उन्होंने भी, उनके पहले भी, कि जब भी यहां हस्ताक्षर करने पड़ते हैं तो पुराना हस्ताक्षर मिटाना पड़ता है, नई जगत, फ्रेश जगह मिलती नहीं, कभी मिली ही नहीं। तो राजा ने कहाः हस्ताक्षर करना फिजूल है। उसने सोचा, हस्ताक्षर करने का कोई अर्थ भी न रहा। इस बड़े पहाड़ पर कौन देखेगा, कौन पहचानेगा? मैं किन हस्ताक्षरों को पहचान पा रहा हूं? वह वापस लौटने लगा। पहरेदार ने कहाः मिटा दूं? हस्ताक्षर करते हैं? आप? उसने कहा, क्षमा करें? बहुत अकड़ से गया था। महीनों बीत गए थे, उसकी फौजें बाहर

प्रतीक्षा करते घबड़ा गई थीं। लौट तो बिल्कुल विनम्र था। वे पहचान भी न सकीं कि कौन राजा है, कौन पहरेदार है। वह वापस लौटा तो एक दरिद्र आदमी आकर खड़ा हो गया और उसने फौजों से कहाः जाओ, अब मैं कोई राजा नहीं हूं, अब मैं कोई चक्रवर्ती नहीं हूं। वह पागलपन गया।

जीवन को देखें और विचारें, जागें, सरलता पैदा होनी शुरू हो जाएगी। सरलता थोपी नहीं जाती। जीवन के सत्य को देखने से आनी शुरू होती है। और जब चित्त सरल होता है तो चित्त कोमल हो जाता है। और चित्त जटिल होता है तो कठोर हो जाता है। कोमलता में ही, उस विनम्रता में ही सत्य का प्रवेश होता है। कठोर हृदय की भांति, है। उस पर बीज भी पड़ेगा तो नष्ट हो जाएगा। कोमल हृदय भूमि की भांति है, कोमल, उस पर बीज पड़ेगा तो अंकुर बन जाएगा। हृदय को कोमल होने दें। बनाने की कोशिश न करें, बनाने की कोशिश से तो झूठ हो जाता है। जागें और देखें और जीवन की सारी स्थिति को समझें, आपका हृदय कोमल होना शुरू हो जाएगा, चित्त सरल होना शुरू हो जाएगा। एक अपने किस्म की ह्युमिलिटी पैदा होनी शुरू होगी। एक अपने किस्म की विनम्रता, जो थोपी नहीं गई है, जो आई है। जो कल्टीवेट नहीं की गई है, बनाई नहीं गई है, संवारी नहीं गई है, जो जीवन को देखने से पैदा हो गई है। एक पत्ती वृक्ष में हिल रही है, क्या उससे ज्यादा आपका होना है? एक छोटा सा कीड़ा जमीन पर चल रहा है, क्या उससे ज्यादा आपका होना है? देखें जीवन को, देखें दूर तक फैले आकाश को, करोड़-करोड़ सूर्यों को, करोड़-करोड़ सूर्यों के फासले को, देखें इस विराट ब्रह्मांड को, सोचें इस छोटी सी पृथ्वी को, उस पर छोटे से अपने होने को। इसके प्रति जागें। तो क्या पता चलेगा? पता चलेगा कि मैं तो कुछ भी नहीं हूं इस सब होने में, एक सागर में बूंद भी जैसी मेरा होना नहीं है। और तब, तब अहंकार क्षीण होगा और विलीन हो जाएगा। और सरलता पैदा होगी। स्वतंत्र हों, सरल हों और शून्य हो जाए।

शून्य का अर्थ--शून्य का अर्थ है--मन को खाली छोड़ने की सामर्थ्य।

एक व्यक्ति एक मंदिर में किसी दूर देश में हाथ जोड़कर बैठा हुआ है। परदेशी यात्री ने भीतर आकर उससे पूछा, क्या आप प्रार्थना कर रहे हैं? उस व्यक्ति ने कहाः कैसी प्रार्थना, किसकी प्रार्थना? परदेशी हैरान हुआ होगा। पूछा, भगवान की प्रार्थना करते होंगे। उसने कहाः मैं इतना छोटा हूं कि मुझे भगवान का कोई पता नहीं। किसी चीज को मांगने के लिए प्रार्थना करते होंगे? उसने कहाः कितना ही मांगें और कितना ही इकट्ठा करें, मौत सब छीन लेती है, इसलिए मांगने का मोह चला गया। क्या मांगें? जब सब छिन ही जाता है तो मांगने में कोई अर्थ न रहा। उस आदमी ने कहाः फिर भी आप प्रार्थना तो कर ही रहे हैं? उस आदमी ने कहाः कैसे कहूं कि मैं प्रार्थना कर रहा हूं? अब तक बहुत अपने भीतर खोजा, किसी मैं को तो पा ही नहीं सका।

यह जो क्षण है, ऐसा चित्त की दशा का। न कोई परमात्मा का ख्याल है, न कुछ मांगने का, न अपना। यह शून्य, खाली, यह नॉन-बीइंग की अवस्था है, यह नथिंगनेस। जीवन में स्वतंत्रता आए, सरलता आए तो शून्यता आनी कठिन नहीं है। कुछ घड़ी को तो चित्त बिल्कुल मौन ही हो जाना चाहिए। अर्थ यह नहीं है कि आप जबरदस्ती मौन कर दें। जबरदस्ती दबा कर बैठ जाएं अपनी श्वास को रोक कर, तो वैसी शून्यता सच्ची नहीं है। नहीं, आने दें, ग्रोथ होने दें, शून्यता को आने दें।

कैसे आएगी शून्यता? दो तो मैंने बातें कहीं--स्वतंत्र चित्त ही तो बहुत खाली हो जाए, क्योंकि जब भराव दूसरे का है। सरल चित्त हो तो बहुत विगलित हो जाएगा क्योंकि सारी कठोरता भरे हुए है, यह विलीन हो जाएगी। उसके बाद शून्य, जीवन को देखें। क्या मांगने योग्य लगता है? परमात्मा को जानते नहीं है, स्वयं को खोजें, मैं का कोई पता नहीं चलता? फिर क्या होगा? तो फिर मौन रह जाएंगे। मौन, एक साइलेंस, एक सन्नाटा पकड़ना शुरू होगा। यह चेष्टित सन्नाटा न होगा। यह घेर लेगा अचानक। यह किसी अज्ञात क्षण में, किसी बिल्कुल अननोन मूवमेंट में, जब कि हम ख्याल में भी न थे, अचानक पकड़ लेना। अगर स्वतंत्र और सरल होने की विकसित अवस्था बनी तो शून्य का भाव किसी क्षण में अचानक पकड़ लेगा। आपको पता लगेगा कि मैं तो हूं ही नहीं, मैं तो हवा-पानी हो गया, मैं तो कुछ हूं ही नहीं, सुखा पत्ता हो गया। पानी पर बहता हुआ एक लकड़ी का टुकड़ा हो गया। एक पानी पर एक लकड़ी का टुकड़ा बहता हो, एक आदमी तैरता है पानी में। तैरना शून्य नहीं होता है। फिर एक आदमी बहता है पानी में, तैरता नहीं, बहा जाता है सब छोड़ दिया है उसने और बहा जाता है। तैरना भरा होना है और बहे जाना शून्य हो जाना है।

तो जीवन में थोड़ा बहें। तैरने का बहुत ख्याल छोड़ दें। तैरने से ही दंभ पैदा होता है। तैरने से अहंकार पैदा होता है। तैरने का ही भाव कि मैं तैरूंगा और जीतूंगा और पहुंचूंगा, इसमें सबमें मैं खड़ा हुआ है। कठोर मैं नहीं, बहें, छोड़ दें, बह जाए। आप भी एक हिस्से में सारे जगत के अलग नहीं। एक पत्ता है वृक्ष का, अलग थोड़ी है। पीछे जुड़ा है शाखाओं से, पीछे जुड़ा है पेड़ से; और पीछे जुड़ा है जड़ों से। और जड़ें, जुड़ी है सूरज से, समुद्र से, पृथ्वी से, सारे

पांच तत्वों से। एक छोटा सा पत्ता सारे जगत से जुड़ा है, अलग नहीं है। कोई अलग नहीं है। देखें जीवन को, पहचानें और प्रवेश करें। आपको पता लगेगा कि मैं तो हूं ही नहीं। शून्यता फलित होनी शुरू हो जाएगी। चित्त धीरे-धीरे मौन होता जाएगा। चित्त बहने लगेगा, तैरना बंद कर देगा। तैरना धार्मिक आदमी का लक्षण है। बहना, बह जाना, सागर में बह जाना धार्मिक चित्त का लक्षण है। वह जो रिलीजस माइंड है, वह तैरता नहीं, बहता है। सब छोड़ देता है और बह जाता है। और जिस वक्त आप सब छोड़ देंगे, सब रिलैक्स कर देंगे और बहने लगेंगे तो आप पाएंगे, आप परमात्मा के साथ एक हो गए हैं। आप पाएंगे, अब आपको अपनी शक्ति खर्च नहीं करनी पड़ती है, नदी की शक्ति आपको बहाए ले जा रही है। अब आपको सागर नहीं पहुंचना है, आप सागर पहुंच गए। अब आपको कहीं खोजने नहीं जाना है, आपने अपने को खो दिया सब पा लिया। क्राइस्ट का वचन है, जो अपने को बचाते हैं वे नष्ट हो जाते हैं और जो अपने को खो देते हैं वे उपलब्ध हो जाते हैं। जो अपने को छोड़ देता है, छोड़ देने का नाम शून्यता है। जो अपने को सब भांति छोड़ देता है वह उसी क्षण परमात्मा को उपलब्ध हो जाता है।

एक छोटी सी घटना और अपनी चर्चा को मैं पूरा करूंगा।

एक रात एक पहाड़ी के किनारे एक अंधेरी रात में एक आदमी यात्रा कर रहा है। अचानक उसने पाया कि वह किसी गड्ढे में गिर गया है। उसने जोर से झाड़ियां पकड़ लीं। पता नहीं, नीचे कितना बड़ा गड्ढा है, कितनी अतल खाई है। क्या होगा, क्या नहीं होगा, सीधी चट्टान मालूम होती है। अब हाथ-पैर हिलाना, ऊपर चढ़ना संभव नहीं मालूम होता। झाड़ियां भी पतली हैं, प्राण कंप रहे हैं। कब टूट जाए, कब टूट जाए, कहना कठिन है। लेकिन वह पकड़े है, पकड़ें है। रात गहरी होने लगी। सर्द रात है, हाथ की मुट्ठियां जड़ होने लगी, शरीर ठंडा होने लगा, साहस टूटने लगा, उसे लगने लगा, अब नहीं, थोड़ी देर में हाथ टूट ही जाएंगे और फिर प्राण की समाप्ति है लेकिन जब तक अपना वश था, पकड़े था, पकड़ रहा। आखिर कौन छोड़ता है अपने हाथ से? अपने वश से कौन छोड़ता है, जब तक मौत ही न छुड़ा ले। अपने हाथ से कौन छोड़ता है, जब तक कि छूट न जाए। पकड़े रहा, पकड़े रहा, सारी जान लगा कर पकड़े रहा। हाथ धीरे-धीरे ठंडे होते गए, रात गहरी होती गई, अंधेरा घना होता गया। सन्नाटा जोर पकड़ता गया, फिर आखिर में हाथों में ताकत न हरी, फिर आखिर में उसका साहस छूट गया। हाथ अपने आप खुल गए और छूट गए और हाथ छूटते ही उसने अपने आप को कहां पाया? अतल गड्ढे में नहीं, केवल छह इंच के फासले पर ही जमीन थी। वह जमीन पर खड़ा था। सारा भय पकड़े था, सारी घबड़ाहट पकड़े था, इससे थी। नीचे खाई न थी।

नीचे खाई नहीं है, परमात्मा है। छोड़ दें। नीचे आधार है। पकड़े रहें, टूट जाएंगे। छोड़ दें, उपलब्ध हो जाएंगे। लोग कहते हैं, जिन खोजा तिन पाइयां; मैं कहता हूं, जिन खोया तिन पाइयां। जो खोजते हैं वे पाते हैं, ऐसा लोग कहते हैं। मैं कहता हूं कि जो खो देते हैं वे पा लेते हैं। इसको शून्य-भाव कहता हूं। शून्य-भाव प्रार्थना है; शून्य-भाव ध्यान है; शून्य-भाव समाधि है।

इन तीन दिनों में थोड़ी सी बातें आपसे कहीं हैं। उसको इतने प्रेम से सुना है, बहुत अनुगृहीत हूं। अंत में सबसे भीतर बैठे परमात्मा के लिए मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सातवां प्रवचन

जीवन और धर्म

इधर सोचता था--अभी बैठे-बैठे मुझे यह ख्याल आया, और जहां भी धर्म के उत्सव होते हों, जहां भी धर्म की आराधना होती हो, जहां भी धर्म के लिए लोग इकट्ठे हुए हों, वहां निरंतर मुझे यही ख्याल आता है--यह ख्याल आता है कि धर्म से हमारा कोई भी संबंध नहीं है। फिर यह धर्म की स्मृति में हम इकट्ठे क्यों होते हैं? धर्म से हमारा कौन सा संबंध है? हमारे जीवन का, हमारे प्राणों का कौन सा नाता है? हमारी जड़ें तो धर्म से बहुत दिन हुए टूट गई हैं, लेकिन फिर भी हम पत्तों को सम्हालने चले जाते हैं।

नीत्शे का नाम सुना होगा। एक चर्च के पास से निकलता था। रविवार का दिन था और चर्च की घंटियां बज रही थीं। साथ में चलते एक मित्र को उसने कहा कि मुझे बहुत हैरानी होती है कि दो हजार साल पहले जिस क्राइस्ट को सूली पर लटका दिया गया, उसके लिए लोग अभी भी उसकी स्मृति में घंटियां क्यों बजाते हैं? मुझे हैरानी होती है कि महावीर को हुए ढाई हजार वर्ष हुए, क्राइस्ट को हुए दो हजार वर्ष हुए, कृष्ण को हुए शायद पांच हजार वर्ष हुए, फिर राम को भी बहुत समय बीता। लेकिन हम उनकी स्मृति में इकट्ठे क्यों होते हैं? उनकी याद में उनके सम्मान में हम क्यों अपनी श्रद्धाएं अर्पित करते हैं? आश्चर्य मुझे न होता यदि हमारे जीवन, यदि हमारे प्राण उस सत्य से संबंधित हों जिस सत्य की इन व्यक्तियों ने गवाहियां दी हैं। लेकिन हमारे जीवन की दिशा तो बिल्कुल विरोधी है। हम भगवान के मंदिर में पूजा चढ़ाते हैं और शैतान के मंदिर में निवास करते हैं। तो फिर इस स्मृति का क्या प्रयोजन है? कहीं यह स्मृति आत्मघाती तो नहीं, आत्मवंचक तो नहीं है, यह सेल्फ डिसेप्टिव तो नहीं है? और मुझे लगा है यह है।

जीवन जब बहुत पाप से भर जाता है, जीवन जब बहुत पाप से ग्रस्त हो जाता है तो हम धर्म की स्मृति में उस पाप को छिपा लेना चाहते हैं। जीवन में जब बहुत अंधकार हो जाता है तब हम प्रकाश की बातें करके उस अंधकार को भुलाने में लग जाते हैं। जीवन में जब बिल्कुल गलत हो जाता है तो हम अच्छी-अच्छी बातों में, अच्छे-अच्छे नारों से खुद को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि हम गलत नहीं है। ये सब आत्म-विश्वास खोजने के तरीके हैं। लेकिन इसको मैंने कहा, यह आत्मघाती प्रवृत्ति हैं, यह सुसाइडल है। क्योंकि जो व्यक्ति अपनी बीमारियों को नहीं जानेगा और उन्हें स्वास्थ्य की चर्चाओं में छिपाएगा, बीमारी बढ़ती जाएगी, और उसके प्राण ले लेंगी।

अधर्म को हम छिपाते हैं धर्म की बातों में। अधर्म बढ़ता जाता है, धर्म की बातें काम नहीं दे सकती हैं। ये सारे मंदिर हमारे पापों को छिपाने की तरकीबें हैं और ये सारी धर्म की चर्चाएं हमारे भीतर जो गलत हो गया है, इस धर्म की चर्चा के शोरगुल में उसको भुला देने के उपाय हैं। लेकिन यह आत्मघाती है वह बात। यह हमारी पूजाएं, हमारी प्रार्थनाएं, हमारे मंदिर घातक हैं। घातक इसलिए हैं कि इसमें जिसे हम छिपा रहे हैं वह हमारे प्राण ले लेगा। अधर्म हमारे प्राण ले लेगा। अधर्म हमारे प्राण ले रहा है। रोज-रोज हमारे जीवन की शांति, जीवन का आनंद, जीवन का संगीत सब छिनता जा रहा है। भीतर से हम नष्ट होते जा रहे हैं, भीतर मनुष्य एक खोखली लाश की भांति हो जा रहा है। लेकिन इसकी बातें सुनें, इसके शास्त्रों को देखें और उसके मंदिरों को देखें तो लगता है कि बहुत धर्म होगा। जमीन पर कितने मंदिर हैं, कितने धर्म हैं, कितना संप्रदाय, कितने साधु, कितने संन्यासी, कितने पंडित, कितने समझाने वाले लोग, कितने समझने वाले लोग! लेकिन धर्म कहां है?

यह विरोधाभास क्या आपको दिखाई नहीं पड़ता? यह हमारे जीवन में आ गई असंगति क्या हमें दिखाई नहीं पड़ती? और यह असंगति जिसे दिखाई नहीं पड़ती, वह बहुत बड़े धोखे में है। और वह धोखा किसी और को नहीं दे रहा है, खुद को दे रहा है।

मुझे स्मरण आता है, कोई सौ वर्ष पहले की बात है, इंगलैंड में उन दिनों भले लोग नाटक नहीं देखते थे। नाटक देखना भले लोगों के लिए वर्जित था। शेक्सपीयर का एक नाटक इंग्लैंड के एक बड़े नगर में चलता था। उस नगर का जो बड़ा पुरोहित था, बड़ा पादरी था, जो आर्चबिशप था, उसके मन में भी लालसा थी कि उस नाटक को कैसे देखे, लेकिन नाटक को कैसे देखे? उसने थियेटर के मैनेजर को खबर भेजी कि मेरी नाटक देखने में रुचि है--क्या तुम्हारे थियेटर में पीछे कोई दरवाजा है, जिससे चुपचाप मैं आ सकूं?

मैनेजर ने बड़े पादरी आर्चबिशप को जवाब भेजा--हमारे थियेटर के पीछे दरवाजा है, उससे आप भीतर आ सकते हैं, लोग आपको नहीं देख सकेंगे। लेकिन एक बात स्मरण रखें, हमारे थियेटर में ऐसा कोई भी दरवाजा नहीं

है, जिसे परमात्मा न देखता हो। फिर आपकी मर्जी। लोगों से तो बचाया जा सकता है, लेकिन परमात्मा से कैसे बचाइएगा?

हम भी जीवन में पीछे के दरवाजे खोलते हैं। सामने के दरवाजे पर धर्म होता है, पीछे के दरवाजे से जिंदगी चलती है। और जिस व्यक्ति के जीवन मग दो दरवाजे हों, उसका जीवन नर्क बन जाता है। बन जाना स्वाभाविक है। वह दो विरोधी दिशाओं में एक साथ जीता है। जैसे एक बैलगाड़ी में हमने दोनों तरफ बैल जोत दिए हों, फिर क्या होगा? बैलगाड़ी के प्राणांत हो सकते हैं। और हममें से अधिक लोगों के जीवन में दोनों तरफ बैल जुते हुए हैं। हमारे सारे प्राण अधर्म की तरफ चलते हैं, हमारे सारे विचार धर्म की तरफ। और तब जीवन एक अत्यंत अंतःसंघर्ष में एक कांफ्लिक्ट में पड़ जाता है। और जिस व्यक्ति के भीतर द्वंद्व है, अतः संघर्ष है, जिस व्यक्ति के भीतर निरंतर विरोध चल रहा है, उस विरोध में ही उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है; उस विरोध में ही उसकी शक्ति नष्ट हो जाती है। अपने से ही लड़ने में उसकी सारी ऊर्जा, सारा सामर्थ्य टूट जाता है। आखिर में वह एक रीते घड़े की भांति समाप्त हो जाता है, जिसमें कुछ भी न हो। और जिसके पास भीतर शक्ति न बचे, तो वह व्यक्ति सत्य को कैसे पा सकेगा? और जिस शक्ति के भीतर इंटीग्रेशन न हो, एकता न हो जिसके व्यक्तित्व में, विरोध में हो, अंतर्विरोध हो, वह व्यक्ति परमात्मा के दर्शन कैसे कर सकोगे? जो व्यक्ति भीतर संगीतपूर्ण नहीं है सत्य का भाग्य नहीं बन सकता। सत्य केवल उन्हें उपलब्ध हो सकता है जिनके हृदय संगीत से भरे हों। और संगीत वहां होता है, जहां द्वंद्व न हो, जहां भीतर विरोध न हो।

अच्छा हो कि आप सब नास्तिक हो जाए और किसी मंदिर में न जाएं; क्योंकि कम से कम तब आपके भीतर द्वंद्व तो न होगा! और जिसके भीतर द्वंद्व न होगा। वह बहुत दिन नास्तिक नहीं रह सकता। परमात्मा खुद उसके द्वार पर जाएगा। लेकिन आप सब हैं आस्तिक। आप सबके भीतर द्वंद्व है। परमात्मा की बात है, परमात्मा का जीवन नहीं है। तब--तब परमात्मा आपके द्वार पर कभी नहीं आ सकता। कोई रास्ता नहीं है आपके द्वार पर परमात्मा के आने का! सत्य आपके लिए कभी उदघाटित नहीं हो सकता है, क्योंकि द्वंद्वग्रस्त मन अपने में ही लड़ता और टूटता और नष्ट हो जाता है। उसे फुर्सत भी नहीं मिलती है कि वह अपने बाहर आंख उठा कर देख सके। हम सब भीतर कलह से घिरे हैं और इसलिए मेरा ख्याल है कि मैं अंत कलह के संबंध में थोड़ी बात आपसे करूं, इससे मुक्त होने के उपाय के संबंध में थोड़ी बात आपसे करूं। इन दो दिनों में इसकी ही बात करूंगा।

अंतर्कल क्यों है? यह सारा अंत द्वंद्व क्यों पैदा होता है? कौन से कारण हैं जिनसे हम निरंतर अपने भीतर विभाजित, खंडित हैं। अपने से ही लड़ रहे हैं। जैसे मैं अपने दोनों हाथों को लड़ाऊं, तो कौन जीतेगा? कोई भी नहीं जीतेगा, दोनों हाथ मेरे हैं। दोनों ओर से शक्ति लगेगी। कोई भी नहीं जीतेगा। दोनों हाथ लड़ेंगे, और उनकी लड़ाई में मैं मरूंगा। क्योंकि उनकी लड़ाई में मेरी शक्ति नष्ट होगी। बहुत जानना जरूरी है कि हम मन में, इस द्वंद्व में क्यों पड़े हैं? और यह द्वंद्व ही तो हमें तोड़ता है, डिटोरिएट करता है। धीरे-धीरे द्वंद्व और कलह हमारे जीवन को नष्ट कर देते हैं। मनुष्य का शरीर तो बूढ़ा होना स्वाभाविक है, लेकिन मन इसलिए बूढ़ा हो जाता है कि द्वंद्व से घिर जाता है। अन्यथा जिनके मन द्वंद्व से नहीं घिरते, उनका मन सदा युवा होगा। आत्मा के बूढ़े होने का कोई भी कारण नहीं है। शरीर के बूढ़े होने का कारण है। कारण, शरीर बूढ़ा होगा। लेकिन जिसका मन द्वंद्व से घिरा है, उसकी आत्मा भी बूढ़ी होती जाती है। और परमात्मा और सत्य को जानने के लिए युवा मन चाहिए, सतेज, सजग, स्वस्थ और स्वच्छ चेतना चाहिए। हमारी चेतना अस्वच्छ हो जाती है, द्वंद्वग्रस्त हो जाती है। और हम देखें, यह मैं आपसे कह रहा हूं, किसी सिद्धांत की बात नहीं कह रहा हूं, न किसी शास्त्र की बात कह रहा हूं। जो मन में होता है निरंतर, उन तथ्यों की बात कह रहा हूं। मैं जो कह रहा हूं, उसे मानने की जरूरत नहीं है। अपने मन को देखें। किसी शास्त्र में खोजने की जरूरत नहीं है, किसी की गवाही लेने की जरूरत नहीं है। बैठें थोड़ा एकांत में, अपने मन को देखें, क्या आपका मन द्वंद्वग्रस्त है और यदि द्वंद्वग्रस्त है तो आप अपने मन के दुश्मन है और आपका मन धीरे-धीरे बूढ़ा होता जाएगा, शक्तिशाली होता जाएगा, टूटता जाएगा। फिर ऐसे मन को लेकर परमात्मा के द्वार पर कैसे जाइएगा? यह मन तो आपको बहुत नीचे रखेगा। यह क्यों है स्थिति मन की? यह द्वंद्व का कारण क्या है? इस द्वंद्व के पीछे बुनियादी आधार क्या है? क्या कारण है कि हम द्वंद्व में ही पैदा होते हैं और द्वंद्व में ही समाप्त हो जाते हैं? कुछ कारण है।

पहली बात--और इन कारणों को हम ठीक से देखें। आज तो मैं इन कारणों की ही चर्चा करूंगा और कल इनसे मुक्त होने की। कौन से कारण हमें घेरे हुए हैं? पहला जो मुझे दिखाई पड़ता है, वह यह है कि हम जीवन में अपने अनुभव से, अपने जीवन के निरंतर विकास से तथ्यों को देखते नहीं, वरन परंपरा से तथ्यों को और सिद्धांतों को स्वीकार कर लेते हैं। तब परंपरा हमें कुछ बातें बताता है। इन दोनों के बीच कलह उपस्थित हो जानी बिल्कुल स्वाभाविक है। इन दोनों के बीच विरोध उपस्थित हो जाना स्वाभाविक है। हम जीवन की सीधी समस्या को खुद

कभी नहीं देखते। हमारी आंखें हमेशा परंपरा के पर्दे से चीजों को देखती हैं। एक छोटी सी कहानी कहूं तो समझ में आए।

एक राजा का वजीर मर गया तो उसे अपने सारे राज्य में एक बुद्धिमान आदमी खोजना था जो वजीर की जगह नियुक्त किया जा सके। बड़ा राज्य था, बहुत बुद्धिमान थे और सबसे बड़े बुद्धिमान की खोज करनी थी। उसने बहुत सी परीक्षाओं की व्यवस्था की। अंततः बहुत सी परीक्षाओं को पार करते-करते तीन व्यक्ति चुने गए थे। अब उन तीनों व्यक्तियों में अंतिम निर्णायक परीक्षा होनी थी और एक चुना जाएगा और वह राजा का वजीर हो जाएगा। वह उस राज्य का सबसे बड़ा सम्मान था। वे तीनों व्यक्ति अपनी चेष्टा में लगे होंगे। जिस दिन अंतिम परीक्षा होनी थी उसके एक दिन पहले सारे नगर में अफवाह उड़ गई कि कल राजा उनको एक ऐसे भवन में बंद कर देगा जिसमें एक ही दरवाजा है और उस दरवाजे पर एक ऐसा ताला लगाया गया हैं--उस समय की जो इंजीनियरिंग थी, उस समय की जो यंत्र विद्या थी, उस समय के जो गणितज्ञ थे, उन्होंने बड़ी कोशिश करके उस ताले को बनाया है। वह ताला गणित की एक पहेली की भांति है। जो व्यक्ति गणित में प्रभावशाली होगा, वही व्यक्ति उस ताले को खोलने की तरकीब खोज करेगा। जो उस ताले को खोल कर बाहर आ जाएगा, वही वजीर हो जाएगा।

स्वभावतः था, सारे नगर में अफवाह फैली। उन तीनों व्यक्तियों ने भी सुनी। उनमें से दो फौरन गए, उन्होंने इंजीनियरिंग की किताबें खरीदी, गणित की किताबें खरीदी। तालों के संबंध में जो कुछ भी लिखा हुआ था उनको इकट्ठा किया रात भर। वे उनको पढ़ते रहे और पहेलियां सुलझाते रहे। और दोनों हैरान रहे, वह जो तीसरा आदमी था, रात भर आराम से सोया रहा। समझा कि यह पालग है। उन दोनों ने समझा कि पागल है। कल यह क्या करेगा? सोचा कि इसने समझा हो कि यह अफवाह है, लेकिन यह कहीं अगर सत्य हुआ तब? अपने हाथ से मौका खो रहा है। सुबह वे तीनों राजमहल गए। दो तो इन गणित से भर गए थे, रात भर जाग कर उन्होंने गणित किया था। उनसे अगर कोई कहता, दो और दो कितने होते है तो वे घबड़ा जाते। गणित इतना ज्यादा दिमाग में हो तो दो और दो जोड़ना भी कठिन्न हो जाता है। स्वाभाविक है, गणित अगर दिमाग में कम हो तो दो और दो जोड़े जा सकते हैं। गणित अगर बहुत ज्यादा हो तो दो और दो को जोड़ना कठिन हो जाता है।

उनके पैर भी ठीक नहीं पड़ते थे, आंखें नींद से भरी थीं। रात भर की बेचैनी, घबड़ाहट। राजमहल पहुंच। पर तीसरा आदमी मौज से गीत गाता हुआ राजमहल पहुंचा। स्वभावतः जो रात भर सोया हो वह सुबह गीत गा सकता है। महल पहुंचे। राजा ने तो निश्चित ही--अफवाह सच थी, उनको एक महल में बंद कर दिया गया और उस पर एक ताला लगा हुआ था। उस ताले पर गणित के अंक बने हुए थे। तब तो वे दोनों प्रसन्न हुए कि इस तीसरे को अब पता चलेगा कि रात भर शांति से सोने का क्या मतलब होता है। लेकिन वह अजीब था। वे दोनों तो कुछ किताबें भी अपने खीसों में, कपड़ों मग छिपा कर ले गए थे कि वक्त-बेवक्त जरूरत पड़ जाए तो वे उनसे देख लेंगे। उन्होंने तो जल्दी से अपनी किताबें निकाली। उनको खबर कर दी गई, राजा ने कहलवा दिया कि ताला खोल कर जो बाहर निकल जाएगा, वही वजीर बन जाएगा। वे दोनों तो जल्दी अपनी किताबें खोल कर कागज पर हिसाब लगाने में लग गए, ताले के अंकों को देखने में लग गए। वह तीसरा आदमी आंख बंद करके फिर बैठे गया। निश्चित ही वह हार गया था, क्योंकि अब उसको क्या खोलने को है? तो उन दोनों ने सोचा कि शायद उसने प्रतियोगिता ही छोड़ दी है। वह कुछ सोच भी नहीं रहा था, कुछ हिसाब भी नहीं लगा रहा था, वह सिर्फ आंख बंद किए बैठा था। उसके चेहरे से भी मालूम नहीं पड़ता था कि वह कुछ सोच रहा है। वे दोनों तो तल्लीन हो गए। ठंडी सुबह थी, खिड़कियों से ठंडी हवाएं आती थीं, लेकिन उनके तो माथें से पसीना चू रहा था, वे तो अपने गणित में लगे हुए थे। वह आदमी धीरे से अचानक उठा। बाहर गया। दरवाजे पर गया। हैंडिल पर उसने हाथ घुमाया, हैरान हो गया, दरवाजा खुला हुआ था। दरवाजा लगा हुआ नहीं था। उसने हैंडिल को घुमाया और दरवाजा हटाया, दरवाजात खुला हुआ था। वह चुपचाप बाहर निकल गया। वे जो दोनों बैठे थे उन्हें पता भी नहीं चला कि अब कमरे में तीन नहीं हैं, दो ही बचे हैं। एक आदमी बाहर निकल गय। उनको पता तब चला जब राजा को लेकर वह आदमी वापस लौटा। और राजा ने कहाः अपना हिसाब बंद करो, अपनी किताबें बंद करो। जिसको निकलना था, वह बाहर निकल चुका है। तुमने पहली बात ही नहीं सोची कि समस्या है भी या नहीं? तुमने पहली बात ही नहीं विचारी कि ताला लगा हुआ है या नहीं लगा हुआ है औ रतुम ताले के संबंध में खोज-बीन करने में संलग्न हो गए।

जिंदगी की पहली समस्या यह है कि हम समस्या को देखें कि वह है या नहीं? लेकिन इसके पहले कि हम समस्या को देखें, समाधान हमारे मन में परंपरा बिठाल देती है। हम उनके ऊहापोह में पड़ जाते हैं। हम ताले खोलने का विचार करने लगते हैं, कैसे खोलें? और शास्त्र अध्ययन करने लगते हैं कि कैसे ताला खोला जाए? और पच्चीस शास्त्र हैं और पच्चीस संप्रदाय हैं और पच्चीस विरोधी लोग हैं और उनके ऊहापोह में हमारा सारा मस्तिष्क जरा-जीर्ण हो जाता है। जीवन में समस्या क्या है, और है भी या नहीं, इसे देखने का साहस करने वाले बहुत थोड़े से लोग होते हैं। और जो लोग उठ कर जीवन की समस्या को सीधा देखते हैं, बीच में शास्त्रों को, परंपराओं को, सिद्धांतों को नहीं

लेते, उन्होंने अक्सर पाया है कि जीवन की समस्याएं वे नहीं हैं, जो शास्त्र की समस्याएं हैं। जीवन की पहेलियां वे नहीं हैं, जो गणित की पहेलियां हैं। जीवन बहुत सरल है, अगर चित्त शास्त्रों में भारग्रस्त हो; अगर चित्त परंपरा और ट्रेडीशंस से भरा हुआ न हो। जिंदगी बहुत सरल है। शायद उस पर कोई ताला नहीं लगा हुआ है। शायद द्वार अटका है और धक्का देने से खुल जाएगा।

पहली बात जरूरी है कि हम जीवन की समस्याओं को सीधा लें, बजाए इसके कि हम शास्त्रों को पकड़ लें। एक व्यक्ति मेरे पास आता है, वह कहता है, मुझे शांति चाहिए। क्या मैं राम-राम जपूं, तो शांति मिलेगी? वह ताला खोलने में लग गया। उसने मान लिया कि राम-राम न जपने से अशांति पैदा हुई है। राम-राम जपने से ताली लग जाएगी और ताला खुल जाएगा। उसने यह फिकर नहीं की कि अशांति है कहां? है तो क्या है? अशांति की फिकर नहीं की, शांति कैसे आए, ताला कैसे खुले, इसकी कोशिश में लग गया। एक आदमी दुखी है, पीड़ित है, वह पूछता है, मैं ईश्वर को कैसे पाऊं? उसे ईश्वर से कोई प्रयोजन नहीं है। शास्त्र कहते हैं जो ईश्वर को पा लेता है, उसे शांति मिलती है, दुख विलीन हो जाता है। वह दुखी है इसलिए वह सोचता है कि मैं ईश्वर को कैसे पाऊं? वह शास्त्रों में खोजने चला जाता है। जब कि सचाई यह है कि ईश्वर के मिलने से किसी को शांति नहीं मिलती। जिसे शांति मिल जाती है, उसे ईश्वर जरूर मिल जाता है। जब कि सचाई यह है कि किसी के भीतर अशांति हो तो वह ईश्वर का लाख नाम जपे, शांति नहीं मिल सकती। लेकिन जो अपनी अशांति को समझ कर उससे मुक्त हो जाता है, उसे ईश्वर जरूर मिल जाता है। आखिर ईश्वर को पाने के लिए शांत मन की भूमि चाहिए। अशांत मन कैसे ईश्वर को पा सकेगा? लेकिन हम--अशांत मन होता है तो ईश्वर को खोजने चले जाते है। समस्या को नहीं दरेखते, समाधान की कोशिश शुरू कर देते हैं।

जीवन की बुनियादी भूलों में एक है जो मन को द्वंद्व में डाल देती है--समस्या को खोजें, समाधान को नहीं। समस्या ही महत्वपूर्ण है, समाधान महत्वपूर्ण नहीं है। और अगर दुनिया के लोग समस्याएं खोजें तो समस्याएं हल हो सकती हैं। लेकिन दुनिया के लोग समाधान खोजने हैं, फिर समाधान पकड़ लेते हैं। फिर ये समाधान नई समस्याएं ले आते हैं, पुराने समस्याएं समाप्त नहीं होतीं। हर समाधान नई समस्या पैदा कर देता है। कोई हिंदू है, कोई जैन है, कोई मुसलमान है, कोई बौद्ध है--इन सारे लोगों ने समाधान पकड़ लिए हैं। अगर ये समस्याएं खोजते--दुनिया में आदमी होते--न कोई हिंदू होता, न कोई जैन होता, न कोई मुसलमान होता। ये समस्याओं को पकड़ लिए हुए लोग हैं। तो जब एक समय समाधान को पकड़ लेते हैं तो ये दूसरे से लड़ते हैं कि तुम्हारा समाधान गलत है, मेरा समाधान सही है। इसलिए नहीं कि इनको दूसरे के समाधारन गलत होने से कोई प्रयोजन है। इन्हें हर भांति अपने को विश्वास दिलाना है कि मेरा समाधान सही है। और ये विश्वास सभी दिला सकते हैं जब ये दूसरों के, सबके भीतर समाधानों के गलत कहने का जोर-शोर से प्रचार करें। तब इन्हें विश्वास आएगा कि हमारा समाधान सही है। इनका समाधान नई समस्याएं खड़ी कर देता है।

दुनिया के धर्मों ने कोई समस्याएं समाप्त नहीं की, नई समस्याएं खड़ी कर दी हैं। अगर दुनिया से धर्म समाप्त हो जाए, मनुष्य की पचास प्रतिशत समस्याएं उनके साथ चली जाएगी। उसकी लड़ाइयां, उसके विरोध, उसके संघर्ष, उसकी दवालें, उसके मंदिर और मस्जिद, उसके शास्त्र, उसके पंडित, उसके साधु, यह सारा उपद्रव विलीन हो जाएगा। लेकिन बुनियादी बात कहां है? बुनियादी बात वहां है कि क्या हम समाधान खोजते हैं, या समस्या खोजते हैं? अगर हम समाधान खोजते हैं तो हम समस्या से पलायन खोज रहे हैं, एस्केप खोज रहे हैं। एक आदमी के भीतर हिंसा होती है तो वायलेंस होती है, चित्त में क्रोध होता है। हिंसा होती है तो वह उससे पीड़ित होता है, परेशान होता है, क्योंकि हिंसा किसी को सुख नहीं दे सकती है। क्रोध किसी को शांति नहीं दे सकता, द्वेष किसी के मन में संगीत नहीं ला सकता। इससे परेशान होता है। परेशान होता है। तो वह समाधान खोजने जाता है। कोई कहता है, अहिंसक हो जाओ तो समाधान हो जाएगा। यह वैसे ही है जैसे एक बीमार आदमी कहीं जाए और कहे कि मैं बीमारी से बहुत परेशान हूं और एक डाक्टर उससे कहे कि तुम स्वस्थ हो जाओ तो ठीक हो जाएगा। तो यह कितना पागलपन मालूम होगा! डाक्टर किसी बीमार को कहे जाओ, स्वस्थ हो जाओ, सब ठीक हो जाएगा। नहीं, डाक्टर यह नहीं कहता। लेकिन धर्म डाक्टर यही कहते हैं। अगर हिंसा है, अहिंसक हो जाओ, सबठीक हो जाएगा। अगर बीमार है तो स्वस्थ हो जाओ।

डाक्टर बीमारी को खोजते हैं; स्वस्थ हो जाओ यह नहीं कहता। बीमारी क्या है, कहां है, क्यों है, उस बीमारी को खोजता है और उस बीमारी को, बीमारी के भीतर उसके दूर करने के उपाय खोजता है। अब बीमारी नहीं रह जाती तो स्वास्थ्य उपलब्ध हो जाता है। बीमार के विरोध में स्वास्थ्य नहीं मिलता है, बीमारी के अभाव में स्वास्थ्य उपलब्ध होता है। हिंसा के विरोध में कोई आदमी अहिंसक हो सकता। जब हिंसा नहीं रह जाती तो अहिंसा अपने आप उपलब्ध होती है। लेकिन हमारे भीतर हिंसा होती है, हम अहिंसा में उपाय खोजते हैं। हमारे भीतर क्रोध होता

है, हम क्षमा में उपाय खोजते हैं। और क्रोध आदमी की क्षमा का क्या मूल्य है? हमारे भीतर लोभ होता है तो हम त्याग में उपाय खोजते है। लेकिन लोभी आदमी के त्याग का क्या मूल्य है? जो आदमी लोभी है, उसके त्याग के पीछे कोई न कोई लोभ काम करता है--स्वर्ग पाने का लोभ, मोक्ष पाने का लोभ, परमात्मा को पाने का लोभ। लेकिन लोभी आदमी के न्याय के पीछे लोभ मौजूद होगा; क्योंकि लोभी त्याग कैसे कर सकता है? वह तो जो भी करेगा, उसके पीछे लोभ होगा, कुछ पाने की आकांक्षा होगी। इसलिए दुनिया में बहुत से लोभी त्यागी हो जाते हैं। देखते हैं कि इस जगत में लोभ काफी नहीं है। उनका लोभ विस्तीर्ण है, और बड़ा है, दूर आकाश तक जाता है, मोक्ष तक जाता है, स्वर्गों तक जाता है तो सब छोड़ने को राजी हो जाता हैं।

एक मुसलमान खलीफा हुआ, बहुत क्रोधी था, बहुत दुष्ट था, बहुत हिंसक वृत्ति का था। एक दिन उसने अपने कुछ मित्रों को अपने जन्म-दिन पर भोजन के लिए बुलाया। उसके गुलाम से, भूल से उसके गुलाम के हाथ से गर्म थाली उसके पैर पर गिर पड़ी परोसते वक्त। सब मेहमान समझ गए कि अब सिवाय इसकी मृत्यु के और कुछ होने वाला नहीं है। उस खलीफा ने भी तलवार खींच ली। गुलाम भी समझ किया कि मरने के सिवाय अब कोई उपाय नहीं है। वह थरथर कांपने लगा। यही सजा हो सकती थी इस आदमी की कि इसकी गर्दन अलग कर दें, इसने भूल से थाली ऊपर गिरा दी। इनता ही क्रोधी था। लेकिन मरता क्या न करता! उस गुलाम ने कुरान की एक आयत कही। उसने कहा कि धन्य हैं वे, जो क्रोध नहीं करते। उस खलीफा ने अपनी तलवार भीतर कर ली। उसने कहाः मुझे क्रोध नहीं है। हालांकि जब उसने कहा कि मुझे क्रोध नहीं है, तो उसके वचनों में भी भारी क्रोध था। उसके मित्र हैरान हुए। यह आश्चर्यजनक बात थी। उन सबके दिल प्रशंसा से भर गए। खलीफा ने चारों तरफ देखा, वह भी खुश हुआ। गुलाम ने आयत का दूसरा हिस्सा पढ़ा और उसने कहाः धन्य हैं वे, जो क्षमा कर देते हैं। उस खलीफा ने कहाः जाओ मैंने तुम्हें क्षमा किया। उस गुलाम ने आयत का अंतिम हिस्सा कहा। उसने कहा कि धन्य हैं वे, परमात्मा उन्हीं को उपलब्ध होगा जिनके हृदय में प्रेम से परिपूर्ण हैं। उस खलीफा ने कहाः न मैंने केवल तुम्हें क्षमा किया, ये हजार रुपये भी लो, मैंने तुम्हें गुलामी से मुक्त किया। सारे मित्रों ने जोर से तालियां बजाईं। और कहा कि आप इतने अलौकिक धार्मिक व्यक्ति हैं, जिसका हमें पता नहीं था।

यह आदमी सस्ते में स्वर्ग पा गया है--एक गुलाम को छुटकारा देने से। एक हजार रुपया छोड़ देने में यह मोक्ष का मालिक हो गया। वह क्रोधी है, अगर क्षमा करने से स्वर्ग मिलता है तो यह क्षमा करने को राजी है। यह लोभी है, अगर हजार रुपये और गुलाम को छोड़ देने से, प्रेम प्रकट करने से परमात्मा का प्यारा हो सकता है तो उसके लिए तैयार है। हमारा मन इसकी प्रशंसा करेगा, लेकिन यह आदमी वही काह वही है, इसमें कोई फर्क नहीं हुआ। यह वही का वही आदमी है। क्रोधी क्षमा करेगा, उसके खमा के भितर भी कुछ क्रोध मौजूद होगा। लोभी त्याग करेगा, उसके त्याग के भीतर भी लोभ मौजूद होगा, क्योंकि जो हमारा मन है, हम उस मन से ही तो कुछ करेंगे? वह मन जो करेगा उससे मौजूद रहेगा। एक अहंकारी व्यक्ति विनीत हो जाए, कहने लगे, मैं ना कुछ हूं तो उसके ना कुछ होने में भी उसका अहंकार मौजूद रहेगा। एक अहंकारी व्यक्ति नग्न हो जाए, सारे वस्त्र त्याग दे, उसकी नग्नता में भी उसका अहंकार मौजूद रहेगा। साधु-संन्यासी अकारण ही क्रोधी नहीं होते हैं, साधु-संन्यासी अकारण ही अहंकारग्रस्त नहीं होते हैं। वह सब अहंकारग्रस्त मन की ही प्रक्रियाएं हैं और इसलिए कोई अंतर नहीं पड़ता है। बुनियादी यह हमारी समस्या को छोड़ कर समाधान खोजने की कोशिश है यह खतरनाक है। यह स्वयं को धोखा देने की तरकीब है। सवाल समाधान का नहीं है, सवाल समस्या का है। मेरी समस्या क्या है? मेरी जिंदगी की समस्या क्या है? और आप सोचते होंगे कि समस्याएं तो सब लिखी हुए हैं शास्त्रों में, वही समस्याएं हैं। वे भी हो सकती हैं, आपकी समस्याएं न हों। क्या सच में ईश्वर को खोजना आपकी समस्या है? क्या सच में आत्मा को खोजना आपकी समस्या है? क्या सच में मोक्ष जाना आपकी समस्या है? हो सकता है यह कोई भी आपकी समस्याएं न हों। और मैं नहीं समझता कि ये आपकी समस्याएं हैं। आपकी समस्याएं होंगी कि मन में क्रोध है, दुख है, घृणा है, हिंसा है, ईर्ष्या है, प्रतियोगिता है, जलन है। ये हमारी समस्याएं हैं। कोई आध्यात्मिक समस्या किसी मनुष्य की नहीं है, सभी मनुष्य की समस्या मानसिक हैं, साइकोलॉजिक हैं। स्प्रिचुअल किसी को कोई समस्या कभी नहीं होती है। स्प्रिचुअल समाधान होते हैं, समस्याएं हमेशा साइकोलॉजिकल होती है। समस्याएं हमेशा मानसिक होती हैं, समाधान हमेशा आत्मिक होते हैं। और जो मानसिक समस्याओं को सुलझा लेते हैं उन्हें आत्मिक समाधान उपलब्ध हो जाते हैं। आध्यात्मिक समस्या किसी भी मनुष्य की न कभी हुई है और न होती है।

लेकिन अगर हम शास्त्रों को पढ़ने में जाएंगे तो महें ज्ञात होगा कि समस्याएं ये हैं कि ईश्वर है या नहीं? समस्या यह है कि आत्मा है या नहीं? समस्या यह है कि पुनर्जन्म होते हैं या नहीं? समस्या यह है कि स्रष्टा ने कभी सृष्टि बनाई या नहीं? समस्या यह है कि भगवान के कितने चेहरे होते हैं? समस्या यह है कि भगवान आकार वाला

है कि निराकार वाला है? ये समस्याएं हैं। ये समस्याएं थोथी समस्याएं हैं, जो आपकी समस्याएं नहीं हैं। ये किसी पंडित की समस्याएं होंगी, किसी फिलॉसफर की समस्याएं होंगी। जिसे जीवन खराब करने की सुविधा हो, उसके लिए समस्याएं होंगी। जीवन की ये समस्याएं नहीं हैं। लेकिन अगर इन समस्याओं को हम पकड़ लें तो हमारी मूल समस्याएं एक तरफ पड़ी रह जाती हैं, हमारी मूल बीमारियां एक तरफ पड़ी रह जाती हैं और हम झूठी और थोथी बीमारियां के उलझाव में पड़ जात हैं। हम ताले को खोलने की कोशिश करने लगते हैं वहां, जहां कि ताला लगा हुआ नहीं है।

तो मैं ाअपसे निवेदन करना चाहूं, मन इसलिए द्वंद्व से भरा है कि उसने अपनी बुनियादी समस्याओं को एक तरफ रख छोड़ा है और ऐसी थोथी और झेठी और मीनिंगलेस समस्याओं को पकड़ लिया है जो कि वस्तुतः किसी मनुष्य की समस्याएं न कभी रही हैं, न हैं, और न हो सकती है। आप खुद ही सोचें। आपकी समस्या ईश्वर को पाना कहां है? आपके प्राणों में कहां ईश्वर का कोई सवाल है? कहां आपकी यह समस्या है कि ईश्वर ने दुनिया कब बनाई? कहां आपका यह सवाल है कि आत्मा का पुनर्जन्म होता है या नहीं? नहीं, आपकी ये समस्याएं नहीं हैं। आपकी समस्याएं दूसरी हैं और इन समस्याओं के पीछे भी आपकी वे ही बुनियादी समस्याएं खड़ी हैं।

एक आदमी आता है और पूछता है, आत्मा अमर है या नहीं? दिखाई पड़ता है कि उसकी समस्या यही है कि वह आत्मा की अमरता के संबंध में पूछना चाहता है। लेकिन यह उसकी असली समस्या नहीं है। असली समस्या उसकी यह है कि मरने से डरता है। असली समस्या उसकी यह है कि फियर, मरने का भय उसकी समस्या है। हालांकि वह ऐसा नहीं पूछता कि मैं मरने से डरता हूं। वह पूछता है, क्या आत्मा अमर है? फर्क समझिए दोनों में। अगर वह यह पूछे कि मुझे मृत्यु से भय मालूम होता है, मैं क्या करूं? यह असली समस्या होगी, इसका कोई हल हो सकता है। लेकिन वह पूछता है, क्या आत्मा अमर है? यह नकली समस्या है। इसका कोई हल नहीं हो सकता। कोई कहेगा, आत्मा अमर है। कोई कहेगा, आत्मा अमर नहीं है। कोई कहेगा कि आत्मा होती ही नहीं है। कोई कहेगा, आत्मा के संबंध में यह। आत्मा के संबंध में पच्चीस शास्त्र हैं। वह ऊहापोह में पड़ जाएगा। और उसको जो भय था मरने का, वह भीतर मौजूद बना रहेगा, वह कहां जाएगा? आप किसी भी शास्त्र को मान लें, आत्मा अमर कहने वाले शास्त्र को मान लें, आत्मा न अमर कहने वाले शास्त्र को मान लें, लेकिन मृत्यु का भय कहां जाएगा? वह तो भीतर बैठा रहेगा। समस्या एक तरफ बैठी रहेगी, समाधान दूसरी तरफ इकट्ठे होते चले जाएंगे। तब जीवन में द्वंद्व पैदा हो जाएगा। समाधान कुछ कहेंगे, समस्या कुछ कहेंगी।

एक आदमी पूछता है, साकार है ईश्वर या निराकार है? लगता है कि बड़ी ऊंची, मैटाफिजिकल समस्या है। उसकी बड़ी ऊंची समस्या है। वह भी समझता है कि मेरी कोई छोटी-मोटी समस्या नहीं है। उसकी समस्या असल में मैटाफिजिकल नहीं है। उसकी समस्या कुछ और है। उसकी समस्या यह है कि ईश्वर से मेरा कोई संबंध हो सकता है या नहीं? ईश्वर को मैं प्रेम कर सकता हूं या नहीं? ईश्वर अगर साकार हो तो मैं प्रेम कर सकता हूं। ईश्वर मेरी सुनेगा या नहीं? अगर वह साकार है तो मेरी सुन सकेगा, मेरी प्रार्थना सुन सकेगा, मेरी कामनाओं की पूर्ति कर सकेगा या नहीं? और अंदर घुसें तो ज्ञात होगा, उसके जीवन में फ्रस्ट्रेशन है। उसके जीवन में जो उसने चाहा, वह पूरा नहीं हो सका। जो उसने मांगा वह नहीं मिला। इसलिए वह पूछता है, क्या कोई ईश्वर है? जिससे मैं वह नहीं मिला। इसलिए वह पूछता है, क्या कोई ईश्वर है? जिससे मैं मांगू तो मिल सके; जिससे मैं प्रार्थना करूं तो मुझे प्राप्त हो सके? मैंने सफल होना चाहा था, असफल हो गया। मैं बड़े पद पर होना चाहा था, बड़ा पद मुझे नहीं मिल सका। मैंने बहुत धन कमाना चाहा था, वह धन मुझे नहीं आ सका। क्या कोई ईश्वर है जो मेरी सहायता कर सकेगा? मैं दुखी हूं, मैं पीड़ित हूं। क्या कोई ईश्वर है जो मेरा छुटकारा इस सारे दुख और पीड़ा से करा सकता है?

वह किसी ईश्वर की तलाश में है, क्योंकि भीतर वह बहुत घबड़ा गया है। अको है, वह कोई सहारा चाहता है। उसकी समस्या है, मैं अकेला हूं, मुझे कोई सहारा चाहिए। फिर वह सहारा अनेक रूपों में खोजता है। हो सकता है, वह ईश्वर को मान ले और उसे सहारा मिल जाए। हो सकता है, वह ईश्वर को न माने, वह कम्युनिज्म को मान ले और उसे सहारा मिल जाए। हो सकता है वह, कम्युनिज्म को न माने तो शराब पीने में लगे और उसे सहारा मिल जाए। हो सकता है, वह कोई पच्चीस रास्ते निकाल सकता है, जहां वह अपने अकेलेपन से छुटकारा पाने की कोशिश करेगा। अकेला हूं, बेसहारा हूं, इसे भुलना है, इस स्थिति को अपने से दूर हटाना है। इसकी किसी तरह स्मृति के बाहर कर देना है। उसकी समस्या क्या है? उसकी समस्या है, वह अकेला है और अकेले होने में डर रहा है। इसलिए वह किसी का सहारा चाहता है। किसी का सहारा चाहता है, किसी सर्वशक्तिशाली का सहार चाहता है।

तो है ईश्वर या नहीं, यह उसकी समस्या नहीं है। उसकी समस्या है, वह अकेला है। और बिना सहारे के रहने में बड़ी असुविधा मालूम पड़ रही है। यह हमारी जिंदगी में मैटाफिजिकल्स प्रॉब्लम्स ने, आध्यात्मिक समस्याओं ने

मनुष्य के भीतर द्वंद्व पैदा किया है। मनुष्य की समस्याएं मनोवैज्ञानिक हैं, साइकोलॉजिकल हैं। उसकी समस्याएं बहुत और हैं। और जब समस्या कुछ हो और हम समस्या को कुछ और समझते हों तो स्वाभाविक है कि हमारे भीतर फूट पैदा हो जाए, हमारा व्यक्ति धीरे-धीरे खंडित हो जाए।

तो पहला तो निवेदन मैं आपसे यह करना चाहता हूं कि किसी मनुष्य की कोई आध्यात्मिक समस्या नहीं है। इसीलिए जिन आध्यात्मिक समस्याओं को आपने पकड़ लिया है उनसे कोई समस्या हल नहीं हुई है। पांच हजार साल में दुनिया में बहुत धर्म हैं, कौन सी समस्या हल हो गई है? मनुष्य कम दुखी हो गया है, ज्यादा आनंदित हो गया है? नहीं, कोई अंतर नहीं पड़ा। मंदिर एक हो गांव में कि मंदिर पांच हों गांव में पांव के चित्त-स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। एक शास्त्र हो कि हजार शास्त्र हों, मन जैसा है, वैसा ही बना रहेगा, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि मन की यह समस्या नहीं है। लेकिन हम इस पर लड़ते हैं, इस पर हत्याएं करते हैं। उन समाधानों पर हम लड़ते हैं, जो हमारी समस्याः नहीं हैं। अगर एक मुसलमान की मस्जिद गिरा दी जाए तो मुसलमान लड़ने को तैयार है। अगर एक हिंदू का मंदिर टूट जाए तो हिंदू लड़ने को तैयार है। उन समाधानों के लिए वह जान देने को तैयार है, जो उसकी समस्याएं नहीं हैं।

अगर दुनिया में मनुष्य को स्पष्ट बोध हो जाए कि मेरी समस्या क्या है तो ये धर्म और इनके विभाजन और इनमे शास्त्र और इनकी लड़ाइयां अपने आप विलीन हो सकती हैं और ये विलीन होनी चिहए। बड़ा मजा है यह। क्या एक मुसलमान की समस्या एक हिंदू की समस्या से अलग हो सकती है? क्या एक जैन की समस्या एक ईसाई कि समस्या से अलग हो सकती है? मनुष्य की समस्याएं। सारे मनुष्य की समस्याएं भिन्न हैं, सारी दुनिया में एक है। मनुष्य मनुष्य की समस्याएं लेकिन मैटाफिजिकल समस्याएं अलग-अलग हैं। जैन कुछ और सोचता है। उसके लिए कोई ईश्वर नहीं है। वह उसकी समस्या नहीं। हिंदू के लिए यह समस्या है कि ईश्वर है या नहीं? जैन पुनर्जन्म को मानता है, उसके लिए पुनर्जन्म की समस्या नहीं है। एक मुसलमान के लिए समस्या है कि पुनर्जन्म है या नहीं है? नहीं है। लेकिन एक हिंदू के मन को पकड़े, एक मुसलमान के मन को पकड़ें, एक जैन के मन को पकड़ें। क्या इनकी समस्याएं अलग हैं? मनुष्य की समस्याएं अलग नहीं हैं, लेकिन धर्मों की समस्याएं अलग हैं। निश्चित ही धर्मों की समस्याएं झूठ होंगी। सारे मनुष्य की--चाहे वह हिंदुस्तान में हो या चाहे चीन में, चाहे जापान में, चाहे कहीं और अफ्रीका में; मनुष्य की बुनियादी समस्याएं एक हैं। वह मानसिक है, वह आध्यात्मिक नहीं है। जब तक यह तथ्य हमें स्पष्ट न हों, जब तक हम अपने बाबत इस सच्चाई को साफ-साफ न समझ लें कि हमारी समस्या क्या है, तब हम जो भी करेंगे, हम जो भी करेंगे, हमें और कनफ्यूजन में ले जाएगा और उपद्रव में ले जाएगा। उससे कोई हल उससे कोई मुक्ति असंभव है।

पहली बात है तो यह मैं आपसे कहूं। दूसरी बात मैं आपसे यह कहूं, समस्याएं इन आध्यात्मिक समाधानों ने पैदा कीं, और दूसरी बात, आदर्श परंपराओं ने स्थापित कर लिए हैं, उसने हमारी ये समस्याएं पैदा कर दीं। आदर्श क्या हैं? महावीर आदर्श हैं, राम आदर्श हैं, कृष्ण आदर्श हैं, बुद्ध आदर्श हैं। आदर्श का मतलब यह है कि परंपरा हमसे कहती है कि तुम इनके जैसे होने की कोशिश करना। ये आदर्श हैं। इनके जैसे बनना। इनके जैसे बनना। ये जैसे हैं वैसे तुम बनना। इससे सारी दुनिया में एक नकल, एक अभिनय, एक पाखंड पैदा हुआ। जब भी कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति जैसा बनना चाहेगा, अनिवार्य रूप से पाखंडी हो जाएगा। अनिवार्य रूप से। इसलिए पाखंडी हो जाएगा कि एक मनुष्य, एक व्यक्ति वस्तुतः ठीक दूसरे जैसा कभी न बना है और न कभी बन सकता है। हर व्यक्ति की अपनी यूनिक, अपनी बेजोड़ सत्ता है।

क्या आपको पता है, ढाई हजार वर्षों में महावीर जैसा व्यक्ति दूसरा व्यक्ति क्यों नहीं बन पाया? दो हजार वर्ष हो गए क्राइस्प को मरे, दो हजार वर्ष से लाखों लोग उनके जैसे बनने की कोशिश करते हैं, दूसरा आदमी क्राइस्ट क्यों नहीं बना? राम कोई दूसरा क्यों नहीं बना? रामलीला के रामों को छोड़ दें। राम कोई दूसरा व्यक्ति क्यों नहीं बन सका? कृष्ण कोई दूसरा व्यक्ति क्यों नहीं बन सका? कृष्णलीला की बात अलग है। रामलीला में जो बन जाते हैं कृष्ण, उनको छोड़ दें। लेकिन सच यह है कि कभी कोई मनुष्य दूसरे मनुष्य जैसा ठीक नहीं बन सकता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अद्वितीय क्षमता है, अपनी अद्वितीय प्रतिभा है। अपना अद्वितीय व्यक्तित्व है। एक पत्थर भी अगर मैं आपको दे दूं और कहूं कि जाए, दूसरा पत्थर इस जैसा खोज लाए। इस बड़ी जमीन पर उस जैसा दूसरा पत्थर नहीं खोजा जा सकता। असंभव है। एक जैसे दो पत्थर के जब टुकड़े भी नहीं होते तो एक जैसी दो चेतनाएं... एक जड़ वस्तु भी एक नहींहोती तो चैतन्य जैसा जीवंत प्रवाह एक जैसा नहीं हो सकता है। लेकिन हमग सिखाया जा सकता है कि हम किसी दूसरे जैसे हो जाए। गांधी जैसे हो जाओ, महावीर जैसे हो जाओ, फलां जैसे हो जाओ।

क्यों हो जाए? कोई व्यक्ति किसी दूसरे जैसा क्यों होना चाहे? क्या यह घातक नहीं है? और जब यह दूसरे जैसा होना चाहेगा तो क्या होगा? होगा यह, अपने को दबाएगा, दूसरे का ओढ़ेगा। महावीर को ओढ़ेगा, बुद्ध को

ओढ़ेगा। किसी को ओढ़ेगा अपने ऊपर। अपने को दबाएगा। अपने से घृणा करेगा, दूसरे को प्रेम करेगा। अपने को मिटाएगा, दूसरे को लाएगा। वह अपना दुश्मन हो जाएगा। जो भी व्यक्ति किसी को आदर्श मानता है वह अपना शत्रु हो जाता है। और अपना शत्रु होने से द्वंद्व पैदा होगा। क्योंकि असलियत में, मैं तो मैं हूं। न मैं महावीर हूं, न मैं बुद्ध हूं, न हो सकता हूं। न होने की कोई जरूरत है। लेकिन जब मैं महावीर होना चाहूंगा तो मैं द्वंद्व में पड़ जाऊंगा। मेरे सामने दो चीजें हो जाएंगी--जो मैं हूं और जो महावीर हैं। उन जैसा होना है और अपने जैसा मिटना है। अपने को तोड़ना है, हटाना है, उनको लाना है। तब तक काल्पनिक आदर्श मेरे प्राण लेने लगेगा। मैं अपने साथ तोड़-फोड़ में लग जाऊंगा, आत्म-हिंसा में लग जाऊंगा। एक तरह की संघर्ष की और द्वंद्व की स्थिति पैदा होगी जिसमें अपने को मिटाना है, और अपने प्रति घृणा पैदा हो जाएगी, कंडेमनेशन पैदा हो जाएगा। मैं बूरा हूं और महावीर अच्छे हैं।

सवाल यह नहीं है कि कोई किसी दूसरे जैसा हो। सवाल यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को खोजें कि वह क्या है और क्या हो सकता है बिना किसी दूसरे को बीच में लिए। सवाल यह है कि वह अपनी निजता को खोजे अपनी इंडिविजुअलिटी को, और विकसित करे। कोई किसी दूसरे जैसा होने को पैदा नहीं हुआ है।

स्पार्टा में एक बादशाह हुआ। एक आदमी की खबर लाई गई कि एक आदमी है; जो बुलबुल जैसा गाता है, बुलबुल जैसी जिसकी आवाज है। उसने कहाः छोड़ो। मैं बुलबुलों को सुन चुका हूं। इस आदमी को यहां लाने की जरूरत नहीं है। लेकिन दरबारी नहीं माने। सारे स्पार्टा में उसकी इज्जत थी। उस आदमी को लोग सुनने जाते थे। यह दिर-रात बुलबुल की आवाज बोलते-बोलते धीरे-धीरे आदमी की आवाज बोलना भूल भी गया था। लेकिन जब लोग नहीं माने, उस आदमी को लाया गया। उसने आते ही बुलबुल की आवाज शुरू की। बादशाह ने कहाः बकवास बंद करो। आदमी को बुलबुल जैसा होना शोभा नहीं देता। तुम आदमी होने को पैदा हुए हो। यह तुमसे किसने कहा कि तुम बुलबुल हो जाओ? परमात्मा ने काफी बुलबुलें बनाई हैं, वे गीत गा रही हैं। और मैं बुलबुलों के गीत सुन चुका हूं। तुम तुम होने को पैदा हुए हो। तुम जाओ यहां से। और जिस दिन तुम अपनी भाषा बोलने लगो, जिस दिन तुम अपने व्यक्ति की भाषा और गीत को उपलब्ध हो जाओ, आना। मैं तुम्हारा स्वागत करूंगा।

जैसा इस स्पार्टा के बादशाह ने कहा था, परमात्मा भी यही आपसे कहेगा कि दूसरे की भाषा मत बोलो, बाहर निकलो। राम तो घुस सकते हैं, रामलीला के राम की कोई जरूरत नहीं है। यह ढोंग नहीं चलेगा। आप अपने जैसे होने को पैदा हुए हो, नहीं तो आपके होने की क्या जरूतर है? आपका अपना व्यक्तित्व है, अपनी चेतना है। उसको खोजिए। अपने व्यक्तित्व को खोजना धर्म है। दूसरे के व्यक्तित्व की नकल करना धर्म नहीं है। लेनिक ये सब नकलें प्रचलित हैं। और परंपरा सिखाती है कि किसी दूसरे जैसे हो जाओ। हमेशा सिखाती है। जब आप नहींहो पाते तो क्या करेंगे?

महावीर नग्न घूमते हैं। आपसे कहा जाता है, आप भी नग्न हो जाओ। आप क्या करेंगे? जब महावीर जैसी चेतना आपकी नहीं हो पाती तो आप वस्त्र तो छोड़ ही सकते हैं। नग्न होना कोई कठिन बात है? थोड़े से अयास की बात है। वस्त्र छोड़े जा सकते हैं। फिर वस्त्र छोड़ कर आप नग्न हो जाएंगे। दूसरों को भ्रम होगा, आप भी महावीर हो गए। आपको भी भ्रम होगा, मैं भी महावीर हो गया। लेकिन नंगे होने से कोई महावीर होता है? महावीर के भीतर एक निर्दोष, इनोसेंस की स्थिति पैदा हुई। महावीर शांत होते-होते उस स्थिति में गए जहां चित्त पूरा इनोसेंट हो गया। इतना इनोसेंट, जैसे छोटे बच्चे का होता है। वस्त्र का बोध न रहा। महावीर ने वस्त्र छोड़े नहीं। वस्त्र का अर्थ न रहा। वस्त्र छूट गए। वह तो भीतर एक निर्दोषता की स्थिति आई इसलिए वस्त्र छूट गया। आप क्या करेंगे? आप तो नग्न होना चाहते हैं। यह बच्चे कि चित्त का लक्षण है जो नग्न होना चाहता है। उसके भीतर अंगों के छिपाने का बोध है। नहीं तो वह नग्न हो जाता। होना क्यों चाहता है? जहां एफर्ट है, वहां चित्त निर्दोष नहीं है। आप तो चेष्टा करेंगे, प्रयास करेंगे, कोशिश करेंगे।

मैं एक मित्र को जानता हूं। वे दिगंबर जैन साधु हैं। पहले ब्रह्मचारी थे। जंगलों में रहते थे। वहां मैं उनसे मिलने गया जिस झोपड़ें में थे, उसकी खिड़की से मैंने देखा, वे नग्न टहल रहे थे। तो तब तो वे कपड़े पहनते थे। मैंने सोचाः क्या हुआ, फिर नग्न कब हो गए? मैंने दरवाजे पर दस्तक दी। दरवाजा खुला तो वे चदर लपेटे हुए थे। मैंने उनसे कहाः आप अभी नग्न थे, आपने चादर लपेट ली? उन्होंने कहाः मैं अयास कर रहा हूं नग्न होने का। अब इसके बाद मुझे मुनि की दीक्षा लेने की तैयारी है मुनित की दीक्षा लेने की तैयारी होती है, प्रिपरेशन होती है? जैसे कोई रंगरूट तैयार होते हैं मिलिटरी में, वैसी तैयारी है? मुनि-दीक्षा की तैयारी कर रहा हूं। नग्न रहना होगा। अभी धीरे-धीरे अकेले में नग्न रहता हूं, फिर दो-चार मित्रों में नग्न रहूंगा, फिर थोड़ा गांव में निकलूंगा, फिर बड़े शहर में फिर धीरे-धीरे अयास से... तो मैंने उनसे कहा कि सर्कस में भर्ती हो जाइए क्योंकि जो नग्नता चेष्टा से लाई जाएगी वह सर्कस का नंगा आदमी बनाती है, महावीर नहीं बनाती है। जो चेष्टा से लाई जाएगी वह सर्कस में ले जा सकती है। वह एक आरोपित, कल्टीवेटेड व्यक्तित्व होगा, झूठा व्यक्तित्व होगा। उसके भीतर कोई प्राण नहीं होंगे। वह इनोसेंस

कहां से लाइएगा? नग्न होने से कोई इनोसेंट हो सकता है? हां, इनोसेंट होने से कोई नग्न जरूर हो सकता है। लेकिन बहुत बिल्कुल अलग बात है। बिल्कुल अलग बात है। बिल्कुल ही भिन्न बात है।

व्यक्ति भीतर से बाहर की तरफ आता है, स्मरण रखिए। बाहर से भीतर की तरफ नहीं आता। और जो चीज भी भीतर से बाहर की तरफ से लाई जाती है वह कारागृह बन जाती है, वह इंटरग्रेट होता है। और हमारे सब आदर्श बाहर से भीतर की तरफ ही जा सकते हैं। आदर्श कभी भीतर से बाहर की तरफ नहीं आ सकता, आदर्श हमेशा भीतर से बाहर की तरफ आएगा। बाहर हैं महावीर, बाहर हैं बुद्ध, बाहर हैं कृष्ण, उनकी हम देखते हैं, उनसे प्रभावित होते हैं। प्रभावित होकर उन जैसे होने की कोशिश में लग जाते हैं। उनके जैसे कपड़े पहनते हैं, उनके जैसा खाना खाते हैं। वे जब उठते हैं तो उठते हैं, वे जब सोते हैं तो सोते हैं। वे जैसा करते हैं वैसा ही हम करते हैं। यह तो इडियाटिक माइंड का लक्षण है। यह जड़बुद्धि का लक्षण है। जो दूसरे की नकल करता है वह जड़बुद्धि है। उसके चेतना नहीं है। नकल करना--लेकिन आदर्श और क्या है? और जब यह नकल चलेगी, जो जितना जड़बुद्धि होगा वह उतनी जल्दी नकल में परिपक्व हो जाता है। सचेतन व्यक्ति द्रोह कर उठेगा। तब उसे लगेगा कि यह मैं क्या सोच रहा हूं अपने ऊपर? यह क्या मूर्खताएं मैं थोपे जा रहा हूं जिसका मेरे प्राणों से कोई संबंध नहीं? उन बातों को मैं कैसे अपने पर लादे जा रहा हूं?

एक मित्र मेरे पास आए और उन्होंने मुझसे कहा कि मैं मांसाहारी हूं। शराब भी पीता हूं--बड़े वकील हैं--आपके पास आना चाहता था लेकिन यह सोच कर नहीं आया, शायद कहते होंगे कि पहले शराब छोड़ो, मांसाहार छोड़ो। मैंने कहाः वे कोई और नासमझ होंगे जो कहते हैं। आप गलती में थे, व्यर्थ आप रुके रहे। उन्होंने कहाः यही तो हुआ। कल एक मित्र ने कहा कि वे तो कुछ छोड़ने को नहीं कहते, इसलिए मैं हिम्मत करके आया हूं। मैंने उनसे कहाः मैं तो नहीं कहता कि आप मांसाहार छोड़ें। मैं तो नहीं कहता, आप शराब छोड़ो, क्योंकि यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि आप शराब क्यों पीते हैं? सवाल यह थोड़े ही है कि शराब आप छोड़ो, सवाल यह है कि आप शराब क्यों पीते हैं? चित्त अशांत होगा, दुखी होगा, खुद को भुलना चाहता होगा, इसलिए शराब पीते हैं। सवाल शराब का बिल्कुल नहीं है। सवाल उस चित्त का है, जो भूलना चाहता है। मैं उसके बाबत आपके कुछ चर्चा करूं कि चित्त क्यों आपने को भूलना चाहता है क्यों दुखी है, क्यों द्वंद्व में है? उनसे मैं बात करता था। धीरे-धीरे इन बातों को उन्होंने प्रयोग किया। दो-तीन महीने बाद में आए और उन्होंने मुझसे कहाः आपने मुझे धोखा दे दिया। शराब तो गई। आपने मुझे धोखा दिया। आपने मुझे पहले क्यों नहीं कहा? शराब तो गई। मैंने आपके शराब के बाबत कभी कुछ नहीं कहा। मैं तो मन की उस स्थिति के बाबत आपसे विचार करता था, जिसकी वजन से आदमी दुखी होता है और अपने को भूलना चाहता है। वह स्थिति चली गई, शराब तो अपने आप चली जाएगी।

लेकिन आदर्श क्या सिखाता है? आदर्श सिखाता है शराब मत पीओ। आदर्श भर नहीं है। धर्म कहता है, शराब पीते हो तो पहचानो, क्यों पीते हो? खोजो कि द्वंद्व कहां है मन में, जिसे भूलना चाहते हो? कौन सा एंग्जाइटी है जो बेहोश होने के लिए कहती है? उस एंग्जाइटी को समझो, उसको जाने दो। शराब तो उसके पीछे है, उसके साथ ही चली जाएगी।

जीवन में जो परिवर्तन है, वह आचरण से शुरू नहीं होता, वह अंतस से शुरू होता है। अंतस बदलता है, आचरण बदलता है। लेकिन जो लोग अंतस को बिना बदले आचरण को बदलने मग लग जाते हैं उनके भीतर द्वंद्व पैदा हो जाता है। उनके भीतर कांफ्लिक्ट पैदा हो जाती है। वे दो आदमियों में बंट जाते हैं। एक आचरण वाला आदमी है--यही तो पाखंड है। पाखंड और क्या है? धोखा और क्या है? धोखा यह है कि मैं दो तरह के आदमी बन जाऊं। मेरा एक दरवाजा पीछे को, एक आगे को। एक तरफ का आदमी दिखाने के लिए, दूसरी तरह का आदमी जीने के लिए। तो फिर धोखा पैदा हो जाएगा। और वह धोखा, सारे तलों पर प्रविष्ट होता जाता है। धीरे-धीरे। आदर्श द्वंद्व पैदा करने के कारण बने। जरूरत है कि मनुष्य का मन आदर्श से मुक्त हो जाए। वह स्पष्ट स्मरण करले कि मैं आप जैसा होने को पैदा हुआ हुआ। मुझे खोजना है कि मैं कौन हूं, क्या हूं? मुझे खोजना है कि मैं क्या हो सकता हूं, मेरी क्या संभावना है? और वह दूसरे की नकल छोड़ दे। दूसरे की नकल में विचार करे, ईर्ष्या है। दूसरे की नकल में काम्पिटीशन है। आप काम्पिटीटिव हैं, ईर्ष्यालु हूं। आपके भीतर जलन है। आप महावीर जैसे क्यों होना चाहते हैं? इसलिए कि महावीर आनंद में मालूम पड़ते हैं, शांति में मालूम पड़तेहैं। इसलिए मैं भी सांत्वना चाहता हूं, मैं भी आनंदित होना चाहता हूं। मैं भी माहवीर जैसा बनूंगा।

छोटे-छोटे बच्चे स्कूल में पढ़ते हैं। लड़का होशियार है, वह पहले आता है। शिक्षक उससे कहते हैं, इस जैसे बनो। यह जो पहले आया है। तुम भी पहले आओ। प्रतियोगिता पैदा करीता है, ईर्ष्या पैदा करता है। दौड़ पैदा करता है, ईर्ष्या का ज्वर पैदा करता है। उस ज्वर में बच्चे दौड़ते हैं। लेकिन बच्चे ही नहीं, बूढ़े भी ज्वर में दौड़ते रहते हैं। महावीर के पास शांति है तोहम भी महावीर जैसे हो जाए। महावीर के पास शांति नहीं है, जिसके पास शांति है वह

महावीर है। महावीर के पास शांति नहीं है, जिसके पास शांति है वह महावीर है। इसलिए महावीर जैसे होने की फिकर छोड़ दें। शांत हो सकते हैं, इसका विचार करें। जो दूसरे जैसा होना चाहेगा, वह तो हमेशा अशांत रहेगा। क्योंकि पूरे-पूरे अर्थों में कोई मनुष्य महावीर जैसा कोई नहीं हो सकता है। और जब नहीं हो पाएगा तो अशांति पैदा होगी। बेचैनी पैदा होगी, क्या करूं क्या न करूं! जीवन व्यर्थ जाता मालूम होगा।

मैं साधुओं को मिलता हूं। साधु दुनिया में सर्वाधिक नकल पसंद लोग हैं। सबसे ज्यादा टूकापी बनने की चेष्टा में संलग्न रहते हैं। सबसे ज्यादा बुद्धि की जड़ता वहां प्रविष्ट हुई है। उनसे मैं निरंतर मिलता हूं, उनसे मैं पूछता हूं, चित्त शांत है? वे कहते हैं, चित शांत नहीं है। चित्त शांत होगा कैसे? जो आदमी दूसरे जैसा होने की कोशिश में लगा है वह कैसे शांत होगा? शांत होता है व्यक्ति, जब उसके खुद के व्यक्तित्व की सारी संभावनाएं वास्तविक बन जाती है। जब उसके भीतर के सारे बीज वृक्ष बन जाते हैं और उसमें फूल लग जाते हैं तो शांति आती है, आनंद आता है। लेकिन एक् आम का वृक्ष है, गुलाब का वृक्ष बनने में लग जाए, एक गुलाब का वृक्ष चमेली का पौधा बनने में लग जाए, एक चमेली का पौधा जुही का पौधा होने में लग जाए तो पौधों की दुनिया में कितनी अशांति नहीं व्याप्त हो जाएगी! और क्या होगा? होगा यह कि गुलाब का पौधा तो चमेली बन नहीं सकता--बन नहीं सकता। लेकिन हां, अगर चमेली बनने की दौड़ में पड़ जाए तो यह हो सकता है कि गुलाब न बन पाए, यह हो सकता है। यह हो सकता है कि दौड़ उसे गुलाब तो न होने दे, चमेली तो वह कभी न हो सकेगा।

व्यक्ति स्वयं को छोड़ कर अन्य कभी नहीं हो सकता। हां, यह हो सकता है, अन्य होने की कोशिश में वह स्वयं होने से वंचित हो जाए। हम सारे लोग स्वयं होने से संचित हो गए हैं। हमने अपनी आत्मा खो दी है आदर्शों के कारण, अनुसरण के कारण। यह फॉलोविंग जो है, जहर है। किसी मनुष्य का किसी दूसरे का अनुयायी होना अनुगमन करना, किसी के पीछे चलना, किसी के जैसे होने की कोशिश करना, इसने सारे मनुष्य को, सारी दुनिया के मनुष्य को पतित किया है। जड़ग्रस्त किया है, इसने रोगग्रस्त कर दिया है। हम सब भी उस रोग से भरे हुए हैं। आप शांत नहीं हो सकते, निर्द्वंद्व नहीं हो सकते जब तक आदर्श आपसे हट न जाए। हटा लें आदर्श को, हटाएं सबके। वह कितने ही बड़े महापुरुष हों, उनके महापुरुष होने से इससे बाधा नहीं पड़ती।

मैं उनको विरोध नहीं कर रहा हूं, आपकी फॉलोविंग का विरोध कर रहा हूं। महावीर का विरोध नहीं कर रहा, बुद्ध का विरोध नहीं कर रहा हूं, क्राइस्ट का विरोध नहीं कर रहा। मैं तो उन्हीं की बात कह रहा हूं। आपका विरोध कर रहा हूं, आप उनके पीछे न जाएं। कृपा कर कोई किसी के पीछे न जाए। सबको अपने भीतर जाना है, किसी के पीछे नहीं जाना है। जो किसी के पीछे जाता है, आपने भीतर नहीं जा सकता है। कैसे जाएगा? किसी के पीछे जाने के लिए बाहर जाना पड़ता है और भीतर जाने के लिए बाहर की सब दौड़ छोड़नी पड़ती है। ये सब बाहर की दौड़ें हैं। यह आइडियालिज्म जो है, आदर्शवाद जो है, यह बाहर ले जाता है। दूसरा तत्व है, यह आदर्श--यह आत्मघाती होता है।

तीसरा तत्व हैः उधार ज्ञान। और तीसरे तत्व की और चर्चा करूं--उधार ज्ञान। आप क्या जानते हैं? अगर आपसे पूछा जाए, पुनर्जन्म है? तो आप कहेंगे, है। या कोई कहेगा, नहीं है। के आप जानते हैं? आपसे पूछा जाए, आत्मा है? कोई कहेगा, है, कोई कहेगा, नहीं है। क्या आप जानते हैं? क्या सच में आप जानते हैं कि आत्मा है? या कि आपने सुनी हुई बातों को, उधार बातों को इकट्ठा कर लिया है? एकुमलेट कर लिया है और उसी के ऊपर ज्ञानी बन बैठे हैं। यह ज्ञान, अगर इस भांति इकट्ठा किया हुआ ज्ञान आपके ऊपर भारी पड़ जाएगा, भार बन जाएगा, सिर पर पत्थर की भांति बैठे जाएगा। फिर यह आपको खोजने नहीं देगा, सचाइयों को नहीं जानने देगा। सच तो यह है कि मनुष्य कुछ भी नहीं जानता है। कुछ भी नहीं जानता है। इस कुछ नहीं में मेरा मतलब यह नहीं है कि इंजीनियरिंग नहीं जानता है या दुकान का काम नहीं जानता है। कुछ भी नहीं जानने से मेरा मतलब है कि सत्य के संबंध में कुछ भी नहीं जानता। सत्य बिल्कुल अननोन है, अज्ञात है। आप कुछ भी नहीं जानते। और जो आप समझते हैं, जानते हैं, वह जाना हुआ नहीं है, सुना हुआ है। किताबों से पढ़ा हुआ है। वह ज्ञान नहीं है, इनफर्मेशन है, जानकारी है, सुचना है। वह सूचना को जो जान समझ लेता है वह कष्ट में पड़ जाता है। वह पत्थर को हीरे समझ लिया, वह पीतल को सोना समझ लिया है। जो ज्ञान स्वयं की अनुभूअत से उत्पन्न होता है उसके अतिरिक्त सब ज्ञान बंधन है। जो ज्ञान स्वयं की अनुभूति से आता है, उसके अतिरिक्त सब ज्ञान बंधन है और सब पत्थर की भांति सिर पर बैठ जाता है। उस भार के नीचे फिर यात्रा नहीं हो पाती। क्योंकि यात्रा समाप्त हो गई। जब हम स्वीकार कर लेते हैं, आत्मा है, तो खोज बंद हो जाती है। जब एक आदमी स्वीकार कर लेता है, आत्मा नहीं है तो भी खोज बंद हो जाती है।

खोज कब होती है? खोज तब होती है जहां न स्वीकृति हो, न अस्वीकृति हो। न किसी बात को स्वीकार करने की तैयारी हो, न अस्वीकार करने की तैयारी हो। बीच में आदमी ठहरे तो खोज शुरू होती है। उस बीच की स्थिति में ज्ञान का जन्म हो सकता है। वह बीच की स्थिति है अज्ञान का बोध। होना चाहिए अज्ञान को बोध। ज्ञान का भार नहीं। और सब ज्ञान सिखाया हुआ है। सब ज्ञान सिखाया हुआ है। सब ज्ञान लर्निंग है हमारी। सीख लिया है बचपन से, सीखते जा रहे हैं, रोज-रोज। उसी को दोहराए चले जाते हैं। कम्युनिस्ट मुल्क होता है तो वे सिखाते हैंः ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है। बच्चे वही सीख लेते हैं। बौद्ध मुल्क होता है जो वे सिखाते हैं, वे सीख लेते हैं। हिंदू मुल्क है, वे जो सिखाते है, वह सीख लेते हैं। जैन मुल्क है तो जो वे सिखाते हैं, वह सीख लेते हैं। ये सब सीखे हुए लोग हैं। यह सिखावट खतरनाक है, क्योंकि सिखावट आपको रोकेगी और आगे नहीं जाने देगी। आगे जाने के लिए सच में जाने के लिए सारे सीखे हुए ज्ञान को अलग कर देना होगा। निर्भार हो जाना जरूरी है। चित्त जितना निर्भार हाग, जितना वेटलेस हाग उतना ऊर्ध्वगामी होता है। चित्त जितना भारग्रसत होता है उतना नीचे दब जाता है।

एक बार ऐसा हुआ, पहाड़ पर एक मंदिर था। स्वर्ण का मंदिर था, महमूल्य हीरे-जवाहरात और खजाने उस मंदिर के पास थे। उसका वृद्ध पुजारी मरने को हुआ। उसने नीचे मैदान में खबर भिजवाई कि नये पुजारी को चुनना है। जो व्यक्ति सर्वाधिक शक्तिशाली होगा--वह शक्ति का मंदिर था--जो व्यक्ति सर्वाधिक शक्तिशाली होगा उसकी नियुक्ति हो जाएगी। कौन सर्वाधिक शक्तिशाली है? तो पुजारी ने खबर करवाई, निश्चित तिथि पर, जो लोग अपने को शक्तिशाली समझते हों वे पहाड़ की चढ़ाइ शुरू करें। जो व्यक्ति सबसे पहले चढ़ाई पर ऊपर पहुंच जाएगा वही पुजारी हो जाएगा। उस राज्य में दूसरे-दूसरे तक जहां-जहां तक खबर हो सकती, सैकड़ों लोगों के मन में उत्कंठा हुई। उतना बड़ा मंदिर स्वर्ण का मंदिर, अरबों-खरबों की संपत्ति का मालिक था मंदिर उसका पुजारी ही सब कुछ था। कौन नहीं होना चाहेगा? जितने भी शक्तिशाली युवा थे, जिनके मन में भी आकांक्षा थी, एंबीशन थी, वे सारे लोग इकट्ठे हो गए। कोई दो सौ जवान जो अपनी-अपनी तरह सब तरह शक्तिशाली थे, निश्चित तिथि पर उस पहाड़ पर चढ़ने लगे तो हरे जवान ने एक बड़ा पत्थार अपने-अपने पर ले लिया। वह उनके पौरुष का प्रतीक कि कौन कितने बड़े पत्थर को लेकर चढ़ा सकता है। जो जितना शक्तिशाली... उसने उतना ही बड़ा पत्थर अपने कंधे पर ले लिया। पहाड़ की चढ़ाई थी दुरूह, पत्थर थे भारी, उनके प्राण घुटे जाते थे लेकिन अहंकार सब कष्ट सहने को तैयार हो जाता है। अहंकार बड़ा तपस्वी, बड़ी तपश्चर्या है अहंकार की। वह राजी था। पत्थरों के नीचे दबेजाते थे। वे भूखे-प्यासे... एक सप्ताह की चढ़ाई की। पत्थरों को घसीटन, रोकने की भी फुर्सत न थी, खाने-पीने की भी फुर्सत न थी, क्योंकि कौन पहले पहुंच जाए! कुछ तो उन पत्थरों के नीचे डूब गए और मर गए, लेकिन पत्थर उन्होंने नहीं छोड़े। मरते दम तक वे पत्थर अपने सिर पर रखेहुए थे। वे उनके पौरुष के प्रतीक थे, वे चिन्ह थे उनकी शक्ति के। कुछ खड्डों में गिर गए, कुछ बीमार पड़ गए, किसी के हाथ-पैर टूट गए गिरने से। लेकिन लोग बढ़े जाते थे। किसको फुर्सत है देखने की, जो बिर गया है। जो गिर गया, वह गया। हम आगे बढ़े चले जाते हैं। सब पहाड़ पर चढ़े चले जाते हैं और अपना-अपना पत्थर लिए हुए हैं।

लेकिन आखिरी दिन, साततां दिन करीब आ गया, सांझ होने लगी। वे लोग करीब-करीब पहुंचने को हैं। तभी उन्होंने देखा, बड़ी हैरानी की बात है, जो सबसे पीछे रह गया वह आदमी एकदम आगे निकला जा रहा है। दुबला-पतला, कमजोर आदमी--वह सबसे पीछे था, वह एकदम आगे निकला जा रहा है। सब हैरान हो गए, लेकिन सब हंसने लगे। उन्होंने सोचाः इस पागल के पहुंचने का प्रयोजन भी क्या? उसने पत्थर फेंक दिया था, बिना पत्थर भागा जा रहा था। अब बिना पत्थर के तो किसी की भी गति गढ़ जाएगी। उन्होंने उससे कहा भी कि तुम नासमझ हो। तुम कहां भागे जाते हो? आखिर तुम्हारे पहुंचने का फायदा भी क्या? तुम पहुंच भी गए तो तुम्हें कौन मानेगा? पौरुष का प्रतीक कहां है? लेकिन उसने तो सुना नहीं, वह भागे चला गया। वे सब हसते रहे कि पागल है, नासमझ है। इसके पहुंचने से कोई फल भी नहीं होने वाला है। लेकिन जब सांझ को वे वहां पहुंचे और सारे पर्वतारोहियों की सभा हुई और उस पुजारी ने घोषणा की कि वह युवक ही सबसे पहले आ गया है और उसको मैंने पुजारी बना दिया तो सब चिल्लाए कि कैसा अन्याय है, कैसा अंधेर है! उस पूजारी ने कहा, अंधेर भी नहीं है, अन्याय भी नहीं है। परमात्मा के पुजारी होने का हक केवल उन्हीं को है जो अपने अहंकार के भार को छोड़ देते हैं। इस युवक ने अदभुत साहस का परिचय दिया है। तुम सब भारग्रस्त लोगों के बीच यह अपने भार को फेंक सका, निर्बल हो सका, अपने पौरुष-प्रतीक से छुटकारा पा सका, अपने अहंकार के भार से मुक्त हो सका, निर्भार होकर गति कर सका। यह अदभुत साहस की बात है। यह सर्वाधिक बली है और इसलिए हम इसे पूजारी का पद दिए हैं।

यह तो कथज्ञ, प्रतीक कथा है, लेकिन जीवन में भी यही सत्य है। जो लोग भी सत्य की और परमात्मा की यात्रा में हैं वे स्मरण रखें कि जो भार उन्होंने अपने ऊपर ले रखे हैं वे सब उनके रोक रहे हैं। और ज्ञान का भार सबसे बड़ा भार है। ज्ञान का भार सबसे बड़ा भार है। क्योंकि ज्ञान का बोझ सबसे बड़ा अहंकार है। यह आप क्यों कहते हैं कि ईश्वर है? क्यों कहते हैं कि आत्मा है? क्योंकि इस भांति कहने से आप ज्ञानी मालूम पड़ते हैं। हालांकि

आपको पता कुछ भी हीं है कि आत्मा है या ईश्वर। कुछ भी पता नहीं है। लेकिन सइ भांति कहने से आपके अहंकार की तृप्ति होती है कि मैं भी जानता हूं। मैं भी जानता हूं। मैं कोई अज्ञानी नहीं हूं। इसलिए अगर कोई आपकी बात का खंडन करे तो आप तलवार निकाल लेते हैं, क्योंकि आपकी बात का खंडन नहीं है, आपके अहंकार का खंडन हो जाता है।

यह दुनिया भर के धर्म लड़ते हैं, पंडित लड़ते हैं, सुबह मुझसे कोई कह रहा था कि दुनिया में महात्मा और पंडित इकट्ठे होकर क्यों नहीं बैठे सकते हैं? वे कभी नहीं बैठ सकते हैं। कैसे बैठ सकते हैं? अब अपनी तलवारें खींच लेंगे क्योंकि सबका ज्ञान, सबका अहंकार है। और जहां अहंकार है वहां मिलना कैसे हो सकेगा? दुनिया में बुरे लोग मिलते रहे, भले लोग नहीं मिल सके। दुनिया में पापी मिलते रहे हैं, पुण्यात्मा नहीं मिल सके। दुनिया में महात्मा इकट्ठे हो सकते हैं, साधु-संन्यासी इकट्ठे नहीं हो सकते हैं। कैसे होंगे? अहंकार सबसे बड़ी तोड़ने वाली चीजें है और अहंकार वहां सबसे ज्यादा गहरा है, सबसे ज्यादा प्रगाढ़ है। दो पंडित नहीं बैठ सकते। असंभव है। जो कुत्तों की आदत है, वह पंडितों की भी आदत है। दो कुत्ते भी साथ नहीं बैठ सकते हैं, दो पंडित भी साथ नहीं बैठे सकते। नहीं बैठ, सकते इसलिए कि वह अहंकार गुर्राता है। अहंकार दूसरे को बरदाश्त नहीं करता। यह ज्ञान का जितना हम बोझ इकट्ठे किए हुए हैं, यह हमारे अहंकार की खुराक है।

स्मरण करें, देखें अपने भीतर, जो मैं कह रहा हूं, वह कोई आपको किसी फिलॉसफी में या किसी संप्रदाय में भर्ती करने की कोशिश नहीं। कह मैं यह रहा हूं, अपने मन को देखें, आप कुछ जानतेहैं? अगर नहीं जानते तो कृपा करें और अपने व्यर्थ के अहंकार का पोषण न करें कि मैं जानता हूं, ईश्वर है। मैं जानता हूं, आत्मा है। मैं जानता हूं, लोक है, परलोक हैं--छोड़ें--अच्छा है, उस अज्ञान को जानें। जानें कि मैं नहीं जानता हूं। और जो व्यक्ति इस स्थिति में हो जाता है कि मैं नहीं जानता हूं वह निर्मार हो जाता है। और निर्मार होते ही उसकी गति शुरू हो जाती है। जो व्यक्ति इस स्थिति में हो जाता है कि सतत इस बोध में कि मैं नहीं जानता, वह अदभुत सरलता को उपलब्ध हो जाता है, उसमें ह्मूमिलिटी पैदा होती है, उसमें बोध पैदा होता है अपने अज्ञान का और वह सरल होता है, सहज होता है। उसके सारे झगड़े विलीन हो जाते हैं। और जब चित्त सरल हो ता है, भार शून्य होता है तो ऊर्ध्वगामी होता है।

ये तीन बातें मैंने आपसे कहीं, इन तीन बातों पर थोड़ा विचार करना। इन तीनों बातों ने हमें द्वंद्वग्रस्त किया है। इन तीन बातों ने हमारे मन को कांफिस्ट से भर दिया है। इन तीन बातों ने हमारे चित्त को खंड-खंड कर दिया है। इन तीन बातों ने हमारे मन की एकता को तोड़ दिया है। इन तीन बातों ने मन को भारी कर दिया है और वह पत्थर की भांति हो गया, है, पक्षी की भांति नहीं, कि वह यात्रा कर सके। आकाश में उड़ सके, ऐसी उसकी स्थिति नहीं। पत्थर की भांति है, नीचे पड़ा है। और हम उस पर रोज भार लादते रहे हैं, रोज भार लादते जाते हैं। कोई गीता पढ़ रहा है, कोई कुरान पढ़ रहा है, कोई बाइबिल पढ़ रहा है और याद कर रहा है, कंठस्थ कर रहा है ाअैर भरता जा रहा है, भरता जा रहा है। जब शास्त्र बहुत हो जाते हैं तो सत्य के आने की कोई संभावना नहीं रह जाती। जब ज्ञान का भार बहुत हो जाता है तो फिर ज्ञान के जन्म की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती, ज्ञान उस हृदय में पैदा होता है जो सब भांति, सब भांति ज्ञान से मुक्त हो जाते हैं। ज्ञान उन मनों में पैदा होता है जो सब भांति अहंकार से शून्य और रिक्त हो जाते हैं। ज्ञान उन मनों में पैदा होता है जो परंपरा से, अनुकरण से किसी से पीछा छुड़ा लेते हैं, अपने को छुड़ा लेते हैं। इस विद्रोह की स्थिति में, इस क्रांति की स्थिति में ज्ञान पैदा होता है।

ये तीन तत्व मैंने कहे, इन तीन तत्वों को जो ठीक से समझेगा और जिसके जीवन में धीरे-धीरे इन तीन तत्वों की अभिव्यक्ति होगी, वह इस क्रांति से गुजर जाएगा। उसके जीवन में एक रिवोल्यूशन हो जाएगी। रिवोल्यूशन का नाम धर्म है, उसी क्रांति का नाम धर्म है। धर्म जगत में सबसे बड़ी अग्नि है। उससे बड़ी कोई अग्नि नहीं है। लेकिन इस अग्नि से गुजरने के लिए, इस क्रांति से गुजरने के लिए कुछ बातें विचारणीय हैं। अपने जीवन में, अपने मन में उन बातों को समझ लेना जरूरी है। उन्होंने समझें, देखें, पहचानें और उनकी पहचान ही धीरे-धीरे आपको भीतर एक नये व्यक्ति को जन्म दे देगी। आपका पुराना व्यक्तित्व जाएगा। वह जाना चाहिए। आपका पुराना व्यक्तित्व दुनिया में बहुत कष्ट पैदा कर रहा है। वह जाना चाहिए। वह सड़ी-गली, पूरी संस्कृति जानी चाहिए जो हमने पैदा की है। यह आदर्श के अनुकूल, परंपरा के अनुकूल, अनुकरण के आधार पर जो खड़ी हुई संस्कृति है, वह जानी चाहिए। उसने कोई सुख नहीं दिया, उसने मनुष्य के जीवन में केई सत्य नहीं लाया, मनुष्य के जीवन में कोई शांति नहीं लाई। एक अभिनय संकृति का जन्म निश्चित होना चाहिए तो ही मनुष्य शांति को, आनंद को उपलब्ध हो सकता है। और उस संस्कृति के जन्म कि लिए प्रत्येक को क्रांति से गुजरना जरूरी है।

उस क्रांति की तीन बातें मैंने आपसे कहीं, ये तो निषेधात्मक थीं, ये तो डिस्ट्रक्टिव थीं। स्मरण रखें, जिन व्यक्ति को भी नई दुनिया बनानी है उसे पुरानी दुनया को मिटाने के लिए राजी होना पड़ता है। जिस व्यक्ति को भी

स्वयं को नया करना है, उसे अपने पुराने के मर जाने की सुविधा जु.टानी पड़ती है। इसके पहले कि नये भवन खड़े हों, पुराने भवन गिरा देने जरूरी हैं। इसके पहले कि नये का जन्म हो, पुराने का विनाश आवश्यक है। पुराने की राख पर ही नहीं के अंकुर अंकुरित होते हैं।

तो मैंने विनाश की थोड़ी सी बातें आपसे कहीं। की थोड़ी सी कहूंगा बात आपसे क्रिएटिव हो पाता है, विनाशात्मक रूप से रचनात्मक हो पाता है वही व्यक्ति सत्य को और शांति को आनंद को उपलब्ध हो सकता है। परमात्मा करे, ऐसी क्रांति सबके भीतर हो।

इन बातों को इतने प्रेम से सुना है उससे बहुत आनंदित हूं। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।